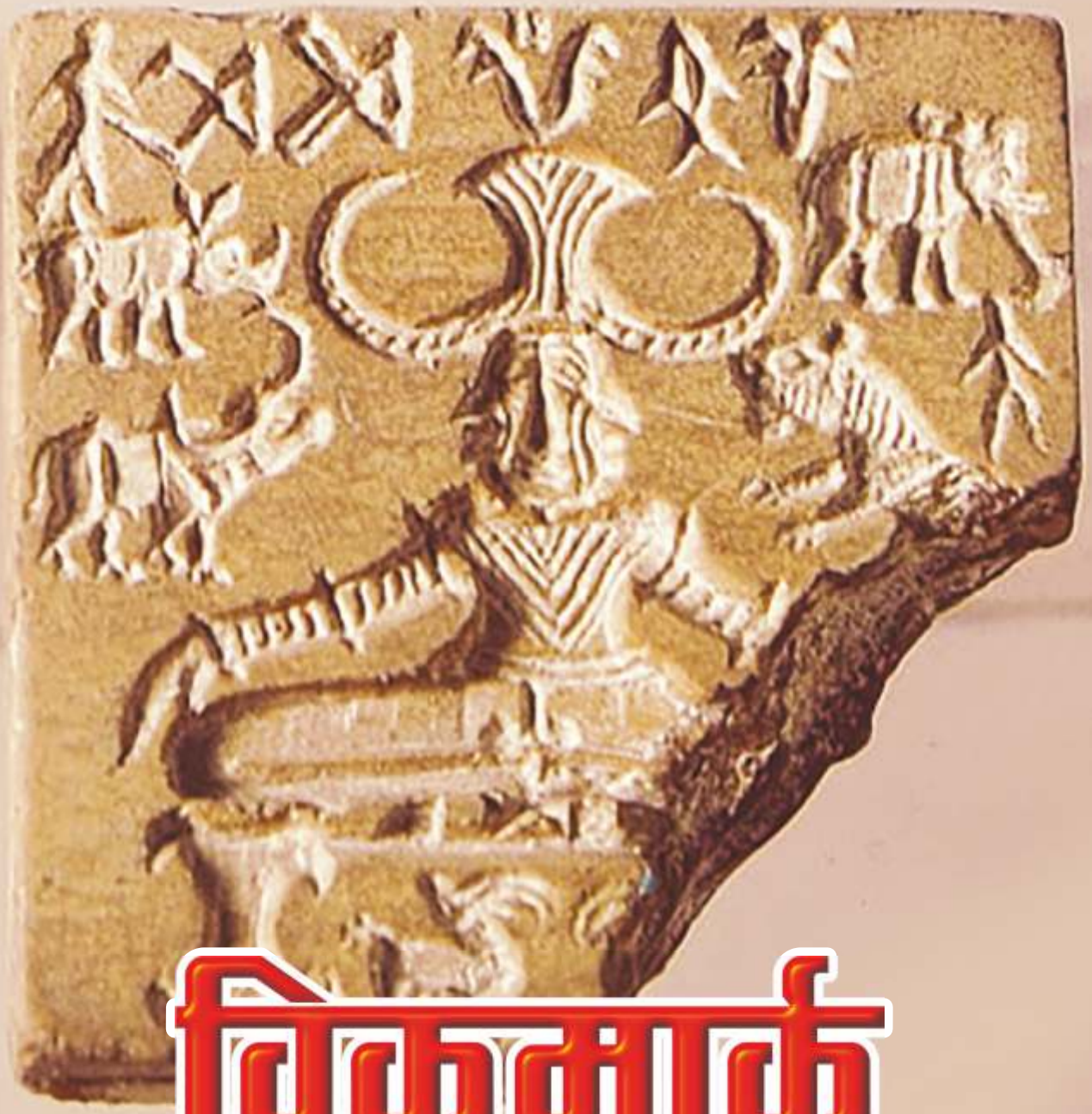

विक्रमार्क

THE VIKRAMARKA

शोध-पत्रिका

Research Journal

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

विक्रमार्क
THE VIKRAMARKA

शोध-पत्रिका
Research Journal

मार्च-अगस्त 2022, अंक-6
चैत्र- भद्रपद (विक्रम सम्वत् 2078-79)

संपादक
श्रीराम तिवारी

सह-संपादक
राजेश्वर त्रिवेदी

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन

विक्रमार्क
THE VIKRAMARKA

शोध-पत्रिका
Research Journal

नियामक: उषा ठाकुर,मंत्री संस्कृति, पर्यटन, धार्मिक न्यास एवं धर्मस्व, मध्यप्रदेश
शिव शेखर शुक्ल, प्रमुख सचिव, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश

वर्ष: मार्च-अगस्त 2022, अंक-6

चैत्र- भद्रपद (विक्रम सम्वत् 2078-79)

संपादक: श्रीराम तिवारी
सह-संपादक : राजेश्वर त्रिवेदी
समन्वय सहयोग : रितेश वर्मा, राजकुमार सिंह, खुमेंद्र कावड़े

मूल्य:40 /- रूपये

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का अधिष्ठान है। शोधपीठ विक्रमादित्य, उनके युग तथा भारत विद्या पर गंभीर शोध, अनुसंधान, फैलोशिप और अध्ययन के लिए समर्पित है।

इस पत्रिका में व्यक्त विचार लेखक के अपने हैं, जिनका यथासंभव तथ्यात्मक सत्यापन किया गया है, इस सम्बन्ध में प्रकाशक किसी भी रूप में उत्तरदायी नहीं है।

प्रकाशक :
महाराजा विक्रमादित्यक शोधपीठ
स्वराज संस्थान संचालनालय,
संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन
1 उदयन मार्ग, उज्जैन- 456010

दूरभाष/ फैक्स : 0734-2521499

ईमेल : Email- vikramadityashodhpeeth@gmail.com/mvspujjain@gmail.com

वेब : www.mvspujjain.com

मुद्रण : मध्यप्रदेश माध्यम
ISSN 2348-7720

संपादकीय

लम्बे समय के बाद महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ की शोध पत्रिका **विक्रमार्क** सुधी पाठकों के समक्ष उपस्थित है। समकालीन भारतीय संदर्भों में यह पत्रिका विक्रमादित्य, उनके युग, प्राच्य विद्या, संस्कृति, इतिहास व अन्वेषण का एक ऐसा झरोखा है जिसके माध्यम से विक्रमयुगीन भारत का स्वर्णिम अतीत प्रकट होता है। सम्राट विक्रमादित्य ना सिर्फ उज्जयिनी के शासक थे अपितु उन्होंने वृहत्तर भारत के सूदूर क्षेत्रों तक अपना राजनीतिक, सांस्कृतिक विश्व स्थापित किया था। वीर, साहसी, विवेकशील, दानी, विद्वान, संस्कृति के उन्नयन में सदा तत्पर इत्यादि विभिन्न विशेषताओं के कारण सम्राट विक्रमादित्य की प्रसिद्धि देश-विदेश के आम तथा खास वर्ग में सदा से रही है। आज भी सम्राट विक्रमादित्य और उनके काल के प्राचीन स्थापत्य, मुद्राएँ, शिलालेख व अनेक कथानक उल्लेखनीय उदाहरण हमारे सम्मुख मौजूद हैं। भारतीय इतिहास में जनश्रुति और अन्य साक्ष्यों के माध्यम से सम्राट विक्रमादित्य का उल्लेख ई.पू. 57 से माना गया है। सम्राट विक्रमादित्य ने मालवा क्षेत्र के शकों को पराजित कर विजय प्राप्त की थी और सम्वत् का प्रवर्तन किया था, जिसे आज हम विक्रम सम्वत् के नाम से जानते हैं। सम्राट विक्रमादित्य गणराज्य के आदर्श संस्थापक होने के साथ श्रेष्ठ न्याय प्रणाली के प्रवक्ता, प्रजावत्सल, लोक कल्याणकारी राज्य के संस्थापक सम्राट के रूप में भारतीय इतिहास में मान्य हुए।

विक्रमार्क का यह अंक प्राचीन मुद्राओं, वैदिक गणित, साहित्य के अभिलेख, काव्य तथा धर्म और सम्वत् परंपरा के साथ ही तात्कालिक वैज्ञानिक पृष्ठभूमि की पड़ताल करता है। अंक में प्रस्तुत जे.एन. दुबे का शोध **प्राचीन भारतीय मुद्राओं में शिव** आदिदेव शिव को केंद्र में रखकर निर्मित मुद्राओं का एक ऐसा शोधपरक लेख है जो उस काल में प्रचलित मुद्राओं में शिव की विभिन्न आकृतियों का उल्लेख करता है। प्राचीन भारत में सर्वप्रथम शिव प्रकार (शिवलिंग व शिव प्रतिमा अंकित) की ताम्र मुद्राएँ एक मात्र उज्जयिनी (अवंति प्रदेश की राजधानी) से प्राप्त हुई। इन मुद्राओं का प्रचलनकाल इतिहासविदों ने दूसरी-तीसरी सदी ईसा पूर्व स्वीकृत किया है। इन विद्वानों में एलेक्जेंडर कनिंघम, जॉन एलन एवं जे.एन. बैनर्जी प्रमुख हैं। विदेशी कुषाण शासकों जैसे विमकदफिस, कनिष्क हुविष्क एवं वासुदेव ने भी शिव-प्रकार के सिक्के प्रचलित किये। नाग शासक विभु नाग की ताम्र मुद्रा पर शिवलिंग अंकित है। गौड़ (पूर्वी बंगाल) के शासक शशांक (विक्रम संवत् 657-682, 600-625 ई.) ने भी नंदी आसीन शिव प्रकार की रजत मुद्रा प्रचलित की। पूर्व मध्यकालीन परमार शासक भोजदेव (विक्रम संवत् 1057-1112, 1000-1055 ई. तक) ने शिवलिंग प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित की। प्रस्तुत शोधपरक लेख भारत में शैव धर्म परंपरा को मुद्राओं के माध्यम से बखूबी उल्लेखित करता है।

प्राचीनकाल में नगरों का निर्माण व नगरीकरण किस तरह से अस्तित्व में आया इसका प्रमाण मुकेश शाह के लेख **मालवा की तकनीक एवं वैज्ञानिक पृष्ठभूमि** में मिलता है। उनके अनुसार मालवा में पुरातात्विक उत्खननों से उज्जैन, विदिशा, महेश्वर, नावड़ाटोड़ी इत्यादि स्थानों से नगरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। वैज्ञानिक तकनीकी संदर्भ के अंतर्गत घरों, प्रसाधनों के निर्माण प्रकार, सड़क तथा जल निकासी, जल संग्रहण एवं कृषि कर्म, यातायात के साधन, अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सिक्कों का प्रचलन तथा उनके निर्माण में प्रयुक्त धातु एवं धातुओं को बनाने की तकनीक आदि का उल्लेख इस लेख में मिलता है। नगरीकरण के तीन चरणों में किन धातुओं का प्रयोग किस तरह हुआ तथा नगरीय विकास में धातुओं का क्या महत्व रहा है, इन बातों को बहुत ही विज्ञान सम्मत ढंग से दर्शाया गया है। माना जाता है कि मालवा में वैज्ञानिक तकनीकी उत्क्रांति का पुनर्नवीनीकरण छठी शताब्दी ईसा पूर्व से प्रारंभ होने लगा था। साहित्य तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से कृषि तथा दैनिक जीवन की अनेक उपयोगी उपकरणों की जानकारी का भी इसमें उल्लेख किया गया है।

सार्वभौमिक रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि शून्य अंक भारतीय गणितज्ञों का मूल योगदान है, इसकी खोज का समय अभी रहस्य में है। दार्शनिक रूप से शून्य की अवधारणा वैदिक काल से ही पर्याप्त रूप से ज्ञात थी और प्रख्यात वेदांत दर्शन के निरूपण में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। देश के वरिष्ठ लेखक व गणितज्ञ घनश्याम पाण्डेय अपने लेख **वैदिक गणित में शून्य**

की अवधारणा में यह स्थापित करने का प्रयास करते हैं कि वशिष्ठ संहिता के संयोजन के दौरान गणितीय शून्य का उपयोग बहुधा किया जाता था और कुछ खगोलीय घटनाओं का उपयोग करने पर इस युग का समय विक्रम पूर्व 1002, 1059 ईसा पूर्व का है। इस ग्रह पर वैदिक सभ्यता के उदय के समय से ही गणित को शिक्षा की सबसे महत्वपूर्ण शाखा माना जाता रहा है। यह लेख शून्य के मूल और वैदिक साहित्य में अन्य सम्बन्धित अवधारणाओं की खोजबीन करने का मार्ग प्रशस्त करता है। भारत में सम्वतों की विशाल संख्या रही है। इन सम्वतों ने धार्मिक उत्सवों अनुष्ठानों के निर्धारण, अभिलेखों के अंकन, साहित्य लेखन में इतिहास लेखन आदि अनेक प्रकार के उद्देश्यों को पूरा किया है। भारतीय काल गणना पद्धति के अध्ययन से यह पता चलता है कि भारत में वैदिक काल से ही समय-मापन की पद्धति का वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित हो चुका था व इस पद्धति के आधार पर बहुत से सम्वतों की स्थापना समय-मापन के लिए कर ली गई थी। भारत में अनेक स्थानों पर विभिन्न संबंधों के संदर्भ में यह आज भी प्रयुक्त हो रही है जिस कारण गणना की बहुत सी इकाईयों व तत्व लगभग सभी सम्वतों में एक जैसे ही प्रयुक्त हुए। **भारत में प्रचलित सम्वतों में विक्रम सम्वत्** पर हरीश निगम ने प्रकाश डाला है। **भारतीय ज्ञान परंपरा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति** शीर्षक वाला डॉ. संतोष चौबे का लेख हमारी अतीत की भारतीय ज्ञान परंपरा का वृहद उल्लेख करता है। कालांतर में इसी ज्ञान परंपरा को किस सुनियोजित रूप से नष्ट करने का प्रयास औपनिवेशिक ताकतों ने किया तथा आधुनिक शिक्षा से उसको अलग रखा, कैसी होना चाहिए हमारी वर्तमान राष्ट्रीय शिक्षा नीति आदि इस तरह के अनेक प्रश्नों को उन्होंने अपने लेख में उद्घाटित किया है। विक्रमादित्यकालीन अनेक अभिलेखों का उल्लेख हम सुनते आये हैं अवंती क्षेत्र और उसके परिसर में आज तक जितने भी अभिलेख उपलब्ध हुए हैं उनका ऐतिहासिक मूल्यांकन अनेक ढंग से किया है किंतु संस्कृत भाषा और साहित्य की दृष्टि से उसकी सामग्री का पर्यालोचन करने का प्रथम प्रयास डॉ. हरिहर त्रिवेदी ने किया है। साहित्य की दृष्टि से प्रवचन करते हुए डॉ. हरिहर त्रिवेदी ने शिलाओं पर अंकित प्रशस्तियों तथा धातुओं उतकीर्ण दान पत्रों को बहुत ही सूक्ष्म रूप व अपनी दृष्टि से उद्धृत किया है। विक्रमादित्यकालीन अनेक घटनाओं व प्रसंगों का इन अभिलेखों उल्लेख मिलता है। इस अंक में आचार्य वराहमिहिर द्वारा वर्णित कूर्म विभाग भी शामिल है। कूर्म विभाग में आचार्य वराहमिहिर ने अनेक नगरों, पर्वतों, नदियों एवं जातियों के नामों का उल्लेख किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण है पूर्वी भाग में वर्णित समस्त स्थानों का परिचय एवं उनकी आज के युग में स्थिति को सविस्तार प्रस्तुत किया गया है। आचार्य वराहमिहिर ने अपनी प्रसिद्ध कृति बृहत्संहिता के चौदहवें अध्याय में कूर्म विभाग के नाम से एक विस्तृत अध्याय को उल्लेखित किया है। रितु मिश्र व प्रवेश दीक्षित की दो पुस्तक समीक्षाएँ भी इस अंक में शामिल है। इसके अतिरिक्त भी अन्य विद्वान लेखकों के लेखों को भी इस अंक में शामिल किया गया है। महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ की पत्रिका **विक्रमार्क** का यह अंक सुधिजनों और विद्वानों के सम्मुख प्रस्तुत करते हुए हम उम्मीद करते हैं कि पूर्व के अंकों की भाँति यह अंक भी आपकी दृष्टि में खरा उतरेगा।

श्रीराम तिवारी
निदेशक
महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

क्रम

प्राचीन भारतीय मुद्राओं में शिव / 1
जे.एन. दुबे
वैदिक गणित में शून्य की अवधारणा / 17
डॉ. घनश्याम पाण्डेय
दशपुरावन्ती क्षेत्र के अभिलेखों का साहित्यालोचन / 25
डॉ. हरिहर त्रिवेदी
भट्टिकाव्य शास्त्र समीक्षा / 31
मिथिला प्रसाद त्रिपाठी
भारतीय ज्ञान परम्परा और नयी शिक्षा नीति / 37
डॉ. संतोष चौबे
भारत में प्रचलित संवतों में विक्रम संवत् / 51
डॉ. हरीश निगम
वराहमिहिर का कूर्म विभाग / 61
बाल मुकन्द त्रिपाठी
मालवा की तकनीकी एवं वैज्ञानिक पृष्ठभूमि / 81
डॉ. मुकेश कुमार शाह
अपने अतीत को जानने की एक कोशिश / 89
रितु मिश्र
मानव विकास और प्राच्य विज्ञान परंपरा / 93
प्रवेश दीक्षित

प्राचीन भारतीय मुद्राओं में शिव

जे.एन. दुबे

प्राचीन भारत में सर्वप्रथम शिव प्रकार (शिवलिंग व शिव प्रतिमा अंकित) की ताम्र मुद्राएँ एकमात्र उज्जयिनी (अवन्ती प्रदेश की राजधानी) से प्राप्त हुई। इन मुद्राओं का प्रचलनकाल इतिहासविदों ने दूसरी-तीसरी सदी ईसा पूर्व स्वीकृत किया है। इन विद्वानों में एलेक्जेंडर कनिंघम, जॉन एलन एवं जे.एन. बैनर्जी प्रमुख हैं। विदेशी कुषाण शासकों जैसे विमकदफिस, कनिष्क हुविष्क एवं वासुदेव ने भी शिव-प्रकार के सिक्के प्रचलित किये। नाग शासक विभु नाग की ताम्र मुद्रा पर शिवलिंग अंकित है। गौड़ (पूर्वी बंगाल) के शासक शशांक (विक्रम संवत् 657-682, 600-625 ई.) ने भी नंदी आसीन शिव प्रकार की रजत मुद्रा प्रचलित की। पूर्व मध्यकालीन परमार शासक भोजदेव (विक्रम संवत् 1057-1112, 1000-1055 ई. तक) ने शिवलिंग प्रकार की मुद्राएँ प्रचलित कीं। शिव-प्रकार की ये मुद्राएँ समयानुकूल अपने प्रदेशों में भी प्रचलित कीं।

उज्जयिनी से प्राप्त शिव-प्रकार की मुद्राओं का प्रचलन समय इतिहासविदों ने दूसरी-तीसरी सदी ईसा पूर्व स्वीकृत किया है, किंतु उन्होंने अपने लेखन में यह प्रकट नहीं किया है कि किस शासनान्तर्गत ये शिव-प्रकार की मुद्राँ जारी की गयीं। अतएव उपरोक्त वर्णित काल में इस अवन्ती प्रदेश जिसकी राजधानी उज्जयिनी थी, पर किस वंश का शासन तथा वह किस धर्म कर्म का वाहक था, यह विवेचन अति आवश्यक है।

तीसरी सदी ईसा पूर्व में मौर्य वंशीय अशोक अवन्ती-प्रदेश (राजधानी उज्जयिनी) में राज्यपाल पद पर नियुक्त था और तदन्तर मगध का शासक बना। यह बौद्ध धर्मावलंबी था। उसके शासनकाल में बौद्ध धर्म का हीन यान संप्रदाय था तथा उस समय भगवान बुद्ध के प्रतीकों की पूजा उपासना प्रचलित थी। उसके शासन काल में शासकीय टकसाल उज्जयिनी से बहुतायत ढली

ताम्र- मुद्राएँ प्रचलित हुईं। उन मुद्राओं के पुरोभाग पर भगवान बुद्ध के मुख व बौद्ध धर्म के पूज्य प्रतीकों जैसे हस्ति, अश्व, वेदिका वृक्ष, चेत्य एवं पर्वत पर स्थित मयूर पक्षी और वाम भाग पर छेदित त्रिगोल प्रतीक अंकित हैं।

मौर्य वंश के शासन के पश्चात शुंग वंश का शासन (184 ईसा पूर्व प्रारंभ हुआ) सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने अपने शासन काल में दो अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया। नवें शुंग शासक भागभद्र ने बेसनगर (विदिशा) में विष्णु मंदिर का निर्माण किया। यवन राजदून हेलियोदर (180 ई.पू.) ने मंदिर के सम्मुख गरुड़ ध्वज स्थापित किया।

शुंगकालीन ताम्र-मुद्राओं पर लक्ष्मी के तीन रूपों का अंकन यथा पद्मासना, लक्ष्मी के साथ खड़ी हुई लक्ष्मी एवं गजभिषय के साथ लक्ष्मी। अतएव शुंगवंश के शासक भी वैदिक धर्म एवं वैष्णव धर्म के पोषक थे। शुंग वंश का पतन 75 ईसा पूर्व में हो गया। इस समय गणराज्य विद्यमान थे व छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। उन पर स्थानीय स्वतंत्र शासक शासन करने लगे।

प्रथम शती ईसा पूर्व या लगभग 60 ई.पू. मथुरा के शक शासक महाक्षत्रप रजुवुल के मालवा की राजधानी उज्जयिनी पर आक्रमण किया व यहाँ के शासक गर्दभिल्ल को पराजित कर उसे बंदी बना लिया। यह आर्य भूमि पर सर्वप्रथम विदेशी आक्रमण था। इस शक आक्रमण का वर्णन कालकाचार्य कथा में भी वर्णित है। शकों ने उज्जयिनी के समीपस्थ क्षेत्रों पर अपना अधिकार कर लिया तथा उनका शासन अल्पकाल (लगभग चार वर्ष) तक रहा। तत्पश्चात विक्रमादित्य ने अपनी शक्ति संगठित कर शकों का उन्मूलन कर मालवा की राजसत्ता हस्तगत की। राजसिंहासन प्राप्त कर लेने के पश्चात विदेशी शक शासक पर विजयोपरांत इस विजय के उपलक्ष्य में सर्वप्रथम विक्रमादित्य ने भगवान शिव (महाकाल) की पूजा-अर्चना की। अपने आराधक देव का महोत्सव आयोजित किया तथा अपनी राजधानी उज्जयिनी नगर की टकसाल से शिव के विविधसमांकन युक्त मुद्राएँ प्रचलित कीं। अपने साम्राज्य की प्रजा को ऋण मुक्त भी कर दिया तथा सम्वत् प्रवर्तन किया। सम्राट विक्रमादित्य द्वारा प्रचलित विविध शिव रूपांकित मुद्राओं को वर्णन इस प्रकार है-

1. शिवलिंग प्रकार इस गोल ताम्र मुद्रा के पुरोभाग पर दो वेदिका वृक्षों के मध्य शिवलिंग स्थित हैं। शिवलिंग के ऊपरी भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह व स्वास्तिक अंकित है। पृष्ठ भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी प्रतीक है।
2. पुरोभाग में दाहिने हाथ में दण्ड और बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। उनके दाहिनी ओर वेदिका वृक्ष अंकित है। पृष्ठभाग पर द्विवृत्त उज्जयिनी प्रतीक है।
3. पुरोभाग में दाहिने हाथ में भल्ल और बायें हाथ में कमण्डलधारी शिव खड़े हैं। उनके निम्न भाग में मत्स्य सरित चिन्ह है। पृष्ठ भाग पर बिन्दुयुक्त दो वृत्त वाला उज्जयिनी चिन्ह है।
4. पुरोभाग में शिव दाहिने हाथ में त्रिशूल लिये खड़े हैं। पृष्ठ भाग में द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह है।
5. पुरोभाग में उर्ध्व केशी शिव दाहिने हाथ में दण्ड तथा बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये खड़े हैं। उनके बायें वेदिका वृक्ष तथा दायें षडर चक्र और नीचे मकार है। पृष्ठभाग में द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह है।
6. पुरोभाग में प्रधासन शिव ध्यानस्थ मुद्रा में बैठे हैं। उनके दाहिनी ओर वृक्ष चिन्ह तथा बायीं ओर वत्सलांछन चिन्ह, तीन मकार और निम्न भाग में एक मकार है। पृष्ठ भाग में एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह और कोण मध्य स्वास्तिक है।
7. पुरोभाग में दाहिनी हाथ में धनुष तथा बायें हाथ में कमण्डलु व जटा-जूट धारण किये शिव खड़े हैं। पृष्ठ भाग में एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह है।
8. पुरोभाग में दाहिने सूर्य ध्वज तथा बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। उनके दाहिनी ओर वेदिका वृक्ष तथा बायीं ओर षडर चक्र और दो मकार अंकित हैं। पृष्ठ भाग पर द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह है।
9. पुरोभाग में नृत्यरत (नटराज) शिव अंकित हैं। पृष्ठ भाग पर बिन्दु युक्त एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह है।
10. पुरोभाग में दाहिने हाथ में भल्ल एवं बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। उनकी जटाओं के मध्य से पुण्य सलिला गंगा (भगीरथी) की अत्र सुजल धारा प्रवाहित हो रही है। उनके बायीं ओर षडर चक्र और ऊर्ध्व भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है। पृष्ठ भाग पर द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।
11. पुरोभाग में दाहिने हाथ में भल्ल तथा बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। उनके सम्मुख नन्दी खड़ा है। पृष्ठ

भाग पर एक वृत्त में मकार चिन्ह अंकित है।

12. त्रिमुख शिव- पुरोभाग में दण्ड कमण्डलु धारण किये त्रिमुखशिव खड़े हैं। उनके बायीं ओर वेदिका वृक्ष अंकित है। पृष्ठ भाग पर द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह और उस चिन्ह पर वामाभिमुख वृषभ का अंकन है।

13. पुरोभाग में दण्ड कमण्डलु धारण किये त्रिमुख शिव खड़े हैं। पृष्ठ भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी तथा उस पर वामाभिमुख हाथी खड़ा है।

14. **उमा महेश (कल्याण- सुन्दर) प्रकार की मुद्रा:** चौकोर ताम्र- मुद्राओं पर उमा-महेश्वर के परिणय का अंकन मूर्ति विज्ञान में विस्मयकारी है। इन मुद्राओं पर देवी पार्वती व भगवान शिव नवयुवती-नवयुवक रूप में खड़े हुए अंकित हैं। इन मुद्राओं और पार्वती का अंकन शिव के दाहिनी ओर प्रदर्शित है। शिव का दाहिना हाथ उमा के बायें हाथ से संयुक्त है। उमा के दाहिने ऊपर उठे हुए हाथ में पुष्प है। शिव के बायीं ओर मांगलिक प्रतीक स्वास्तिक अंकित है और बायीं ओर के ऊर्ध्व भाग में मकार चिन्ह अंकित है।

शिव रूपांकन युक्त अभिलिखित ताम्र मुद्राएँ

इन मुद्राओं का वर्णन इस प्रकार है :

1. पुरोभाग में समभंग मुद्रा में सम्मुखभिमुख मुकुट, दण्ड, कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। उनके दाहिनी ओर प्रथम सदी ईसा पूर्व की ब्राह्मीलिपि में लेख 'राजा विक्रम' नाम आदि, बायीं ओर वेदिका वृक्ष अंकित हैं। पृष्ठभाग पर केवल द्विवृत्त चिन्ह अंकित है। राजा विक्रम नाम व शिव रूपांकन की चार अन्य मुद्राएँ हैं।

2. पुरोभाग में द्विभंग मुद्रा में दण्ड कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। उनके दाहिनी ओर 'राजा विक्रम' नामांकित हैं। पृष्ठ भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।

3. समभंग मुद्रा में सम्मुखाभिमुख शिव दण्ड कमण्डलु धारण किये खड़े हैं। उनके दाहिनी ओर प्रथम सदी ईसा पूर्व की ब्राह्मीलिपि में रुद्र नामांकित है। उनके बायीं ओर षडर चक्र एवं वृक्ष अंकित हैं। पृष्ठ भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह तथा प्रत्येक वृत्त के मध्य चार बिन्दु अंकित हैं।

4. पुरोभाग में समभंग मुद्रा में सम्मुखभिमुख दण्ड कमण्डलुधारी शिव खड़े हैं। दाहिनी ओर वेदिका वृक्ष तथा बायीं ओर सचन्द्र मेरु अंकित है। मुद्रा के अधोभाग पर प्राकृत भाषा व ब्राह्मीलिपि में लेख 'सवितस' (सवितृ) अंकित है। पृष्ठ भाग में मकार एवं एक अन्य अस्पष्ट चिन्ह है।

5. पुरोभाग में ध्यानस्थ योगी शिव तथा उनके बायीं ओर ब्राह्मीलिपि में लेख 'भूमिमितस' (भूमिमित्र) नामांकित हैं। पृष्ठ भाग में द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।

6. पुरोभाग में समभंगमुद्रा में सम्मुखाभिमुख शशि पर मुकुट तथा दण्डकमण्डलु लिये खड़े हैं। दण्ड के अधोभाग में वृक्ष चिन्ह के पार्श्व में एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है। मुद्रा के दाहिने किनारे पर प्राकृत भाषा व ब्राह्मीलिपि में लेख 'राज्ञो भानुमितस' राजा भानुमित्र नामा उल्लेख है।

7. मृण्मयी मुद्रांक इस मुद्रांक के मध्य सम्मुखाभिमुख भैरव खड़े हैं। उनकी बायीं ओर उनका वाहन श्वान खड़ा है। अधोभाग में ब्राह्मीलिपि में 'हरसंभव विक्रम' लेख तथा मुद्रांक के निम्नलिखित भाग पर धनुषबाण उत्कीर्ण हैं।

8. मृण्मयी मुद्रांक- इस मुद्रांक पर वृत्तायत ब्राह्मीलिपि में किनारे पर लेख विक्रम रुदस महव उत्कीर्ण है। मुद्रांक के मध्य में वामाभिमुख पीठासीन नंदी अंकित है।

9. नान्दूर से प्राप्त एक मृण्मय मुद्रांक - मुद्रांक के तीन चौथाई ऊर्ध्व भाग के मध्य भल्ल धारण किये शिव खड़े हैं। उनके बायीं ओर एक मानवाकृति का वह मुद्रा में खड़ी है। इस चित्रण के अधोभाग में प्रथम सदी ईसा पूर्व की ब्राह्मी लिपि में 'श्री विक्रमस' श्री विक्रम नामोल्लेख है।

विदेशी कुषाण शासकों द्वारा प्रचलित रूपांकित मुद्राएँ

कुषाण शासकों ने एक बड़े साम्राज्य (उत्तरप्रदेश से लेकर अफगानिस्तान तक) का निर्माण किया, जो एक सदी से अधिक काल तक बना रहा।

1. कुषाण शासक विकमदफिस (कदाफस द्वितीय) द्वारा प्रचलित स्वर्ण मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर गले में हार तथा दाहिने हाथ में त्रिशूल धारण किये आभायुक्त शरीर वाले शिव खड़े हैं। उनके पृष्ठ भाग में दाहिनी ओर अभिमुख नन्दी का अंकन है। खरोष्ठी लिपि में लेख 'महरजस रजदिरजस सर्व लोग इश्वरस महिश्वरस वीम कद पिशस त्रिदत।'
2. कनिष्क प्रथम की स्वर्ण मुद्राओं में पृष्ठ भाग पर ओयशो (शिव) नामाभिमुख खड़े चतुर्भुज शिव, उनके चारों हाथों में क्रमश: घट, डमरू, त्रिशूल और आज का अंकन है। लेख 'धवन ओयशो।'
3. हुविष्क प्रथम की स्वर्ण मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर ओयशो सम्मुखाभिमुख खड़े त्रिशूल शिव के चारों हाथों में क्रमश: अज, चक्र, त्रिशूल और वज्र प्रदर्शित हैं। यवन लेख- ओयशो।

अ- सम्मुखाभिमुख द्विभंग मुद्रा में खड़े शिव, गले में रुद्राक्ष माला तथा यज्ञोपवित धारण किये हुए भुजाओं में कंकण प्रदर्शित हैं। चतुर्मुख और चारों हाथों में क्रमश: वज्र, त्रिशूल, कमण्डल और गदा है। यवन लेखओयशो।

ब- सम्मुखाभिमुख समभंग मुद्रा में खड़े पंच मुख शिव, उनके चारों हाथों में क्रमश: चक्रहस्ति, परशु तथा वज्र प्रदर्शित हैं। यवन लेख- ओयशो अंकित है।

स- शिव तथा नाना दोनों साथ-साथ आमने-सामने खड़े हैं, चतुर्भुज शिव रिक्त हस्त, शाखा पकड़े हुए अंकित हैं। यवन लेख- नाना-ओयशो।

द- धोती पहने जटाजूटधारी चतुर्भुज शिव अपने बायें हाथों में त्रिशूल और परशु तथा दाहिने हाथ में अंकुश और कमण्डलु धारण किये हुए हैं। दाहिने हाथ में राजदण्डत्रलये वस्त्राभूषण सज्जित उमा, दोनों परस्पर आमने-सामने खड़े हैं। यवन लेख-ओम्मो-ओयशो (उमा-शिव)।

4. वासुदेव प्रथम के स्वर्ण मुद्राओं के पृष्ठ भाग पर-

अ- एक हाथ में माला अथवा माश और दूसरे हाथ में त्रिशूल लिये द्विभुजी त्रिमुख शिव खड़े हैं। यवन लेखओयशो।

ब- अन्य प्रकार की मुद्राओं पर शिव के साथ कभी-कभी उनकी बायीं ओर उनका वाहन वृषभ या नंदी तथा कुछ पर हाथी भी अंकित मिलता है। किन्हीं-किन्हीं मुद्राओं पर चतुर्भुज शिव और अपने दाहिने हाथों में पाश और कमण्डलु तथा बायें हाथों में त्रिशूल और व्याघ्र चम्र धारण किये प्रदर्शित हैं। कनिंघम ने कतिपय ऐसी मुद्राओं का उल्लेख किया है जिन पर शिव पाश लिये पाशुपति के रूप में दिखाई देते हैं।

5. नाग वंश के शासक शिव के परम उपासक थे। उन्होंने दूसरी सदी से लेकर चतुर्थ सदी ईसवीं तक शासन किया। उनका साम्राज्य पूर्वी मालवा से लेकर मथुरा तक विस्तृत था। इन शासकों ने अपनी ताम्र-मुद्राओं पर प्राय: शिव के वाहन ककुदमान नन्दी का दक्षिणोभिमुख या वामाभिमुख अंकन पुरोभाग पर किया तथा इनके पृष्ठ भाग पर अपना नामोल्लेख किया है। नाग वंश के शासक विभुनाग (तीसरी सदी ईसवीं) की मुद्राओं के पुरोभाग पर शिवलिंग का अंकन तथा पृष्ठ भाग पर ब्राह्मीलिपि में 'महाराज श्री विक्रम' नामोउल्लेख है।
6. विदेशी शासक मिहिर कुल (छठी सदी ईसवीं का मध्य) की रजत मुद्राओं के पुरोभाग पर उसकी आवक्ष प्रतिमा तथा ब्राह्मीलिपि में लेख 'जयतु वृषध्वज' और पृष्ठ भाग पर यज्ञ वेदी एवं पहरेक्षर अंकित हैं।
7. गौड़ (पूर्वी बंगाल) के शासक शशांक (600-625 ई.) ने स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित कीं। उनके पुरोभाग पर वृषभारूढ़ शिव का अंकन तथा पृष्ठ भाग पर गजाभिषेक प्रमासना लक्ष्मी का अंकन है।
8. पूर्व मध्यकालीन शासकों में सर्वप्रथम मालवा के परमार वंश के शासक परम महेश्वर अरु भोज देव (1000-1055 ई.) ने

शिवलिंग प्रकार की रजत मुद्राएँ प्रचलित कीं। इन रजत मुद्राओं में पुरोभाग पर शिवलिंग अवतरित सर्प का फण दाहिनी ओर ऊपर उठा हुआ है तथा देवनागरी लिपि में श्री भोजदे (व) नामोल्लेख है। इनके पृष्ठ भाग पर ककुदमान शिव वाहन नन्दी का अंकन है। इन मुद्राओं के छह विविध प्रकार हैं।

प्राचीन भारतीय शासकों ने समय-समय पर अपनी मुद्राओं पर शिव का अंकन कर उन्हें प्रचलित किया। शिव रूपांकित विविध प्रकार की ये मुद्राएँ सर्वप्रथम महाराजा विक्रमादित्य ने राजधानी उज्जयिनी से प्रचलित की। महाराजा विक्रमादित्य शिवांश एवं परम-महेश्वर थे। शिव प्रकार की बहुल मुद्राओं का उनके द्वारा प्रचलित किये जाने का पुण्य प्रमाण इन पर शिव के अंकन सहित उनका नाम 'राजा विक्रम' है। मुद्रांकों पर भी 'हरसंभव विक्रम' एवं 'विक्रम रुद्रस महव' ब्राह्मीलिपि में लेख अंकित है। उन्होंने शिवलिंग एवं चतुर्मुख शिवलिंगों का भी निर्माण करवाया। इन मुद्राओं के पुरोभाग में सीमित आकार में इतनी बारीकी से शिव की विविध प्रतिमाओं का चित्रण व उनका कलात्मक सौंदर्य का अंकन तत्कालीन कलाकारों की दक्षता का ज्वलंत उदाहरण है। यह तत्कालीन मूर्तिकला के विकास के इतिहास में महत्वपूर्ण योगदान है।

विदेशी कुषाण शासकों ने भी शिव के विविध स्वरूपों युक्त स्वर्ण मुद्राएँ प्रचलित कीं तथा त्रिशूल धारण किये खड़े हुए शिव नंदी सहित चतुर्भुज-त्रिमुख शिव, चतुर्भुज-पंचमुख शिव तथा आमने-सामने खड़े उमा और शिव। प्रसंगवश यह रोचक है कि महाराजा विक्रमादित्य शासन कालीन मुद्राओं पर जो शिव की विविध प्रतिमाओं में कलात्मक सौंदर्य है, वह कुषाणों की मुद्राओं पर अंकित शिव प्रतिमाओं में दृष्टिगत नहीं होता। शिव की एक प्रकार की उमा महेश्वर प्रकार की मुद्राओं पर उमा को नवयुवती तथा शिव को नवयुवक रूप में मांगलिक प्रतीक स्वास्तिक के साथ प्रदर्शित किया गया है। यह दृश्य कलाकार ने बड़ी दक्षता से उकेरा है। कुषाण मुद्रा पर केवल उमा शिव को आमने-सामने खड़े हुए प्रदर्शित किया गया है।

गौड़ पूर्वी बंगाल के शासक शशांक द्वारा प्रचलित रजत मुद्राओं के पुरोभाग पर वृषभारूढ़ शिव तथा पृष्ठ भाग में पद्मासना राजाभिषेक लक्ष्मी का अंकन है। यह शैव संप्रदाय एवं वैष्णव संप्रदाय के मध्य समन्वय का प्रतीक है। मालवा के परमार शासक भोजदेव शिव के परम उपासक थे। उन्होंने अपने शासनकाल में अनेक शिव मंदिर एवं कई शिव प्रतिमाओं का निर्माण करवाया। उज्जयिनी स्थित महाकाल का मंदिर निर्माण भी उन्होंने करवाया था। महाराजा भोजदेव द्वारा ये शिव प्रकार की रजत मुद्राएँ उनकी शैव साधना का अप्रतिम उदाहरण है।

पुरावशेषों में विक्रमादित्य के विभिन्न नाम, सिक्कों, मुद्रा, मुद्रांक, प्रतिमाओं, शिवलिंग

नन्दी एवं शिवलिंग स्थित जलाधारियों तथा प्रस्तर अभिलेख एवं प्रस्तर स्तम्भ पर सम्राट विक्रमादित्य के विभिन्न प्रकार के नामों का अंकन प्राप्त है। ये सभी नाम प्रथम सदी ईसा पूर्व की ब्राह्मीलिपि में अंकित हैं। इनका वर्णन इस प्रकार है:-

1. सिक्के - ताँबे के सिक्के
- पुरोभाग - द्वादशार चक्र प्रतीक
  पृष्ठ भाग- सिक्के के मध्य में 'विक्रम' नाम
2 - पुरोभाग - पंख युक्त गतिशील अश्व
  पृष्ठ भाग - वेदिका वृक्ष के दाहिनी ओर विक्रम नाम
3- पुरोभाग - विकमस (विक्रमस्य)
4- पुरोभाग - अश्व का अंकन
  पृष्ठ भाग - एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह पर विक्रम नाम
5- पुरोभाग - तक्षशिला प्रतीक: ऊपर द्वार के दाहिनी ओर विक्रम नाम
6- मिट्टी के सिक्का ढालने वाले सांचे पर विकमस नाम
7- तांबे के ठप्पे के गोल भाग पर विकमस - विक्रम नाम ठप्पे के दूसरी ओर के धरातल के ऊपरी भाग पर विकमस (विक्रम) नाम

8- आवक्ष प्रतिमा प्रकार के सिक्के पर शासक के मुंह के सामने खड़ी पंक्ति में विक्रम नाम

9- जयपुर के नरेन्द्र कोठारी के व्यक्तिगत मुद्रा संग्रहालय में सिक्के के पुरोभाग पर खड़ष हुए शिव के दाहिनी ओर दण्ड के समीप 'राजा विक्रम' नाम

10- अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में संग्रहीत शिव प्रकार के तीन सिक्कों पर 'राजा विक्रम' नाम एवं एक सिक्के के पुरोभाग 'कृत विक्रम' नाम

11- शिव प्रकार के एक दुर्लभ सिक्के पे पुरोभाग पर शिव की जटा के दायें ऊपरी भाग पर 'श्री विक्रमादित्य' नाम

12- आवक्ष प्रकार की स्वर्ण मुद्रा के पृष्ठ भाग के ऊपरी किनारे पर 'राजा विक्रमादित्य' नाम

13- सूर्यध्वज धारीराजा - एक रजत मुद्रा पर राजा की भुजा के बायीं ओर 'राजा विक्रमादित्य' नाम

14- दाहिने हाथ में बीज पूरक धारी ऊर्ध्व केशी शिव के कटिबन्ध पर 'मद विक्रम' नाम मदभीम

15- प्रस्तर

16- अभिलेख गढ़कालिका से प्राप्त एक मूँठयुक्त प्रस्तर खण्ड के धरातल पर सर्वप्रथम विक्रम नाम

अँवलेश्वर स्थित प्रस्तर स्तम्भ के निम्न भाग की दाहिनी ओर की चौकी पर उत्कीर्ण लेख में दूसरी पंक्ति में विक्रमादित्य नाम

1- अँवलेश्वर स्थित एक गोल स्तम्भ के शीर्ष भाग पर विक्रमादित्य नाम

मुद्रा एवं मुद्रांक

1-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 3)	मध्य में विकमस (विकमस्य) नाम
2-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 9)	ऊपरी भाग में 'विक्रम' नाम
3-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 12)	मध्य में (वि) कमस (विक्रम) नाम
4-	हाथी दाँत की मुंह मुद्रा (क्र. 15)	विक्रमस्य
5-	हाथी दाँत की मुद्रा (क्र. 21)	'महिदेव' नाम
6-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 16)	चारों ओर 'विक्रमस' (विक्रम) नाम
7-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 13)	'श्री विक्रम'
8-	नान्दूर उत्खनन से प्राप्त मुद्रांक (क्र. 39)	श्री विक्रमस (श्री विक्रम)
9-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 8)	राजा pविक्रम
10-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 18)	'राजा विकमस
11-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 11)	'हरभव विक्रम'
12-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 15)	'कृतविक्रम रुद्रस मह' व-10
13-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 20)	धरातल पर मध्य में 'श्री विक्रमादित्य' तथा ऊर्ध्व भाग पर 'महिदेव'
14-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 10)	श्री विक्रम 'विक्रमादित्य' का अन्य नाम
15-	पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 17)	प्राकमस बिना क्रम का राम विक्रम

प्रसार प्रतिमाओं, शिवलिंग जलाधारी चतुर्मुख शिवलिंग प्रसार स्तम्भ पर उत्कीर्ण विविध नाम तथा विक्रम, श्री विक्रम, मद विक्रमदेव, मद भीमदेव, मदमहिदेव, विषय या विषमशील

1- सांदीपनि आश्रम स्थित कुड़गेश्वर मंदिर में स्थापित खड़े नन्दी में गलकण्ठक पर 'विक्रम' नाम, पीठ पर 'श्रीमदवीराकम महिदेव', अन्य स्थलों पर मद भीमदेव एवं 'विषम'।

2- मंगलनाथ परिसर स्थित चतुर्मुख शिव स्तम्भ के सम्मुख भाग पर वृषभ मुख के बायीं ओर 'श्री विक्रम मद विक्रमदेव।

3- विक्रम विश्वविद्यालय पुरातत्व संग्रहालय, उज्जैन स्थित बालु का प्रस्तर निर्मित उत्कटिक आसन में गणेश प्रतिमा के यज्ञोपवीत के बायीं ओर 'मद विक्रम देव', पादपीठ पर 'श्री मद भीमदेव'।

4- पिंगलेश्वर मंदिर के अंतर्गत स्थापित शिवलिंग के अधोभाग पर दाहिनी ओर 'श्रीमद विक्रमदेव', अन्य नाम मद भीमदेव एवं मदमहिदेव।

पिंगलेश्वर मंदिर परिसर स्थित चतुर्मुख शिवलिंग

1- अघोर शिव आवक्ष प्रतिमा के दायें कर्ण के समीप 'श्रीमद विक्रमदेव', नामोल्लेख, अन्य वाम श्रीमद भीमदेव तथा 'मद महिदेव'।

2- सद्योजात शिव आवक्ष प्रतिमा - भाल के बायीं ओर 'श्रीमद विक्रमदेव'।

3- तत्पुरुष शिव आवक्ष प्रतिमा शीश के बायीं ओर 'मदविक्रम' अन्य नाम श्रीमद भीमदेव एवं मद महिदेव।

4- वामदेव शिव-आवक्ष प्रतिमा - शीश के ऊर्ध्व भाग पर p'मद विक्रमदेव'।

चकरावदा ग्राम- उज्जैन- उन्हेल मार्ग स्थित शिवलिंग - शिव मंदिर अंतर्गत स्थित काला पाषाण निर्मित जलाधारी-जलाधारी के अंतिम निम्न- मद के ऊर्ध्व भाग पर लेख- 'श्रीमद विक्रम महाभट शिव सम' विक्र व श्री सड़ मदादि श्री भीमदेव

जलाधारी के दाहिनी ओर से पहले का भीतरी भाग 'विक्रमदेव', मद महिदेव एवं मद भीमदेव जलाधारी के दोनों अंतिम पट्ट के मोड़ के मध्य में खड़े हुए चोंचधारी पशु के सामने मद विक्रमदेव एवं निम्न भाग में विक्रम संवत 8 अंकित है।

पिंगलेश्वर मंदिर परिसर स्थित एक अन्य शिवलिंग के अधोभाग पर लेख 'श्रीमद विक्रमदेव' अन्य नाम मद भीमदेव, महिदेव एवं पीराकम

विषम तथा विषमशील

1- सांदीपनि आश्रम के कुड़गेश्वर-मंदिर स्थित नन्दी के पीठ के अधोभाग पर 'विषम' वाम अंकित है। उमा महेश्वर की प्रतिमा के दाहिनी ओर स्थित चार संयुक्त प्रस्तर खण्डों में से तीसरे प्रस्तर- खण्ड पर 'विक्रमशील' नाम अंकित है।

2- कृत- सिक्कों, मुद्रांक, नन्दी व जलाधारी पर कदस, कतस, कुतस, कृद एवं क्रीत लेखांकन

3- सिक्के

1 - ताम्र मुद्रा (नाग क्वायन्स कैटलॉग) के पृष्ठ भाग के निम्न भाग के किनारे पर 'परवतन्द' कदस (कृतस्य) तीन अन्य ताम्र मुद्राओं पर (क) तस, कृद व कतस

2 - एक अन्य ताम्र मुद्रा (अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर) पर लेख 'क्रीत', एक अन्य चौकोर ताम्र मुद्रा पर कृत विक्रम नामोल्लेख है।

मुद्रा एवं मुद्रांक

1- डॉ. वि. श्री वाकणकर शोध संस्थान, उज्जैन में संरक्षित दो पकी मिट्टी की मुहरों पर

1- कतस उजेनिय तथा

2- कुतस

2- अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में संरक्षित मुद्रा एवं मुद्रांक

1- पकी मिट्टी की मुहर (क्र. 4) कतस उजनियि मह

2- तांबे की दुर्लभ मुद्रा (क्र. 5) राज्ञो कतस उजेनि

3- मूँठ युक्त तांबे की मुद्रा (क्र. 7) देस भानेस कतस

4- मिट्टी की मुहर (क्र. 15) कृत विक्रम रुद्रस मह व 10

5- अनादिकल्पेश्वर शिवलिंग के बायीं ओर कत भीम

6- भर्तुहरि गुफा के शिवलिंग की जलाधारी के पट्ट के निम्न भाग पर पद 'कृद' लेख अंकित है।

भानुमित्र नामक शासकों के सिक्के

भानुमित्र नामक शासक की 35 मुद्राएँ वर्तमान में उपलब्ध हैं। गुरदासपुर (पंजाब) से मुद्राएँ, इन मुद्राओं के पुरोभाग पर नामाभिमुख हाथी का अंकन व खरोष्ठी लिपि में 'रजभानु मिसस' (रजा भानुमित्र) नाम तथा वाम भाग पर इंद्र ध्वज मकार, वेदिका वृक्ष और ब्राह्मीलिपि में भानुमित्र नामोल्लेख है। दो अन्य मुद्राओं में एक मुद्रा के पुरोभाग पर भल्लधारी मानवाकृति वक्र रेखा- लेख अस्पष्ट तथा वाम भाग पर वामाभिमुख हस्तयारोही तथा ब्राह्मीलिपि में भानुमित्र रत नाम है। दूसरी मुद्रा के पुरोभाग पर उपरोक्त वर्णित मुद्राओं के समान प्रतिष्ठांकन व नाम तथा पृष्ठ भाग पर बोधिवृक्ष के सम्मुख खड़ा हुआ हाथी व ब्राह्मीलिपि में भानुमित्र नामांकित है।

धुरम (पटियाला, पंजाब) से प्राप्त दो मुद्राओं में से एक मुद्रा के पुरोभाग पर वामाभिमुख खड़ा हाथी खरोष्ठी लिपि में नाम 'रञ भानुमितस' राजा भानुमित्र तथा पृष्ठ पर बोधिवृक्ष दो अन्य चिन्ह और ब्राह्मीलिपि में (रञ) भानुमितस (राजा भानुमित्र) नाम अंकित है। एक अन्य मुद्रा के पुरोभाग पर बोधिवृक्ष दो अन्य चिन्ह तथा ब्राह्मीलिपि में भागुमितस (भानुमित्र) नाम तथा पृष्ठ भाग पर किरणों युक्त सूर्य, ऊर्ध्व भाग पर बौद्ध वेदिका अंकित है। इन मुद्राओं का तिथि क्रम एलन ने प्रथम सदी ईसा पूर्व का अंत का प्रथम सदी ईस्वी का प्रारंभिक चरण बताया है।

पांचाल (अहिच्छत्रा) से भानुमित्र शासक के 17 सिक्के मिले हैं। इन पर राजा की उपाधि नहीं है। इन सिक्कों के पुरोभाग पर तीन चिन्ह और ब्राह्मीलिपि में 'भानुमितस' नामोल्लेख एवं पृष्ठ भाग पर दो स्तम्भों के मध्य वेदिका पर सूर्य प्रतीक तथा विपरीत दिशा में मकार का अंकन है। इसका तिथिक्रम 9 से 20 (प्रथम सदी) है।

देशपुर (मध्यप्रदेश) से प्राप्त एक मुद्रा के पुरोभाग पर मंदिर के शिखर के निकट गुफा में दण्ड व बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं। दण्ड के अधो भाग में वेदिका वृक्ष, दण्ड के पार्श्व में एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, मुद्रा के किनारों पर इंद्र ध्वज, उसके नीचे धनुष-बाण अंकित है। ऊर्ध्व भाग पर दायें से बायें ब्राह्मीलिपि में नाम तथा पृष्ठ भाग में दक्षिणाभिमुख रजो भानुमितस (राजा भानुमित्र) खड़ा वृषभ और ऊर्ध्व भाग पर 'श्रीमद विक्रमादित्य' नामोल्लेख है।

अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में संग्रहीत एक सिक्के के पुरोभाग पर दाहिने हाथ में दण्ड तथा बायें हाथ में मकार धारण किये शिव खड़े हैं। उनका मुखमण्डल एकमात्र वृत्त से निर्मित है। यह शिव की रूद्र आकृति है। ऊर्ध्व भाग पर ब्राह्मीलिपि में रञो भानुमितस' (राजा भानुमित्र) नामांकित है।

उज्जैन से प्राप्त एक अन्य सिक्के के पुरोभाग पर पद्मासन लक्ष्मी का अंकन तथा ब्राह्मीलिपि में 'भानुमितस' (भानुमित्र) नामांकित है।

नांदूर (रायसेन) जिला मध्यप्रदेश नामक स्थल से सतह सर्वेक्षण से प्राप्त एक सिक्के के पुरोभाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, वेदिका वृक्ष एवं मत्स्य-सरित चिन्ह और ब्राह्मीलिपि में 'भानुमितस' (भानुमित्र) नामांकित है। भानुमित्र की एक मृण्मय मुद्रांक सम्प्रति अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में संरक्षित है-भानुमित्र महा त्रिकूट प्रतीक।

उपरोक्त वर्णित भानुमित्र नामक विभिन्न शासकों के विभिन्न प्रतीकों से युक्त 35 सिक्के व एक मृण्मय मुद्रांक वर्तमान में प्राप्त है। सिक्कों पर अंकित विभिन्न प्रतीकों व उपाधि से उनके शासन की जानकारी मिलती है। पंजाब के स्थलों गुरुदासपुर से प्राप्त सिक्कों पर प्रमुखत: हाथी, हस्त्यारोही, इंद्रध्वज, वेदिका वृक्ष प्रतीक और राजा भानुमित्र नाम दो लिपियों खरोष्ठी व ब्राह्मी में अंकित है तथा इस शासक का शासन तिथिक्रम एलन ने ईसा पूर्व प्रथम सदी का अंत बताया है। घुरम से प्राप्त दो सिक्कों में एक

सिक्का हाथी प्रतीक युक्त व दो लिपियों खरोष्ठी व ब्राह्मी में राजा भानुमित्र नामोल्लेख युक्त है, जबकि दूसरे सिक्के पर पांचाल के सिक्कों के तरह पुरोभाग में तीन प्रतीक व भानुमित्र नाम राजा उपाधि रहित तथा पृष्ठ में सूर्य का अंकन है। अतएव यह सिक्का पांचाल से घुरम (पंजाब) चला गया होगा।

पांचाल से प्राप्त 17 सिक्कों के पुरोभाग पर तीन प्रतीकों का अंकन व एकमात्र 'भानुमित्र' नाम तथा पृष्ठ भाग पर नाम के अनुसार भानु (सूर्य) का अंकन है। इसका शासन तिथिक्रम डॉ. श्रीमाली ने 1 ईस्वी से 20 ईस्वी (प्रथम सदी ईस्वी का प्रारंभिक चरण) निर्देशित किया है। पांचाल से प्राप्त सिक्कों से 25 शासकों के नाम ज्ञात हुए हैं तथा इनका शासन तिथि क्रम जय गुप्त से लेकर भानु गुप्त तक 100 ईस्वी पूर्व से 20 ईस्वी तक निर्धारित किया गया है। इन शासकों के नाम व तिथि क्रम इस प्रकार हैं

1- जयगुप्त 100 ईस्वी पूर्व से 85 ईस्वी तक
2- यज्ञपाल 85 ईस्वी पूर्व से 75 ईस्वी पूर्व तक
3- रुद्रघोष 75 ईस्वी पूर्व से 65 ईस्वी पूर्व तक
4- ध्रुवमित्र 65 ईस्वी पूर्व से 50 ईस्वी पूर्व तक
5- प्रजापति मित्र
6- वरुणमित्र 50 ईस्वी पूर्व से लेकर 20 ईस्वी पूर्व तक
7- विष्णु मित्र 20 ईस्वी पूर्व से 10 ईस्वी पूर्व तक
8- सूर्य मित्र 10 ईस्वी पूर्व से 9 ईस्वी पूर्व तक
9- भानुमित्र 1 ईस्वी पूर्व से 20 ईस्वी (प्रथम सदी ईस्वी का प्रारंभिक चरण)।

इन शासकों के सिक्कों पर राजा की उपाधि नहीं है। एकमात्र इनका नामोल्लेख है। इससे यह प्रकट होता है कि ये शासक किसी शक्तिशाली शासक के अधीनस्थ शासक रहे । इस समय प्रतापी महाराजा विक्रमादित्य का प्रख्यात शासन काल रहा। अतएव ये उपरोक्त वर्णित शासक उनके अधीन रहे होंगे।

दशपुर अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर (एक सिक्का व एक मृण्मय मुद्रांक), नान्दूर सवर सर्वेक्षण से प्राप्त सिक्कों पर विभिन्न प्रतीकों का अंकन तथा एकमात्र शिव प्रकार के सिक्के पर राजा भानुमित्र तथा अन्य सिक्कों, मुद्रांक पर भानुमित्र नामोल्लेख है। परमेश्वरीलाल गुप्त ने नांदूर से प्राप्त राजा भानुमित्र सहित अन्य सात सिक्कों को विदिशा क्षेत्र से उपलब्ध सिक्कों की सूची में संयुक्त किया है। ये शासक निम्न प्रकार हैं-

1- भल्लिय
2- दास भदस (दामभद्र)
3- राञो भानुमितस (राजा भानुमित्र)
4- राञो हथ देव (राजा हस्तिदेव)
5- राञो रविभूतिस (रजा रविभूति)
6- राञो भूमिदतस (राजा भूमिदत्त)
7- नारायणमितस (नारायणमित्र)

उनके मतानुसार दाम भद्र और भानुमितस के सिक्कों पर एक समान प्रतीकों का अंकन होने के कारण ये दोनों शासक एक ही परिवार के ज्ञात होते हैं। वे इन शासकों को शुंग और कण्ववंश से सम्बन्ध स्वीकार नहीं करते । उनके मत में ये शासक कण्ववंश के पश्चात ही शासक रहे होंगे।

दशपुर से प्राप्त मुद्रा के पुरोभाग पर मध्य में शिखर मय मंदिर के मध्य दाहिने हाथ में दण्ड व बायें हाथ में कमण्डलु धारण किये शिव खड़े हैं । उनके दाहिनी ओर पार्श्व में एक वन्त उज्जयिनी चिन्ह अधोभाग में वेदिका वृक्ष मुद्रा के किनारे पर इंद्रध्वज, उसके नीचे धनुष-बाण अंकित है। मुद्रा के ऊपरी किनारे पर विपरीत दिशा में ब्राह्मीलिपि में 'भानुमितस' नाम अंकित है। पृष्ठ भाग पर दक्षिणाभिमुख वृषभ खड़ा है तथा ऊर्ध्व भाग पर ब्राह्मीलिपि में 'श्रीमद विक्रमादित्य' नामोल्लेख है। अश्विनी शोध संस्थान,

महिदपुर से प्राप्त मुद्रा पर शिव के दाहिने हाथ में ऊपर से खड़ा हुआ दण्ड तथा बायें हाथ में मकार अंकित है। मुख भाग पर एकमात्र वृत्त से निर्मित है। यह शिव की रुद्र आकृति है। उज्जैन से प्राप्त एकमात्र यही एक मुद्रा है जिस पर भानुमित्र की उपाधि राजा जानदूर से प्राप्त मुद्रा पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, वेदिका वृक्ष व मत्स्य-सरित चिन्ह व राज्ञोभानुमितस (रजा भानुमितस) नाम अंकित है।

उपरोक्त वर्णित इन मुद्राओं से यह प्रतीत होता है कि भानुमित्र सर्वप्रथम (दशपुर सिक्का) महाराजा विक्रमादित्य का अधीनस्थ शासक रहा हो तथा विक्रमादित्य के पश्चात विदिशा क्षेत्र यह स्वतंत्र शासक के रूप में शासनरत रहा है।

शुंगवंश के शासकों की पुरातत्व धरोहर

नंदसा (राजस्थान) निवासी पुष्यमित्र शुंग ने 30 वर्षों तक उज्जयिनी पर शासन किया। तत्पश्चात अंतिम मौर्य सम्राट वृहदथ का लगभग 184 ईसा पूर्व में व अकर मौर्य साम्राज्य पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। पुष्यमित्र ने 36 वर्षों तक शासन किया। उसने अपने पुत्र अग्निमित्र को विदिशा (दशार्ण क्षेत्र) का राज्यपाल नियुक्त किया। अग्निमित्र विषयक विस्तृत जानकारी कालिदास रचित मालविकाग्निमित्र से मिलती है। पुष्यमित्र ने अश्वमेध व राजसूय यज्ञ किये। हरिवंश पुराण के अनुसार राजा जनमेजय के बाद पुष्यमित्र ने ही अश्वमेध यज्ञ का पुनरुद्धार किया।

पुष्यमित्र के शासनकाल में उसके पौत्र व सुमित्र ने विदिशा से जाकर सिंधु के किनारे यवनों को पराजित किया था। उसी उपलक्ष्य में बेसनगर (राजधानी विदिशा) में अश्वमेध यज्ञ का आयोजन किया गया। विदिशा के अंतर्गत गोंदरमउ (गोनद्ध) निवासी महर्षि पतंजलि ने उस अश्वमेध यज्ञ में पुरोहित के रूप में भाग लिया। उस समय अग्निमित्र राज्यपाल के रूप में विदिशा में शासनरत थे। बेसनगर उत्खनन में प्राप्त अश्वमेध यज्ञ से सम्बद्ध यज्ञ कुण्ड, भवनों के भग्नावशेष तथा मुद्राओं पर वाचितलेख आदि का विस्तृत वर्णन आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया की 1914-15 की वार्षिक रिपोर्ट डॉ.डी.आर. भण्डारकर द्वारा लिखी गई प्रकाशित है। उन्होंने इस वार्षिक रिपोर्ट में यज्ञ स्थल से प्राप्त पुरावशेषों का इस प्रकार वर्णन किया है।

यज्ञ स्थल से प्राप्त पुरावशेषों में दो भवनों में से एक दो ऋषि-मुनियों के शास्त्रार्थ का स्थान तथा दूसरा भोजनशाला ज्ञात होता है। यज्ञ कुण्ड के अवशेष भी मिले हैं। यज्ञ स्थल से प्राप्त 31 मिट्टी के टुकड़े से यह ज्ञात होता है, जिन पर मुद्राओं की छापे लगी हुई हैं। इस स्थल से उपलब्ध मुद्रांक विभिन्न प्रकार की है। उनका वर्णन क्रमश: इस प्रकार है।

1- टिमिल दातृस्य (ए) हो (ता) प (+) ता मंत्र सजन (ौ)

2- ... स्म महा (T) र (T) ज श्री विस (T) मितस्य स्वाम (मि:)

3- ...र (ज्ञो)...पस (यज्ञश्र) (ौ) (होतृ) (तृ) (नि)

4- हयदस्त्याधिकारी

5- दो दंड नायकों के मुद्रांक

क- दो पंक्तियों के लेख ... पर. नुगु-, . दण्डनायक विलु

ख- दो पंक्तियों में लेस चे. गिरिक पुत्र छ र (ड) नायक श्री सेनस (चेतगिरि का पुत्र श्री सेन)

मृण्मयी मुद्रांकों पर साधारण नागरिकों के नाम अंकित हैं।

1- सूर्य भर्तृवर पुत्रस्य (त्र) स्म विष्णु गुसस्य सूर्य भर्तुवर पुत्र विष्णु गुप्त का (इस प्रकार के चार टुकड़े मिले हैं)।

2- (स्) कन्द घोष पुत्र स्य भवभोषस्य, स्कन्द के पुत्र भवघोष (इस प्रकार के दो टुकड़े मिले हैं)।

3- श्री विजय (तीन टुकड़े)

4- कुमारवर्मन

5- विष्णपिय आदि।

इन मृण्मयी मुद्रांकों के आधार पर विद्वानों ने अपने अनुमान लगाये हैं। हरिहर निवास द्विवेदी ने विभिन्न मुद्रांक एवं अन्य मुद्रांकों को लेकर यह मत प्रतिपादित किया है कि महाराज विश्वामित्र और मत्त श्री राजा कौन है कुछ ज्ञात नहीं। संभवत: यह विश्वामित्र शुंगवंशी नरेश हो। डिमेटियस के यज्ञ को राजा का संरक्षण प्राप्त था और उसका सम्बन्ध उसके दण्डनामक एवं

हयदस्तयाधिकारी भी कर रहे थे। किंतु यज्ञ स्थल से प्राप्त इन समस्त मुहरों पर संस्कृत भाषा में लेख अंकित हैं। इससे यह प्रतीत होता है कि ये मुद्रांक यज्ञ कालान्तराल की होगी। अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर से पुष्यमित्र की एक दुर्लभ मुद्रांक प्राप्त हुई है, वह इस प्रकार है-

मृण्मयी मुद्रांक- गोल आकार, नारंगी रंग

माप-2 से.मी. तथा ब्राह्मीलिपि में नाम पखमितस तथा स्वास्तिक- प्रतीक अंकित है। पुष्यमित्र से सम्बद्ध यह एकमात्र पुरातत्व निधि है। धनदेव के अयोध्य अभिलेख में पुष्यमित्र को दो अश्वमेध यज्ञों का आयोजक कहा गया है।

अग्निमित्र (पुष्यमित्र) का पुत्र एवं उत्तराधिकारी)। पुष्यमित्र ने 36 वर्षों (184-36=148 ईसा पूर्व) तक शासन किया। तत्पश्चात अग्निमित्र शासक नियुक्त हुआ। उससे सम्बन्धित सिक्के बेतवा नदी तट पर स्थित एरिच नामक स्थल से प्राप्त हुए हैं। ज्येष्ठ मित्र (वसुज्येष्ठ) के सिक्के भी इस स्थल से प्राप्त हुए हैं। अग्निमित्र ने 8 वर्ष एवं वसुजष्ठ ने 7 वर्ष शासन किया। इन सिक्कों का वर्णन एम.एल. गुप्ता ने किया है। वसुज्येष्ठ के पश्चात वसुमित्र उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। वसुमित्र से सम्बद्ध दो ताम्र मुद्राएँ मिली हैं। एक मुद्रा डॉ. नागु मुद्रा संग्रह की डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर द्वारा प्रकाशित है।

उसके पुरोभाग पर द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह, अष्टार चक्र, वेदिका वृक्ष, इंद्र ध्वज तथा अधोभाग में मत्स्य सरित चिन्ह एवं दाहिनी ओर ब्राह्मीलिपि में वसुमितस (वसुमित्र) नाम अंकित है एक संग्रहीत है।

उसके पुरोभाग पर दाहिनी ओर मत्स्य सरित चिन्ह, वृक्ष के सम्मुख खड़ा हुआ ऊर्ध्व शुंड हस्ति, उसके नीचे द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह तथा अधोभाग में ब्राह्मीलिपि में 'वसुमितस' (वसुमित्र) नाम अंकित है। वसुमित्र ने 10 वर्ष शासन किया।

शुंग शासनकाल में यवनों से संघर्ष होकर अंत में मैत्री स्थापित हो गयी। पुराणों के अनुसार शुंगवंश में दस शासकों ने शासन किया। नवें शुंग शासक भाग (भागवत) के शासनकाल में ग्रीक शासक अंतिम लिखित ने हेलिकोदोर नामक अपना राजदूत विदिशा भेजा था। उसने प्रसिद्ध गरुड़ध्वज स्थापित करवाया। इस अभिलेख में यह उल्लेख है कि भाग (भद्र) नामक शासक के चौदहवें राज्य वर्ष में यवन राजदूत हेलियोदोर बेसनगर (विदिशा) आ गया। इसमें शुंगवंश का नाम प्राप्त नहीं है। अतएव यह भाग (भद्र) शासक शुंगवंश से सम्बद्ध न होकर अन्य कोई शासक विदिशा क्षेत्र का शासक रहा हो। क्योंकि शुंग शासन मगध प्रदेश पर रहा तथा पाटलीपुत्र (पटना) उनकी राजधानी थी।

सातवाहन शासक कान्ह (कृष्ण) के सिक्के अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर

1- ताम्र मुद्रा, अनियमित आकार

पुरोभाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, विकोणाधारित ध्वजदण्ड, धनुष तथा बायीं ओर किनारे के समीप ब्राह्मीलिपि में कान्ह (कृष्ण) नाम और ऊर्ध्व भाग पर एक वृत्त चिन्ह अंकित है।

पृष्ठभाग- घिसा हुआ।

2- अंडाकार ताम्र मुद्रा, माप - 2.1 गुणा 1.8 से.मी., वजन-3.76 ग्राम

पुरोभाग- तीन एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, ध्वजदण्ड तथा बायें किनारे पर ब्राह्मीलिपि में कान्ह (कृष्ण) नामांकित है।

पृष्ठ भाग- अस्पष्ट एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।

3- ताम्र मुद्रा, वर्गाकार, 1.2 से.मी., वजन 2.12 ग्राम

पुरोभाग- दक्षिणाभिमुख ऊर्ध्व-शुंद्र हस्ति खड़ा है। सूँड के सामने मकार तथा निम्न भाग में ब्राह्मीलिपि भाग में ब्राह्मीलिपि में कान्ह (कृष्ण) नामांकित हैं तथा मत्स्य-सरित चिन्ह अंकित है।

पृष्ठ भाग-बिन्दु युक्त एक वृत्त चिन्ह अंकित है।

सातवाहन शासक सातकर्णि प्रथम के सिक्के (क्र. 4-10 वर्ष)

1- ताम्र वर्गाकार, माप 1.5 से.मी., वजन 2.25 ग्राम

पुरोभाग- वामाभिमुख निम्न शुंड हस्ति खड़ा है। उसके ऊर्ध्व भाग पर ब्राह्मीलिपि में सातक (निस) नाम तथा ऊपर बिन्दु युक्त अर्द्ध वृत्त अंकित है।

पृष्ठभाग- बिन्दु युक्त द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह और चारों कोनों पर द्विवृत्त चिन्ह अंकित है।

2- ताम्र, वर्गाकार, माप 2.2 से.मी., वजन 5.39 ग्राम

पुरोभाग- बायीं ओर किनारे पर ऊर्ध्व शुंड हस्ति खड़ा है। मुद्रा के मध्य में एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह तथा ब्राह्मीलिपि में रञो सिरि सातकनिस (राजा श्री सातकर्षि) नामांकित है।

पृष्ठभाग- घिसा हुआ

3- ताम्र मुद्रा वर्गाकार

पुरोभाग-वामाभिमुख ऊर्ध्व-शुंड हस्ति खड़ा है। ऊर्ध्व भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।

पृष्ठ भाग- तीन वृत्त युक्त उज्जयिनी चिन्ह, ऊर्ध्व भाग पर भ्रष्ट ब्राह्मीलिपि में सिरि सादोकनस (श्री सातकर्णि) नाम और अधोभाग में दो बिन्दु अंकित हैं।

4- ताम्र मुद्रा, वर्गाकार

पुरोभाग- मुद्रा के अधोभाग में एक वृत्त पर दक्षिणाभिमुख ऊर्ध्व शुंड हस्ति खड़ा है। हाथी के मुंह के नीचे दक्षिणाभिमुख वृषभ खड़ा। हाथी के ऊर्ध्व भाग पर स्वास्तिक, जयध्वज और ऊपरी किनारे पर भ्रष्ट ब्राह्मीलिपि में सातरनिस (सातकर्णि) नामांकित है।

पृष्ठभाग- बिन्दु युक्त द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह तथा प्रत्येक कोण के मध्य मकार चिन्ह अंकित है।

5- ताम्र मुद्रा, गोल, माप 1.4 से.मी., वजन 2.22 ग्राम

पुरोभाग- वैदिका वृक्ष तथा ऊर्ध्व भाग पर ब्राह्मीलिपि में (सात) कनिस नामांकित है।

पृष्ठ भाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह तथा प्रत्येक वृत्त में मकार अंकित है।

सातवाहन शासक शक्ति के सिक्के अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर, क्र. 5

1- चाँदी, आयताकार, 2 गुणा 2.4 से.मी., वजन 7.50 ग्राम

पुरोभाग- वेदिका वृक्ष के सम्मुख पूँछ ऊँची उठाये सिंह खड़ा है।

पृष्ठ भाग- बिन्दु युक्त द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह ब्राह्मीलिपि में 'सातस सिरि' नामांकित है।

2- ताम्र, वर्गाकार, 2.2 से.मी, वजन 6. 15 ग्राम

पुरोभाग- वृक्ष के सम्मुख दाहिनी ओर शुंड ऊंची उठाये हाथी खड़ा है।

पृष्ठभाग- अष्टार चक्र तथा ब्राह्मीलिपि में लेख 'सिरि सातस' और एक बिन्दु युक्त वृत्त अंकित है।

3- ताम्र, वर्गाकार, 1.8 से.मी., वजन. 05 ग्राम

पुरोभाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह वेदिका ध्वजदण्ड मत्स्य सरित चिन्ह और ब्राह्मीलिपि में 'सिरि सातस' नामांकित है।

4- ताम्र, वर्गाकार, 1.7 से.मी. माप, वजन 3.30 ग्राम

पुरोभाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, मत्स्य सरित चिन्ह, ब्राह्मीलिपि में 'सातस' नामांकित है।

पृष्ठभाग- रिक्त

5- ताम्र, वर्गाकार, माप 1.0 से.मी., वजन 0.64 ग्राम

पुरोभाग- अर्द्धचंद्र युक्त तीन चाप वाला चैतय ब्राह्मीलिपि में सिरिसातस नामांकित है।

पृष्ठ भाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।

6- ताम्र, आयताकार, माप 1.8 गुणा 0.5 से.मी., वजन 1.18 ग्राम

पुरोभाग- दक्षिणाभिमुख ऊर्ध्व सुंड हस्ति खड़ा है। ब्रह्मीलिपि में 'सिरिसातस' नामांकित है।

पृष्ठभाग- घिसा हुआ है।

7- ताम्र मुद्रा, वर्गाकार

पुरोभाग- मुद्रा के मध्य में ब्राह्मीलिपि में 'सातस' नाम, ऊर्ध्व भाग पर बिन्दु युक्त अर्द्धवृत्त बायीं ओर मकार प्रतीक, मुद्रा के ऊधोभाग पर दक्षिणाभिमुख कोई अज्ञात गतिशील पशु अंकित है।

पृष्ठ भाग- द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह प्रत्येक कोण में मकार चिन्ह अंकित है।

8- ताम्र मुद्रा, अनियमित आकार

पुरोभाग- दक्षिणाभिमुख ऊर्ध्व सुंड हस्ति खड़ा है। ऊर्ध्व भाग में ब्राह्मीलिपि में 'सिरिसातस' नाम एवं हाथी के नीचे एक वक्र रेखा के ऊपरी दोनों किनारों पर एक-एक बिन्दु अंकित है।

पृष्ठ भाग- द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह, ऊर्ध्व भाग पर दो स्वास्तिक तथा दाहिने किनारे पर द्विवृत्त चिन्ह और ऊधोभाग पर भी दो स्वस्तिक प्रतीक अंकित है।

9- ताम्र मुद्रा, वर्गाकार, माप 1.4 से.मी., वजन 2.32 ग्राम

पुरोभाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह तथा ब्राह्मीलिपि में 'सिरिसातस' नामांकित है।

पृष्ठ भाग- वेदिका वृक्ष अंकित है।

10- मोदिन मुद्रा, गोल

पुरोभाग- कमल पर खड़ी वामाभिमुख मानवाकृति, उज्जयिनी चिन्ह, ब्राह्मीलिपि में लेख 'राञो सिरि सालिस' पृष्ठ भाग- वामाभिमुख खड़ा हाथी, पीठ के ऊपरी भाग पर वेदिका वृक्ष, दाहिनी ओर तीन चाप वाला चैत्य तथा निम्न भागपर मत्स्य सरित चिन्ह अंकित है। कैटलॉग ऑफ द क्वायन्स ऑफ द आन्द्र डाईनेस्सी, द वेस्टर्न क्षत्रपात्र इन द ब्रिटिश म्युजियम लंदन, रेप्सव, पृ. 21, मानवाकृति पृष्ठ भाग पर व हाथी पुरोभाग पर दर्शाया गया है।

11- पुलुवामि प्रथम- ताम्र मुद्रा गोल, माप 1.7 से.मी., वजन 2.2 ग्राम

पुरोभाग- सुंड ऊपर उठाये दक्षिणाभिमुख हाथी खड़ा है। ऊर्ध्व भाग पर ब्राह्मीलिपि में 'पुलमावि' नाम अंकित है।

वाम भाग- एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, प्रत्येक वृत्त में मकार अंकित है।

तडत वाशिष्ठी पुत्र पुलवामी रजत मुद्रा, वृत्ताकार, माप 1.6 से.मी., वजन 1.600 ग्राम

पुरोभाग- शासक की आवक्ष-प्रतिमा ब्राह्मीलिपि में वासिठी पुतस... सर ... पु एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, अर्द्धचंद्र युक्त षट्कूट, ऊर्ध्व भाग पर सूर्य तथा निम्न भाग पर लहरदार पंक्ति, वृत्तायत ब्राह्मीलिपि में लेख अरहणकु वाहिटिय माकनकुतिस... कुं।

तडत गौतमीपुत्र यज्ञ श्रीसातकर्णि रजत मुद्रा, वृत्ताकार, माप 1.5 से.मी., वजन 1.660 ग्राम

पुरोभाग- शासक की आवक्ष प्रतिमा वृत्तायत ब्राह्मीलिपि में लेख गौमतीपुरतस तथा सिर के ऊपरी भाग पर रञो शेष सिक्के के किनारे से बाहर।

वाम भाग- अर्द्धचंद्र युक्त एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह प्रत्येक वृत्त में बिन्दु, अर्द्धचंद्र युक्त तथा निम्न भाग में लहरदार पंक्ति बिन्दु अलंकृत किनारे पर वृत्तायत लेpख (अरहर छरारञ) गौतमी पुतकु हिस शेव लेख किनारे से बाहर।

अ.शो.सं. गौतमी पत्र यज्ञ श्री सातकर्णि वृत्ताकार, रजत मुद्रा

पुरोभाग- शासक की आवक्ष प्रतिमा, ब्राह्मीलिपि में लेख 'रञो गौतमी पुतस सिरि यज्ञ हातकणिस

वाम भाग- अर्द्धचंद्र युक्त एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, षट्मेरू, सूर्य तथा निम्न भाग में लहरदार रेखांकन और ब्राह्मीलिपि में द्राविड़ भाषा में लेख 'अरहणकु गोमती पुतकु हिरू यज्ञ हातकणिकु (राजा गोतमी पुत्र) हिस यज्ञ हालकणिकु।

तडत विजय सातकर्णि

1- ताम्र मुद्रा, वर्गाकार 1.5 गुणा 1.37 से.मी., वजन 2.450 ग्राम।

दक्षिणाभिमुख वृषभ, दायें स्वास्तिक बायीं ओर मकार ब्राह्मीलिपि में विजय के नाम अंकित है। वामभाग-उज्जयिनी

प्रतीक।

2 - ताम्र मुद्रा, वर्गाकार 1.2 से.मी., वजन 2.040 ग्राम।
पुरोभाग- दक्षिणाभिमुख वृषभ, उपरोक्त चिन्ह ब्राह्मीलिप में 'विजयक' नाम वामभाग- उपरोक्त प्रकार

3- ताम्रमुद्रा, वर्गाकार, 1.5 गुणा 1.25 से.मी., वजन 2.540 ग्राम
पुरोभाग- प्रतीक उपरोक्त प्रकार ब्राह्मीलिपि में लेख 'व (व)जयक' अंकित है।
वामभाग- द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।
अ.शो.सं. रूद्र सातकर्णि ताम्र मुद्रा, गोल
पुरोभाग- दक्षिणाभिमुख निम्न कुंड हस्ति खड़ा है। उसके सिर के ऊपर 'रूद्र' लेख है। ब्राह्मीलिपि में लेख 'रूद्र हातकनीस' (रूद्र सातकर्णि) अंकित है। वामभाग- बिन्दु युक्त द्विवृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है।

उज्जयिनी परिक्षेत्र से प्राप्त सातवाहन वंश के शासकों के सिक्के

सातवाहन वंश का नाम सातवाहन नामक शासक के नाम से प्रचलित हुआ, ऐसा विद्वानों का अभिमत है। सातवाहन नामांकित सिक्के भी वर्तमान में प्राप्त हैं। अतएव यह सातवाहन वंश का सर्वप्रथम शासक है। सातवाहन के पश्चात सिमुक उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ। इस शासक का नाम पुराणों में वर्णित सातवाहन वंश की सूची में प्रथम निर्देशित किया गया है। सिमुक के विषय में यह कथन है कि वह शुंगों की अवशिष्ट पंक्ति व कण्व शासकों का उच्छेद करेगा। इस सम्बन्ध में सा. वि. मिराक्षी का कथन है कि सातवाहन के वंश का इस समय उदय हुआ तथा उदय होते ही कोई भी वंश संस्थापक तथा शक्तिशाली नहीं हो सकता कि वह इतने दूर के प्रदेश पर आक्रमण कर सके। पुन: यह भी अज्ञात है कि कण्व-शासक किस क्षेत्र पर शासन कर रहे थे। प्रथम सदी ईसा पूर्व में शक्तिशाली महाराजा विक्रमादित्य मालवा क्षेत्र पर शासन कर रहे थे। इस क्षेत्र में सिमुक से सम्बद्ध कोई पुरातत्व प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है।

उज्जयिनी परिक्षेत्र में सातवाहन वंश के शासकों के 24 सिक्के प्राप्त हुए हैं। इनमें कृष्ण (कान्ह) के तीन सिक्के मिले हैं। यह सातवाहन वंश में तीसरे क्रम का शासक है। इसने 10 वर्ष शासन किया। सिमुक के पश्चात उसका अनुज कृष्ण उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ (37-28 ईसा पूर्व)। इस शासक के नाम की एकरूपता सातवाहन कुल के राजा कान्ह से की गई है। उसके समकालीन नासिक गुफा के लेख में यह वर्णन है 'सातवाहन ककुल कन्हे राजिनि' (सातवाहन कुल के कृष्ण के राज्य शासन के समय)। इस लेख से यह भी ज्ञात होता है कि राजा कान्ह के समय में नासिक के किसी उच्च अधिकारी (श्रमण-महामात्र) ने एक गुफा का निर्माण करवाया था। उज्जयिनी परिक्षेत्र से प्राप्त कान्ह (कृष्ण) नामक तीनों सिक्के विविध प्रकार के हैं। एक सिक्के पर एक वृत्त उज्जयिनी प्रतीक, इंद्र, ध्वज, धनुष व कान्ह नाम अंकित है। दूसरे सिक्के पर तीन एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह, इंद्र ध्वज तथा नाम कान्ह अंकित है। तीसरे सिक्के पर ऊर्ध्व शुंड हस्ति, मकार, मत्स्य सरित चिन्ह और कान्ह नामोल्लेख है। पृष्ठ भाग पर एक वृत्त उज्जयिनी चिन्ह अंकित है। कान्ह (कृष्ण) नाम यह सातवाहन शासक महाराजा विक्रमादित्य का समकालीन होकर इसकी राजा की उपाधि सिक्कों पर अंकित नहीं मिलती, एकमात्र नाम कान्ह (कृष्ण) अंकित मिलता है।

पुराणों के अनुसार कान्ह (कृष्ण) के पश्चात सातकर्णि (28-17 ईसा पूर्व) शासक नियुक्त हुआ। उसके नाम के पाँच सिक्के मिलते हैं। इनमें से चार सिक्कों पर निम्न व ऊर्ध्व शुंड हस्ति तथा एक सिक्के पर वेदिका वृक्ष का अंकन है। उन पर उसके नाम तथा सातक (निस) राञो सिरिसातनिस, सिर सादाकेन स, सातरनिस और (सात) कनिस अंकित है। इसे इतिहासकारों ने प्रतिष्ठान का राजा तथा शक्तिकुमार का पितर कहा है। खारवेल के हाथी गुफा अभिलेख से यह ज्ञात होता है कि वह शासन के दूसरे वर्ष सातकर्णि के रक्षार्थ गया था। यह सातवाहन शासक सातकर्णि भी महाराजा विक्रमादित्य का समकालीन शासक है।

'श्री सातक' नामांकित दस सिक्के मिले हैं 15 प्रथम सातकर्णि में पुराणों में दो पुत्र वर्णित है। प्रथम वेदि श्री एवं दूसरा शक्ति श्री। विद्वानों ने सिक्कों पर अंकित 'सिरि सातक' नामांकित सातवाहन शासक का समीकरण शक्ति श्री से किया है। इसके सिक्के विविध प्रकार के प्रतीकों से अंकित हैं। इन पर पूँछ ऊपर उठाये हुए सिंह, ऊर्ध्व शुंड हस्ति, कमल पर खड़ी वामाभिमुख मानवाकृति।

संदर्भ

1. क्वायन्स ऑफ एंशियंट इंडिया अलैक्स जेंडर कनिंघम।
2. ब्रिटिश म्युजियम क्वायन्स, लंदन जॉन एलन।
3. डेवलपमेंट ऑफ हिन्दू आईकनोग्राफी- जे. एन. बैनर्जी।
4. विक्रमादित्य और पुरातत्व महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, उज्जैन।
5. शिव की विविध रूपांकित मुद्राएं सम्प्रति डॉ. विष्णु श्रीधर. वाकणकर शोध संस्थान, उज्जैन और अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में प्रभूत मात्रा में संक्षिप्त हैं।
6. कुषाण शासकों की मुद्राएँ

अ- कैटलॉग ऑफ क्वायन्स इन द पंजाब म्यूजियम- आर. बी. व्हाईटहेडजर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया।

ब- कैटलॉग ऑफ द क्वायन्स ऑफ द नाग किंग्स ऑफ पद्मावती - एच. वी. त्रिवेदी।

स- विक्रमार्क - वर्ष - 1, अंक - 1, मार्च 2013, पृ. 54-57।

8. ब्रिटिश म्यूजियम क्वायन्स, एंशियंट इंडिया, पृ. 128
9. न्यूमिस्मेदिक द्रायजेसठ, भाग 2, 1979, खंड 2, पृ. 11
10. पांचाल क्वायन्स - श्रीमाली, पृ. 23, 24
11. जर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ मध्यप्रदेश, भाग 2, पृ.
12. विक्रमार्क, ग्रंथ 3, अंक 2, 2013-2014, पृ. 9
13. पूर्व मध्यकालिक सिक्के, पृ. 118-200
14. जर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया, 1963, पृ. 50-53
15. ग्वालियर राज्य के अभिलेख हरिहर निवास द्विवेदी, पृ. 12, 13
16. जर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया 1990, पृ. 37, 38
18. न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ मध्यप्रदेश, भाग 2, पृ. 35
19. उपरोक्त क्र. 2, 1963, पृ. 50-53
20. जर्नल न्यूमिस्मेटिक सोसायटी ऑफ इंडिया, भाग 44 (1982), पृ.
21. पुलमावी प्रथम की ताम्र मुद्रा अश्विनी शोध संस्थान महिदपुर में संग्रहीत है।
22. गौतमी पुत्र यज्ञ श्री की दो रजत मुद्राएँ अश्विनी शोध संस्थान महिदपुर तथा एक रजत मुद्रा डॉ. विष्णु श्रीधर वाकणकर शोध संस्थान, उज्जैन में संरक्षित है।
23. विक्रमार्क ग्रंथ 3, वर्ष 1, अंक 2, 2013-2014, पृ.19
24. रूद्र सातकर्णि की एक मुद्रा अश्विनी शोध संस्थान, महिदपुर में संग्रहीत है।

वैदिक गणित में शून्य की अवधारणा

डॉ. घनश्याम पाण्डेय

यद्यपि सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जाता है कि शून्य अंक भारतीय गणितज्ञों का मूल योगदान है, इसकी खोज का समय अब भी रहस्यमय है। दार्शनिक रूप से शून्य की अवधारणा वैदिक काल से ही समुचित प्रख्यात वेदांत-दर्शन के निरूपण में इसने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। इस लेख में हम स्थापित करते हैं कि वशिष्ठ संहिता के संयोजन के काल में गणितीय शून्य का उपयोग बहुधा किया जाता था एवं कुछ खगोलीय गणनाओं का उपयोग करने पर इस युग का 1059 ईसा पू. होना प्रतीत होता है। साथ ही हम शून्य से संबंधित विभिन्न गणितीय संक्रियाओं के इतिहास पर विस्तार से चर्चा करते हैं। यह लेख शून्य के मूल और वैदिक साहित्य में अन्य संबंधित अवधारणाओं की खोजबीन करने का मार्ग प्रशस्त सकता है।

परिचय

इस ग्रह पर वैदिक सभ्यता के उदय के समय से ही गणित की शिक्षा को ज्ञान की सबसे महत्वपूर्ण शाखा माना जाता रहा है। उदाहरण के लिए वेदांत ज्योतिष (1800 ईसा पू.) जिसे यजुर्वेद का अंश माना जाता है, में गणित को (25)-

तथा शिखा मयूराणां षागानां मणयो यथा।
तद्वद्वेदांग शास्त्राणां गणितमूर्धनीस्थितम् ।।

अर्थात्, जिस प्रकार मयूर की शिखा तथा नागों में मणि होता है, उसी प्रकार गणित सभी वेदांगों में शीर्ष पर होता है। यही श्लोक नारद संहिता में भी उपलब्ध है।(16)। नारद संहिता में वैदिक युग के सबसे शीर्ष क्रम के अठारह गणितज्ञों के नाम का उल्लेख निम्नवत किया गया है।

ब्रम्हाचार्यो वसिष्ठो अत्रिमर्नु: पौलस्त्य लौमशौ: मरीचिअंगिरा सो नारद: शौनको भृगु:।
भवनो यवनो गर्ग: कश्यप्श्च पाराशर: अष्टादशैते गम्भीरा: ज्योति: शास्त्र पवर्तका: ।।

वस्तुत: पंचांग प्रणाली का प्रारंभ वस्तुत: ऋग्वैदिक काल में हुआ था एवं 360 दिनों और 360 रातों सहित एक वर्ष में बारह महीनों को मान्यता दी गई थी (12: 164, 11) -

द्वादशारं नाहिंताज्जराय वर्षतिंचक्र परिद्यामृतस्य।
आ पुत्र अग्नेमिथुना सो अत्र सप्तशतानि विशातिश्च तस्यु:।।

अर्थात्, 12 अरों से युक्त सूर्य का चक्र पृथ्वी के चतुर्दिक भ्रमण करता तथा कभी नष्ट नहीं होता। इस चक्र में 360 युग्म आरूढ़ हैं। यजुर्वेद में 27 नक्षत्रों की पूरी श्रृंखला को मान्यता दी गई है। यजुर्वेद देवताओं की प्रथम गणना का उल्लेख भी करता है।(27,33.7)

त्रीणिशतात्री सहस्त्राण्य अग्निं त्रिशच्य देवा नवचासपर्यन ।

अर्थात् 3339 देवता अग्नि की सेवा में रत हैं।

अथर्ववेद में (1,8.8.7)10 (न्यर्बुद) तक की बृहत संख्याओं का उपयोग मिलता है यथा-

वृहते जालं वहत इन्द्र शूर: सहस्त्रसार्धस्य शतवीर्यस्य ।
तेन शतं सहस्त्रमयुतं न्यर्बुदं जघान शक्रो दस्युनाभिदाय सेनया ।।

(अथर्ववेद [1] VIII;8.7)

अर्थात् इंद्र, जो सौ शक्तियों के स्वामी हैं और सहस्त्र योद्धाओं से युद्ध करने में सक्षम हैं। उन्होंने शत, सहस्त्र, अयुत एवं दस्युओं का वध किया है। वस्तुत: दशमलव प्रणाली और शून्य प्राचीन भारतीय गणितज्ञों के महान् योगदान हैं। बाशम लिखते हैं (4.पृ.496):

"वह अज्ञात व्यक्ति जिसने शून्य और दशमलव प्रणाली का आविष्कार किया। संसार के दृष्टिकोण से बुद्ध के बाद भारत का सबसे महत्वपूर्ण पुत्र था। उसकी उपलब्धि प्रथम कोटि के विश्लेषणकर्ता मस्तिष्क का कार्य था। वह उससे कहीं अधिक सम्मान का पात्र है जो उसे अब तक मिला है। शून्य का गणितीय आशय और अनंतता की पूर्ण समझ मध्ययुगीन भारत में थी।"

दूसरी ओर बर्ट्रेंड रसेल (20.पृ. 3), लिखते हैं- "जहाँ तक शून्य का सवाल है, इसे गणित में बहुत बाद में शामिल किया गया है। यहाँ तक कि ग्रीक और रोमनों के पास भी ऐसा कोई अंक नहीं था।"

प्रस्तुत लेख में हमारा उद्देश्य वैदिक साहित्य में शून्य के मूल और गणित, दर्शन, और तत्वमीमांसा के विकास पर उसके प्रभाव का विस्तृत अध्ययन करना है।

2. वेदांत दर्शन में शून्य

शून्य वेदांत दर्शन की एक आधारभूत अवधारणा है। कठोपनिषद जो कि कृष्ण यजुर्वेद का एक अंश है। वह शून्य और अनंतता दोनों की एक स्पष्ट छवि प्रदान करता है (23;11. 6.1 4)

यथा सर्वे प्रमुच्यते कामा येअस्य हृदिस्थित:।तेमर्त्यो अमृतोभव त्यत्रब्रह्मा समश्नुते।।

अर्थात्, जब (किसी व्यक्ति के) हृदय में रहने वाली सभी कामनाएँ शून्य हो जाती हैं। तब नश्वर मानव अनश्वर और ईश्वर के समकक्ष बन जाता है।

आधुनिक गणित की भाषा में उपरोक्त विचार को इस प्रकार से व्यक्त कर सकते हैं-

सीमा p/d (अमना ब्रह्म),

जहाँ p = स्वत्व, d = कामनायें एवं ईश्वर के ø प्रतीक है, = 0 के प्रसंग में, P/0 को 'खहर' कहा जाता है। जिसकी चर्चा भास्कराचार्य ने 12वीं शताब्दी ई. में विस्तार से की है।

शून्य और अनंत के प्रति उपरोक्त मतों का उपयोग श्वेताश्वतर उपनिषद में आत्मा के सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म और बृहदतम से भी बृहद होने की वैदिक अवधारणा को प्रस्तुत करने के लिए किया गया है (23; III, 20)

अणोरणीयान्महतो महीया–नात्मा गुहायां नहितोअस्य जन्तोः ।।

अर्थात्, अणु से भी सूक्ष्म और विशालतम से भी विशाल आत्मा प्रत्येक के हृदय में वास करती है। यद्यपि, दिखाई देने में विरोधाभासी आत्मा के उपरोक्त गुणों का गणितीय साक्ष्य वेदांत दर्शन की सीमा में है। जिसकी चर्चा आने वाले भाग में की जाएगी।

3. आत्मा का अमरत्व और पुनर्जन्म

आत्मा के अमरत्व की अवधारणा वेदांत दर्शन की आधारशिला है। जैसा कि भगवान कृष्ण कहते हैं : (10, II, 24)

अच्छेद्योअयमदाहयो अयम शोष्य एव च।

नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलो अयं सनातनः ।।

अर्थात्, आत्मा अछेदय, अज्वलनशील, जल से अप्रभावित और शुष्क न होने वाली होती है। यह आत्मा अनादि, सर्वव्याप्त, अचल, स्थिर और चिरस्थायी होती है।

वैदिक साहित्य में शून्य की अवधारणा जैसा कि आगामी भागों में वर्णित है। आत्मा के अमरत्व और पुनर्जन्म के निरूपण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विशेषत: श्वेताश्वत उपनिषद में हृदय में स्थित आत्मा के आकार का वर्णन अनंत रूप से सूक्ष्म (बाल की नोक के 10वें भाग के समान) बताया गया है। तब भी वह उस बिंदु पर ईश्वर के समतुल्य किया गया है (Cf(22);V-9)

बालाग्र शतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।

भागो जीवः सविज्ञेयः सचानन्त्याय कल्पते ।।

अर्थात् बालाग्र के सौवें हिस्से को फिर से सौ हिस्से से विभाजित किया जाए (अर्थात् बालाग्र को 104 में विभाजित किया जाए)। आत्मा का वास वहाँ अनंत के समतुल्य कल्पित किया गया है।

आधुनिक गणित की भाषा में आत्मा में उपरोक्त कथन को निम्नवत् को वैदिक व्यक्त किया जा सकता है;

v(x)=[o,x=o oe, x=o] एवं v(x)=1

उपरोक्त वर्णित वैदिक फलन को पॉल डिराक द्वारा 1928 में किया गया है, जिन्होंने उसे डेल्टा फ़ंक्शन का नाम दिया। बाद में लॉरेन्ट श्वार्ज (21) ने इसकी पहचान सिंगुलर वितरण के रूप में की। दूसरी ओर गेल्फ़ाल्ड और शिलोव ने इसे सिंगुलर सामान्यीकृत फलन माना है।

डेल्टा फंक्शन की परिभाषा भी v(x) सदृश ही है। इसे <v,+_>=oe, v(x)+_(x)dx के रूप में व्यक्त करते हैं,

जहाँ एक देस्ट फंक्शन इस सूत्र से वेदांत दर्शन में वर्णित सभी जीवात्मा के समस्त विशेषताओं का प्रमाण प्राप्त हो जाता है। तथा श्रीमद् भगवद्गीता के अनुसार (10,2.23)-

नैनं छदन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।

नचैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।

अर्थात्, शस्त्र आत्मा को काट नहीं सकते, न ही अग्नि उसे जला सकती है; जल उसे गीला नहीं कर सकता न ही पवन सुखा सकता है. उदाहरणार्थ-

1/100<v,$>=<v,1/100$>

अर्थात् शस्त्र द्वारा छेदन शरीर का ही होता है। श्रीमद भगवतगीता के अनुसार पुनर्जन्म पर भी आत्मा अपरिवर्तित रहती है तथा शरीर का ही रूपांतरण होता है। यथा(10, 2.22):

वासांसि जीर्णानि यथा विहष्य मवानित ग्रह्जाति नरो उपराणि।

तथा शरीराणि विदंयजीर्णा न्यायानि सयाती नवानि दे ही।।

अन्य सभी रूपांतरणों में भी आत्मा अपरिवर्तित रहती है। जबकि शरीर रूपांतरित होता है।

4. शून्य का गणितीय रूप

दत्ता एवं सिंह (9, पृ. 75-77) ने प्राचीन भारत में अंकगणितीय शून्य के उपयोग पर विस्तार से चर्चा की है। उन्होंने ध्यान दिलाया है कि गणितीय अर्थ में शून्य का सर्वप्रथम उपयोग पिंगल के छन्दः शास्त्रम् में किया गया था। जिसे 500 ईसा पूर्व के लगभग रचा गया था शून्य के रूप को निम्नवत् प्रदर्शित करता है:

द्विरद्वै ।

अपनीतः इत्यध्याहार। यदाजिज्ञासेत षडक्षर छन्दसि कति वृत्तानि भदन्ति तथा

तां झन्दोअ क्षरसंख्या भूमौस्थायित्वा ।

ततो अर्ध अपनयेत। तस्मिन्नपनीते द्वौलभ्यते ततस्तां द्विसंख्या भूमौपृथक प्रस्तारयते।

ततः शेषास्तययोअक्षर संख्यायां भवन्ति।

तेषामर्धयितुम शक्यत्वात् किंकर्तव्यमित्याह ।।

इसका अर्थ है कि किसी छः अक्षर के छन्द का स्वभाव जानने के क्रम में धरातल पर 6 लिखें। 6 को 2 से भाग दें। भजनफल 3 एक विषम संख्या है, जिसे 2 से भाग नहीं दिया जा सकता। इस अंक के साथ क्या करना है यह अगले सूत्र में दिया गया है।

रूपे शून्यम् । विषम संख्यातो रूपमनीय तस्मिन्नपनीते शून्यं लभते ।

तत्र पूर्व लब्धाया द्विसंख्याया अधस्तात रथापयेत्

ततो द्विसंख्याया विशिष्यते ।

ततोअर्धेपनीते पुनद्विसंख्याया लभ्यते , ततं शून्याधस्तात रथापयेत् ।

ततो रूपे शून्यं लभते । तद् द्विसंख्याया अधस्ताते स्थापयेत्।

अर्थात्, उपरोक्त विषम संख्या में से 1 घटाने पर, हमें 0 प्राप्त होगा, जैसा कि "रूपे शून्ये" सूत्र में कहा गया है, 1 को 3 में से घटाने पर परिणाम 2 होता है। 2 को 2 से भाग देने पर भजनफल 1 प्राप्त होता है। अब 1 में से 1 घटाते हैं, अर्थात 1 - 1 = 0, जो कि शून्य का रूप है।

पिंगल ने कोई संकेत नहीं किया है कि उन्होंने ही शून्य की खोज की है, जबकि वेदों में शून्य की अवधारणा उपलब्ध है। कई स्थानों पर वैदिक पदानुक्रम (25) में व्याख्या है कि शून्य का अर्थ है 'आकाश', 'रिक्त स्थान' और 'वातावरण' इत्यादि। वेदों में शून्य का उपयोग किसी गणितीय अर्थ में नहीं किया गया है। मोनियर विलियम्स (25) भी अंकगणितीय शून्य के लिए वराहमिहिर की बृहत्संहिता का संदर्भ देते हैं।

वराहमिहिर की पंचसिद्धांतिका ही एकमात्र स्रोत है, जो हमें प्राचीन सिद्धांतों के बारे में जानकारी देता है, जिनके नाम पैतामह, वसिष्ठ, सूर्य और रोमक हैं। जो अब अपने मूल रूप में अस्तित्वमान नहीं हैं। वराहमिहिर द्वारा पंचसिद्धांतिका में बताया गया है कि शून्य अंक वसिष्ठ सिद्धांत के समय में सुज्ञात था और लगातार उपयोग किया जाता था। किसी लग्न के समय पर छाया का मापन करने के क्रम में वराहमिहिर ने वसिष्ठ संहिता में निम्नांकित नियम प्रदान गया है-

व्यर्के लग्ने लिप्ताः प्राक् पश्चाच्छोदितारतु त्रक्रार्धात् ।

कार्यश्छेदः शून्याम्बराष्टलवणोदषटकानाम् ।।

लब्धं द्वादशहीनं मध्यान्हच्छाया समायुक्तम् ।

साविज्ञेया छाया वसिष्ठ समास सिद्धान्ते ।।

अर्थात् सूर्य को लग्न से घटा दें, और शेष को दोपहर पूर्व के चाप के मिनटों में बदल दें। दोपहर होने के संदर्भ में, मिनट बनाने के लिए मिनटों को अर्ध-वृत्त में से घटाएँ (अर्थात् 180 = 180 x 60 = 10800) मिनट। 64800 को उपरोक्त मिनटों से भाग करें। अब परिणाम को तिथि की दोपहर की छाया में जोड़ें और दिए गए लग्न के समय की छाया को पाने के लिए उसमें से 12 घटाएँ। यह (गणना) संक्षिप्त वसिष्ठ संहिता द्वारा प्रदान की गई है। उपरोक्त सूत्रीकरण निम्न के गणना की विधि प्रदान करती है-

I. दोपहरपूर्व की छाया

II. दोपहर की छाया

प्रदत्त लग्न के समय पर।

दूसरे शब्दों में हम लिख सकते हैं-

I. अपरान्ह पूर्व की छाया = (64800 - (लग्न - सूर्य) मिनटों में) + मध्यान्ह छाया - 12

II. अपरान्ह की छाया =64800 - (10800-(लग्न-सूर्य) मिनटों में) + मध्यान्ह छाया-12।

शर्मा (24, पेज 38-39) ने उपरोक्त सूत्रीकरण का उपयोग दोपहरपूर्व और दोपहर छायाओं की गणना के लिए एकाधिक अवसरों पर किया है। वसिष्ठ संहिता में ये गणनाएँ स्पष्ट दर्शाती हैं कि उन दिनों गणितीय शून्य का उपयोग पूर्णतः ज्ञात था। वसिष्ठ संहिता की रचना का समय पंचसिद्धांतिका से खगोल शास्त्रीय विचार द्वारा निर्धारित किया जा सकता है।

पौलिश तिथिः स्फुटो डसौ तस्या सन्नस्तु रोमक प्रोक्तः ।

स्पष्टतरः सावित्रः परिशेषौ दूर विभ्रष्टौ ।।

अर्थात्, पौलिश द्वारा गणना की गई तिथि लगभग सटीक होती है तथा रोमक द्वारा गणना की गई उसके निकटस्थ होती है। सूर्य सिद्धांत के परिणाम से आने वाली तिथि अधिक सटीक होती है, जबकि अन्य दो, अर्थात् पैतामह और वसिष्ठ की तिथियाँ वास्तविकता से दूर होती हैं।

शास्त्री एवं शर्मा ने वराहमिहिर की उपरोक्त टिप्पणी का सत्यापन करने के लिए विस्तार से गणना की है। उन्होंने अनुमान लगाया है कि वसिष्ठ सिद्धांत के अनुसार 478 शक वर्ष में सूर्य उदय के लिए सटीक अंश से चंद्रमा 8 अंश पीछे था, अर्थात् 505 ईस्वी जो सोमवार, चैत्र शुक्ल 1 से शुरू हुई, (पंचसिद्धांतिका की रचना का वर्ष.)। शास्त्री एवं शर्मा ने दर्शाया है कि वसिष्ठ चंद्रमा प्रति वर्ष सटीक अंश से 3/10 मिनट पीछे रहता था और 1600 वर्षों में यह इकट्ठा होकर 8 अंश हो गया। इससे स्पष्ट होता है कि वसिष्ठ सिद्धांतिका 1600 वर्षों और पंचसिद्धांतिका की रचना से पहले रची गई थी, अर्थात् वसिष्ठ सिद्धांत की रचना 1095 ईसा पूर्व हुई थी। यह सुज्ञात है कि वेदांग ज्योतिष यजुर्वेद के बाद का भाग है, जिसकी रचना 1800 ईसा पूर्व के आस-पास हुई थी। वेदांग ज्योतिष (25) सिंधिया ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, उज्जैन में, पांडुलिपि रूप में उपलब्ध है, जिसमें विक्रम सम्वत् 1813 अर्थात् 1756 ईस्वी वर्ष में तैयार किए गए 5 पुराने पत्राकार के कागज़ पर 44 श्लोक हैं। ऐसा लगता है कि वसिष्ठ सिद्धांत वेदांग ज्योतिष का एक संशोधित रूप है। चूँकि शून्य वसिष्ठ संहिता में सामान्य गणना में प्रकट हुआ है। इसका वास्तविक मूल और अधिक प्राचीन होना चाहए और विश्वसनीय विधियों से ढूँढा जाना चाहिए।

5. कपित्थक में शून्य

वैदिक युग में पुष्ट जड़ जमा लेने वाला गणित गुप्त साम्राज्य के दौरान सभी दिशाओं में विकसित हुआ। वराहमिहिर के पिता आदित्यदास के द्वारा कपित्थक (उज्जैन के समीप) में स्थापित गणित विज्ञान का महान गुरुकुल 700 वर्षों से भी अधिक तक विकसित होता रहा और संसार में गणित और संबद्ध विज्ञानों के विकास में केंद्रीय भूमिका में रहा। वराहमिहिर, ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, महावीराचार्य और भास्कराचार्य इस प्राचीन गुरुकुल के शीर्ष-क्रम के गणितज्ञ थे। वराहमिहिर ने सूर्यसिद्धांत के रचियता, मयासुर द्वारा उज्जैन और धार में स्थापित वेधशालाओं में 57 ई.पू. (150 ईस्वी में अलेक्ज़ैंड्रिया में टोलेमी द्वारा स्थापित वेधशाला के लगभग 200 वर्ष पूर्व) परिमार्जन किया, तथा सार्वजनिक उपयोग के लिए विस्तृत खगोल-विद्या संबंधी सारणी विकसित की (बाबर-नामा (3), पृ. 79)। ये खगोल शास्त्रीय प्रणालियाँ, बाद में कोफा अल-मंसूर (753-774 ई.) के शासन काल में ह्यस्फुट-सिद्धांत तथा खंडखाद्याक के अरबी अनुवाद के माध्यम से ईराक में प्रस्तुत की गई जिससे 833 ई. में मामूनी वैधशाला और मामूनी खगोलशास्त्रीय सारणियों का आधार स्थापित हुआ। ये मामूनी सारणियाँ ईरान और ख़्वारिज़म में लंबे समय तक लगातार उपयोग में बनी रहीं। ऐसा प्रतीत होता है कि समरकंद में उलुग़बेग द्वारा स्थापित वेधशाला एवं उसकी सारणियाँ मामूनी का ही परिवर्तित रूप थीं।

मोनियर विलियम्स ने उसके संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोश में वराहमिहिर की बृहत्संहिता में शून्य के अंकगणितीय उपयोग का संदर्भ दिया है (27)। शून्य का उपयोग पंचसिद्धांतिका में भी एकाधिक स्थानों पर आता है। उदाहरण के लिए, रोमक सिद्धांत की

आलोचना करते हुए, वराहमिहिर लिखते हैं ((24), अध्याय III/31):

मार्गा (द) पेतमेतत काले लघुता न ताकदति दूरे।
एवं विषय भूताष्टरसै शब्दैः पाश्या स्य विनिपातम्।।

अर्थात्, यह गणित (रोमक) अपने सही मार्ग से भटक गया है तथा इसके रहस्य के विवृत होने के दिन दूर नहीं है। 68,550 वर्षों में इसका पतन अवश्यभावी है। यहाँ (०) का अर्थ मूलतः शून्य ही है।

628 ई. में, ब्रम्हगुप्त ने योग, अवकलन एवं गुणन के लिए शून्य का उपयोग किया था। वे लिखते हैं:

धनयोर्थनमृण मृणयोर्धनर्णयोरन्तरं समै संख्याम्।
ऋणमैक्यं च धनमृण धन शून्यः शून्यम् ।।

अर्थात्, धनात्मक संख्या का योग धनात्मक और ऋणात्मक संख्या का योग ऋणात्मक होता है। किसी धनात्मक और ऋणात्मक संख्या का योग उनका अंतर है। दो समान धनात्मक और ऋणात्मक संख्याओं का योग शून्य है। ऋणात्मक संख्याओं का योग ऋणात्मक है और दो शून्यों का योग शून्य है।

ब्रह्मगुप्त ने विभाजन में भी शून्य का संदर्भ दिया है, लेकिन व्यंजक $+ x/0$ के बारे में वे अनिश्चित लगते हैं। हालाँकि सुधाकर द्विवेदी ने इसका अर्थ 'तत्छेदः' मान्य किया है, वे $0/0 = 0$ लिखते हैं, जो कि त्रुटियुक्त है।

महावीराचार्य ने भी, अपने प्रसिद्ध ग्रंथ 'गणितसार संग्रह' में शून्य का उपयोग योग, अवकलन तथा और गुणन के व्यवहार में 15 किया है, लेकिन शून्य से भाग करने में त्रुटि की है क्योंकि उन्होंने $x/0 = x$ लिखा है।

भास्कराचार्य ने 'लीलावती' और 'बीजगणित' में शून्य का व्यापक रूप से प्रयोग किया है। वह 'लीलावती (Cf. (5), पृष्ठ 71-72) में लिखते हैं:

योगे खंक्षेप समं वर्गादौ खं क्षमाजितौ राशि।
खहरः स्यात खगुणः ख खगुणाश्चिन्त्यश्च शेष विधौ ।।

अर्थात् शून्य से किसी संख्या का योग उस संख्या के बराबर होता है तथा शून्य का वर्ग शून्य होता है। शून्य से विभाजित कोई संख्या 'खहर' होती है। किसी संख्या को शून्य से गुणा करने पर वह शून्य हो जाती है।

जैसा कि अनुभाग 2 में बताया गया है, खहर की अवधारणा मूल रूप से कठोपनिषद में प्रस्तुत की गई थी, जबकि भास्कराचार्य ने खहर के रूप में अनंत की अवधारणा को पुन: परिभाषित किया है तथा विभिन्न गणितीय समस्याओं के लिए इसकी प्रयोज्यता का मार्ग विवृत कर दिया। भास्कराचार्य ने वास्तव में खहर की धारणा का उपयोग करते हुए बृहदारण्यकोपनिषद् (7, पृष्ठ ९४) के प्रसिद्ध श्लोक की दूसरी पंक्ति को संशोधित किया है, जो शुक्ल यजुर्वेद का एक हिस्सा है। वह श्लोक है-

ॐ पूर्ण मदः पूर्ण मिदं पूर्णात् पूर्ण मुदच्यते।
पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्ण मेवावशिष्यते।।

अर्थात्, ईश्वर अनंत है तथा ब्रह्मांड भी अनंत हैं। यह अनंत (ब्रह्मांड) उस अनंत ईश्वर से ही उत्पन्न हुआ है। यदि अनंत को अनंत में से अवकालित कर दिया जाए तो अनंत शेष रह जाता है।

भास्कराचार्य ने इस ब्रह्मांड को सीमित (चाहे वह कितना ही बड़ा क्यों न हो) मानते हुए लिखा है-

अस्मिन विकारः खहरे न राशिः वपिप्रविष्टेष्वपि निसृतेषु।
वहुस्वपि स्यास्लय सृष्टि काले Pअनन्ते अच्युते भूत गणेषुयद्वत् ।।

अर्थात्, सभी प्राणी ईश्वर में ही शरण पाते हैं एवं ब्रह्मांड के क्रमशः विनाश तथा रचना से उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता है, उसी प्रकार खहर राशि में जोड़ी या घटाई गई कोई संख्या भी परिवर्तित नहीं होती।

आधुनिक भौतिकी भी इसकी पुष्टि करती है कि यह ब्रह्मांड सीमित है, चाहे वह कितना भी बड़ा हो। उदाहरण के लिए, एडिंगटन ने मूल्यांकन किया है कि ब्रह्मांड में इलेक्ट्रॉनों की कुल संख्या 1080 है।

भास्कराचार्य ने 0/0 के सीमित मूल्य का मूल्यांकन करने के लिए विस्तार से अध्ययन किया है। लिखते हैं-

शून्ये गुणकेजाते खं हारश्चेत् पुनरूतदा राशिः।
अविकृत एवं ज्ञेयस्तथैव खेनोनितश्च्युतः ।।

अर्थात्, यदि किसी संख्या को शून्य से गुणा किया जाता है और शून्य से विभाजित भी किया जाता है, तो वह अपरिवर्तित रहती है।

दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है: $Xx0=0$ है।

आधुनिक गणितीय भाषा में उपरोक्त विश्लेषण सही है, यदि शून्य के स्थान पर हम एक अतिसूक्ष्म संख्या E को इस प्रकार रख लें कि $E>X/E/E=X$

यद्यपि भास्कराचार्य ने आधुनिक गणितीय अर्थों में स्पष्ट रूप से सीमा जैसे किसी शब्द का उल्लेख नहीं किया है, सहज रूप से इसका महत्व उपरोक्त गणना में समाहित है। इसलिए भास्कराचार्य 500 से अधिक वर्षों से यूरोप में कलन के अग्रदूत थे।

6. उपसंहार

युगों से भारत सामान्य रूप से विज्ञान एवं विशेषत: गणित के विकास के लिए एकमात्र देश रहा है। शून्य और दशमलव प्रणाली की अवधारणाओं ने मानव सभ्यता और संस्कृति को बहुत समृद्ध किया है। आधुनिक गणितीय विश्लेषण, जो वटवृक्ष की तरह विकसित हो रहा है, उसके बीज रूप में शून्य की अवधारणा है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि शून्य की मूल वैदिक अवधारणा अभी भी जीवित है तथा मानव की सेवा में रत है।

संदर्भ

1. अथर्ववेद संहिता, संपादक श्री राम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2015।
2. ऋग्वैद संहिता, संपादक पं. श्रीराम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2015।
3. जहीरूद्दीन मुहम्मद बाबर, बाबर-नामा अंग्रेजी अनुवाद सहित द्वारा एनेट एस बेवरिज लो प्राइज़ प्रकाशन, दिल्ली, 2000।
4. ए एल बाशम, द वंडर दैट वाज़ इंडिया, रूपा एंड कंपनी, 15, भीष्म चटर्जी स्ट्रीट, कलकत्ता, 1967।
5. भास्कराचार्य सिद्धांत शिरोमणि, हिन्दी अनुवाद सहित द्वारा बृजेश कुमार शुक्ल, न्यु रॉयल बुक क्रं. लखनऊ, 2007।
6. भास्कराचार्य, लीलावती संपादक केएस पटवर्द्धन आ दि, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिसर्स प्रा. लि. जवाहर नगर , दिल्ली, 2001।
7. बृहदारण्यको परिषद, संपादक पं. जगदीश शर्मा, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिसर्स प्रा. लि. जवाहर नगर , दिल्ली, 1970।
8. ब्रह्मगुप्त ब्राह्मस्फुट सिद्धांत, संपादक रामस्वरूप शर्मा, इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ अस्ट्रोनामी एवं रिसर्च, करोलबाग, नई दिल्ली, 1966।
9. बी बी दत्ता और ए.एन. सिंह, हिंदू गणित, भाग I, एशिया पब्लिसिंग हाउस, दरियागंज, नई दिल्ली, 1962।
10. एम. गेलफैंड और जी.ई. शिलोव, सामान्यीकृत फलन., अकादमिक प्रेस, न्यूयॉर्क, 1964.
11. एन के जैन, साइंस एवं साइंटिस्ट इन इंडिया, कल्याणी, दिल्ली, भारत, 2001।
12. कठोपनिषद, संपादक के.सी. वरदाचारी और डीटी तप्ताचार्य, श्री वेंकटेश्वर ओरिएंटल इंस्टीट्यूट, तिरुपति, 1949।
13. रोजर कुक, द हिस्ट्री ऑफ मैथेमेटिक्स, जान वाइली एंड सन्स इन्क, न्यूयॉर्क, 1997।
14. महावीराचार्य, गनीतासर संग्रह। एल.सी. द्वारा संपादित। जैन, जैन संस्कृति संरक्षण संघ, शोलापुर, 1963।
15. नारद संहिता, संपादक वसती पं. राम शर्मा, खेमराज श्रीकृष्ण दास, श्री वेंकटेश्वर प्रेस, बॉम्बे, 1887।
16. जीएस पांडे, भारत में गणित का स्वर्ण युग, अध्यक्षीय भाषण, वार्षिक सम्मेलन, इंडियन सोसाइटी फॉर हिस्ट्री ऑफ मैथमेटिक्स, कुमायूं विश्वविद्यालय, नैनीताल, 2000।
17. जीएस पांडे, प्राचीन भारत में कैलेंडर सिस्टम, प्रोक। अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन। भारतीय समाज. गणित के इतिहास के लिए, कोचीन, भारत, 2002।
18. पिंगल, छंद: शास्त्रम, अनुवाद एवं भाष्य, कपिलरेव द्विवेदी एवं श्यामलाल सिंह, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2008।
19. बर्ट्रेंड रसेल, गणितीय दर्शन का परिचय, 1952।
20. एल. श्वार्ट्ज, थ्योरी डेस डिस्ट्रीब्यूशन I, हरमन एट सिल, पेरिस, 1957।
21. श्रीमद्भगवद्गीता, गीता प्रेस, गोरखपुर, 2005।
22. श्वेताश्वर उपनिषद, गीता प्रेस, गोरखपुर,1998।
23. आचार्य वराहमिहिर, पंचसिद्धांतिका अंग्रेजी अनुवाद सहित, सी एस कुप्प्न शास्त्री एवं केवी शर्मा, पीपीएस फांउडेशन, अडयार मद्रास, 1993।
24. वेदांग ज्योतिष, सिंधिया ओरिएंटल रिसर्च इंस्टीट्यूट, उज्जैन, पांडुलिपि, 1756।
25. मोनियर एम. विलियम्स, संस्कृत-अंग्रेजी शब्दकोश, मोतीलाल बनारसीदास, 1963।
26. यजुर्वेद, पं. द्वारा संपादक पं. श्री राम शर्मा आचार्य, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, गायत्री तपोभूमि, मथुरा, 2015।

दशपुरावन्ती क्षेत्र के अभिलेखों का साहित्यालोचन

डॉ. हरिहर त्रिवेदी

सहस्र शिरसे तस्मै पुरूणायामितात्मने। चतुः समुद्र पर्यंक तोय निद्रान्मने नमः ॥
श्रीमद दशपुरावन्ती क्षेत्रे यावत्सुविश्रुतम्। आलेख्य जातमत्राहं विवरीतुं समारभे ॥
गुप्त कालात्समारभ्य राजकुलटकिंताः। आलेख्य निवहोप्यत्रोपत्नन्धो हि मनीषिभिः॥

मंदसौर अवन्ती क्षेत्र और उसके परिसर में आज तक जितने अभिलेख उपलब्ध हुए हैं, उनका ऐतिहासिक मूल्यांकन तो हो चुका है, किंतु संस्कृत भाषा और साहित्य की दृष्टि से उनकी सामग्री का पर्यालोचन करने का यह प्रथम प्रयत्न ही है। वस्तुत: अभिलेख शब्द का तात्पर्य साधारणतया उस लेखन से है जो किसी शिला, धातु, ईंट, कपड़े और शंख आदि पर होता है, किंतु यहॉं शिला और धातु (ताम्र) पर उदंकित लेख पर ही विचार किया जाएगा, जिनमें साहित्यिक सामग्री की विपुलता प्राप्त होती है। प्रसंगवश और आवश्यकतानुसार इन अभिलेखों में निहित ऐतिहासिक सामग्री का भी उल्लेख हम यहाँ करेंगे। यद्यपि हमारा प्रमुख ध्येय इस साहित्य का साहित्य की दृष्टि से पर्यालोचन करना है। इस दृष्टि से शिलाओं पर उदंकित प्रशस्तियाँ और ताँबे पर खुदे हुए दान पत्रों की ओर ही हमारा ध्यान जाता है।

हमारे विश्वविद्यालय में संस्कृत भाषा में रचित अभिलेखों को उनके हिन्दी अथवा अंग्रेजी अनुवाद में ही देखते हैं। इसका केवल एक उदाहरण ही यहाँ देना पर्याप्त होगा-

राज्ञा तस्याभवद्देवी

इस मूल पाठ का अर्थ एक कुशल अध्यापक ने इस प्रकार किया- 'उसकी रानी भवदेवी थी'। ऐसी विचित्र स्थिति होने के

कारण ही भाषा के विलक्षणों का ध्यान इस दिशा में आकृष्ट करना आवश्यक हो गया है। साथ ही हमें यह भी देखना है कि इन अभिलेखों का योगदान संस्कृत में कितना उच्च है। कालमान से सर्वप्रथम मंदसौर में ही उपलब्ध अभिलेख गुप्त वंश के नरेश कुमारगुप्त प्रथम और उसके सामंत बन्धुवर्मन का है, जिसका संपादन जॉन फ्लीट ने अपने भारतीय अभिलेख संग्रन्थ (Corpus insuriptionum indicarium) के तीसरे भाग में पृ. 81 पर किया है। इसमें ब्राह्मीलिपि में उत्कीर्ण संस्कृत भाषा के 24 लकीरों में 44 श्लोक हैं। इसमें साधारणत: प्रचलित श्लोकों के साथ एक श्लोक 'हिरणी' वृत्त का भी है।

इस अभिलेख का मूल आशय यही है कि विक्रम सम्वत् 493 (436 ई.) में गुजरात से आकर मंदसौर में बसे हुए कुछ रेशमी वस्त्रों के व्यापारियों के समुदाय ने यहाँ एक सूर्य मंदिर का निर्माण किया, क्योंकि यह देवालय उस समय जीर्ण हो चुका था।

पहली तिथि इस प्रकार है

मालवानां गणस्थित्या याते शतन्वतुष्टये । त्रिनवत्यधिकेऽब्दानां ऋतौ सेव्यन्धनस्तने ॥ सहर्म्यमास शुक्लस्य प्रशस्तेऽन्हि त्रयोदशे । मंगलाचार विधिना प्रसादोऽयं निवेशित: ॥35॥

इसके अनंतर

बहुना समतीतेन कालेनान्यैश्च पार्थिवै:। व्यशीर्यतैकदेशोऽस्य भवनस्य ततोऽधुना॥36॥

इस संदर्भ में यहाँ अनेक प्रश्नों का उद्भव और उनका समाधान भी हो चुका है। तथापि मतभेद यथावत हैं। उदाहरणार्थ, केवल 37 वर्षों का समय अधिक नहीं कहा जा सकता। यह मंदिर समय व्यतीत होने पर स्वयं गिर गया या गिराया गया ?

अन्यै: प्रार्थिवै: कौन थे यहाँ वे कैसे और कब आए ? आदि आदि। ये सभी प्रश्न आज भी निश्चयात्मक रूप से अनुत्तरित हैं।

साहित्य- पर्यालोचन की दृष्टि से मंदसौर का वर्णन इस सुंदर ढंग से किया है। इस नक्षर को भूमि: 'तिलकायमानम' कह कर आगे कहा गया है-

तदोत्थवृक्षच्युतनैक पुष्प विचित्रतीरान्तजलानि भान्ति।
प्रफुल्ल पद्मा भरणानि यत्र सदांसि करण्दव संकुलानि ॥7॥

और भी

प्रासाद मालाभिरत्नंकृतानि धरां विदायैव समुत्थितानि।
विमानमाला सदृशानि यत्र गृहाणि पूर्णेन्दुकरामलानि ॥12॥

मंदसौर का यह सुंदर वर्णन श्लोक 5-14 में किया है। इस श्रेणी के व्यक्तियों का प्रचार का नमूना-

तारूण्य कांत्युपचितोऽपि सुवर्णहार ताम्बूल पुष्प विधिना समलंकृतोऽपि।
नारीजन: प्रिय मुपैति न तावदस्यां यावन्न पद्मय वस्त्र युगानि धत्ते ॥20॥
श्रेण्याम दर्शन भक्त्या च कारितं भवनं रवे:।
पूर्व्वा चेय प्रयत्ने रचिता वत्स भट्टिना ॥44॥

यह कवि गुप्तकाल के अंतिम दिनों में हुआ है और इसकी इस कृति में कालिदास की पूरी छाप पाई जाती है। आज शिला का पता ही नहीं है।

गुप्तवंश के शासन के अंतिम दिनों में जब शासन में शैथिल्यं आ गया, तब स्थानीय नरेश अपना अधिकार इस भूभाग पर जमाने लगे। उनमें समय के मान से नरवर्मन नाम का भूपति हुआ, जिसका प्रस्तराभिलेख मंदसौर में ही मिला है। वह अभी ग्वालियर पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है। इस अभिलेख में नौ पंक्तियों में 13 अनुष्टुप श्लोक और चौदहवें श्लोक का पूर्वार्द्ध है। पूरा लेख कितना बड़ा था, यह अज्ञात है।

इसकी तिथि मालव (विकास) संवत् 461 (404 ई.) है। महीना अश्वयुज (आसोज, कुँवार) है। वह इस प्रकार है-

प्रावृट्काले शुभे प्राप्त मनस्तुष्टिकरे नृणाम्। दिने आश्वोज शुक्लस्य पंचम्यामथ सत्कृते॥ ईदृक्कालवरे रम्ये प्रशासति वसुन्धराम्।
...नरवर्त्मनि पार्थिवे।.... क्षितीशे सिंहवर्त्मनि....

....सिंह विक्रान्त गामिनी।

यह स्पष्टतया कालिदास की स्मृति दिलाती है। तिथि बतलाने वाला पद इस प्रकार है-

श्रीमालवा गणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते । एक षष्टयधिके प्राप्ते समाशत चतुष्टये ॥

इससे ज्ञात होता है कि विक्रम सम्वत पहले पहल 'कृत' के तथा उसके बाद 'मालवा' नाम से ज्ञात था। इस अभिलेख में रूपक का एक सुंदर उदाहरण है-

मृगतृष्णा जल स्वप्न विद्युद्दीप्ताशिखामलम्। जीवलोकमिमं ज्ञात्वा शरण्यं शरणं गतः ॥

और भी-

वासुदेव जक्षद्वास मप्रमेय मजं विभुम्। मित्र भृत्यार्त्त सत्कर्त्ता स्वकुलस्याथ चंद्रमाः॥

कालक्रमानुसार दशपुर क्षेत्र में इसके बाद विश्ववर्मन का गंगधार शिवालेख आता है जो मंदसौर के क्षेत्र से लगे हुए झालावाड़ जिले (राजस्थान) में है। इसका उट्टंकन मालव (विक्रम) सम्वत् 480 (423 ई.) में किया गया। इसमें 41 पंक्तियों में 25 श्लोक हैं, पर उनमें से अनेक त्रुटित हैं, अत: इस संबंध में विस्तारपूर्वक न लिखना ही ठीक होगा, यद्यपि साहित्यिक दृष्टि से यह लेख भी महत्वपूर्ण है।

इसके अंतर यशोधर्मन-विष्णुवर्धन नामक नरेश के दो प्रस्ताराभिलेख मंदसौर में ही उपलब्ध हुए हैं, जिनमें से एक लुप्त हो गया और दूसरा स्तंभ लेख है जो यहाँ से लगभग आठ मील दूर सोधनी नामक ग्राम में है। जिसकी शिला लुप्त हो गई। उसमें इस नरेश का इतिहास व पराक्रम आदि का वर्णन है और उसकी तिथि मालव संवत् 589 (532 ई.) बतलाई है।

पंचसु शतेषु शरदां यातेष्वेक नवत्यधिकेषु। मालव स्थितिवशात् कालज्ञानाय लिखितेषु॥

इस राजा का वंश औलिकर था और इसने इस लेख के अनुसार राजाधिराज परमेश्वर की उपाधि धारण की थी। इसका मंगलाष्टक कितना सुंदर है-

स जयति जगतां पतिः पिनाकी स्मित रव गीतिषु यस्य दन्तपक्तिः ॥
धुतिरिव तड़ितां निशि स्फुरती तिरयति च स्फुटयत्यदश्च विश्वम् ॥

इस अभिलेख में साधारणतया ज्ञात सभी वृत्तों के साथ पुष्पिताग्रा भी है। फ्लीट ने अपने संग्रन्थ (Corpus) में इसका संपादन किया है, किंतु साहित्यिक दृष्टि से भी इसमें बहुत सामग्री है।

मंदसौर का यथोधर्मन का दूसरा अभिलेख प्रस्तरस्तंभ पर है, जिसका उल्लेख अभी-अभी हमने किया है। इस लेख में इतिहास कम किंतु साहित्य की भरमार है। यह लेख तिथिहीन है और इसमें कुल नौ श्लोक हैं, जिनमें से अंतिम अनुष्टुप और शेष आठ स्रग्धरा वृत्त में हैं। इसमें ओजगुण का बाहुल्य है। भाषा यद्यपि प्रवाहमयी और गौड़ी रीति में है। उदाहरण के लिए मंगलाचरण में शिव के नं दी का वर्णन देखिये-

वेपन्ते यस्य भीम स्तनित भय समुद्र भ्रांत दैत्या दिगन्ताः
श्रंगाधातैस्सुमेरोर्विघटित दृषदः कन्दरा यः करोति...।

उस समय के दंभी नरेशों का वर्णन देखिए-

आविर्भूतावलेपै रविनय पटुभिद् लंघिताचारमार्गैः मोहादैदं गतिभिः पीडयमाना नरेन्द्र।

विचित रूचिर प्रयोगों के उदाहरण

विनयमुषि युगेः कल्याणे हेम्नि, क्षितिपति मुकुटाध्यासिनी आज्ञा,
वीर्यावस्कन्दराज्ञः स्थाणोरन्यत्र ये प्रणतिकृपणतां प्रापितं नोत्तमांगम्।आदि आदि।

उपमालंकार के प्रयोग

पासुष्विव कुसुमवलिः। कल्याणे हेधि भास्वान मणिरिन।

उपमालंकार के प्रयोग

गामेवो न्मातु मूंर्ध्व विगणयितुमिव ज्योतषां चक्रवालम्

निर्देष्टुं मार्गमुच्चे र्दिव इव सुकृतोपार्जितायाश्च कीर्तेः।

ये प्रयोग स्तंभ खड़ा करने के बारे में किये हैं।

कालिदास के आसमुद्रक्षितीशानामानाक रथवर्त्मनाम के अनुकरण में यह श्लोक दृष्टव्य है।

आलौहित्योपकण्ठात्तल वनगहनोपत्यकादामहेन्द्रा दागंगासिक्तसा नो स्तुहिनशिश्वरिणः पश्चिमादपयोधः।
सामंतौर्यस्य बाहु-द्रविण कृतम दैः पादयोराजमभ्दिः चूड़ारत्नोपराजिव्यतिकरशबला भूमिभागाः क्रियंते।।

आदि आदि।

इस समय के प्रशस्तिकारों ने 'आङ्' का इस प्रकार प्रयोग प्रभूत रुचि के साथ किया है। उदाहरणार्थ खजुराहो के एक शिलालेख में राजा धंग का वर्णन इस प्रकार किया गया है -

आकालजरमाच मालव नदीतीसस्थितेर्भास्वतः
कालिंदी सरित स्वटादित इतोप्याचेदि देशावधेः ॥ आदि ॥ छंद 45

इस प्रकार गुप्तवंश के और उसके कुछ समय बाद तक दशपुर क्षेत्र में उपलब्ध हुए अभिलेखों की साहित्यिक समीक्षा करके एक बात की ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक प्रतीत होता है। इस क्षेत्र में गुप्तकाल के पश्चात जो राजवंश पनप गये थे, उनमें 'माणवायनि' वंश के भी कुछ अभिलेख इसी भूमि में मिले हैं। सर्वप्रथम एक त्रुटित अभिलेख मंदसौर में ही मिला था। उसका पर्यालोचन न हो सका, यद्यपि मैंने उसे पढ़ा था। उसके बाद छोटी सादड़ी में मिले एक शिलालेख के आधार पर उसमें भी वही वंशावली पायी गयी। उसके बाद अभी-अभी 34 शिलालेख इसी नक्षत्र में उपलब्ध हुए हैं, किंतु उनका तात्पर्य और इतिहास अज्ञात है, क्योंकि ये सभी स्थानीय विशेषज्ञों की उपेक्षा करके बाहर के विद्वानों से संपादित कराये गये। इन विद्वानों ने संपादन अंग्रेजी भाषा में किया और फिर उनका हिन्दी में अनुवाद करके यहाँ की एक पाठशाला की पत्रिका में छपवाया। अत: उसमें अशुद्धियों की भरमार होना स्वाभाविक ही था। इन सभी लेखों का पुन: संपादन होना आवश्यक है।

इसके अतिरिक्त और भी एकाकी लेख मंदसौर क्षेत्र में उपलब्ध हुए हैं। उदाहरणार्थ इंद्रगढ़ (भानपुरा) में आठवीं सदी का नन्नप का लेख झालावाड़ में मिला, शिवगण का अभिलेख और कोटा के पास कन्सुवा में मिला धवलात्मा नामक राजा का अभिलेख, जो विक्रम संवत् 795 (738 ई.) का है।

झालरापाटन और कन्सुआ के अभिलेख मंदसौर जिले से बाहर के हैं, किंतु उसकी परिधि में ही आते हैं। इनका पारस्परिक समन्वय भी है। कन्सुआ के अभिलेख में राजा की वंशावली भी दी गई है और उससे एक महत्वपूर्ण निष्कर्ष ज्ञात होता है। यथा धवलात्मा नरेश मौर्यवंशीय हैं और उसका आधिपत्य उस समय उज्जैन पर था, जब राष्ट्रकूट नरेश दंतिदुर्ग ने उसका पराभव किया। इस प्रकार त्रिराज संघर्ण (Tripertiti Srtite) के समय यह लेख उज्जैन पर नवीन प्रकाश डालने वाला है।

अंत में हम इस ओर भी संकेत करते हैं कि दशपुर परिसर के अभिलेख का संपादन करना आवश्यक प्रतीत होता है और उनसे ऐतिहासिक तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना तथा साहित्यिक दृष्टि से उनका पर्यालोचन करना भी उतना ही आवश्यक है। यह कार्य सरल ही करना अभीष्ट है।

दशपुर क्षेत्र के अभिलेखों के दर्शन के अनंतर अब हम अवंती क्षेत्र के अभिलेखों का अन्वेषण करेंगे। 'अवंति' इस नाम का स्मरण करते ही 'आकरावंती' यह सामासिक शब्द याद आता है, जिसके अनुसार हम जानते हैं कि 'आकर' मालव का पूर्व भाग है और 'अवंति' उसका पश्चिमी भाग, जिसमें केवल उज्जैन ही नहीं, उसके आसपास के जिले भी समाविष्ट होते हैं। किंतु विषय की सीमा न बढ़े इस हेतु हम यहाँ केवल उज्जैन जिले के अभिलेखों का ही निदर्शन करते हैं।

ताम्रपत्रों की दृष्टि से यहाँ वाक्यपतिराज मुंज के दो और भोज के दो ताम्रपत्र उपलब्ध हुए हैं, किंतु महाकाल मंदिर की सीमा के अंतर्गत शिलालेख महत्वपूर्ण है, जिसमें 'कृपाणिका बंध' में वर्णमाला के साथ कुछ श्लोक भी अंकित है। संख्या 79 से लेकर 84 तक के छह श्लोक हैं। इसके पूर्व का भाग अनुपलब्ध है। कील हार्न के लेखानुसार यह पूरा शिलालेख वहाँ की धर्मशाला के ऊपरी भाग में था। शेष भाग (श्लोक 1-78) नष्ट हारे गया। इसमें महाकाल की स्तुति है। उसका नमूना देखिये -

नित्यं व्यापक मेक मुज्ज. योगाभ्यासवशात्... ज्योतिः स्फुरद रत्न...

हृदि स्फुरज्जोतिः स्तां शाम्भवम् ।

एक पूरा श्लोक इस प्रकार है-

क्रीड़ा कुण्डलितोरगेश्वरतनू काराधिरुढ़ोम्बरा - नुस्वारं कलयन्नकार रुचिराकारः कृपार्द्र : प्रभुः।
विष्णोर्विश्वतनोदिवान्तिनगरी हृत्पुण्डरीके वसन् ओंकाराक्षर मूर्ति रस्यतु महाकालोऽन्तकालः सताम॥

इस प्रकार के बंध में वर्णमाला के साथ शिवस्तुति माला के अतिरिक्त कहीं नहीं उपलब्ध हुई। इस प्रकार के बंध धार में और नेमाड़ के ऊन नाम ग्राम में भी पाये गये हैं।

पूर्व और पश्चिम मालव के अतिरिक्त दक्षिण मालव का भी प्रयोग कभी-कभी उपलब्ध होता है, जिसकी राजधानी माहिष्मती थी। इस संबंध में हम यहाँ विस्तार से इतना ही कहेंगे कि ओंकारेश्वर में मिले एक ताम्रपत्र में ओंकारेश्वर के साथ श्लोक श्लाध्य हैं। सुंदर स्तुति है। इसके साथ ही यह भी कहना आवश्यक है कि उसी स्थल पर एक मंदिर में शिला पट्ट पर शिवस्तुति उत्कंटित है, जो सुविज्ञात 'महिम्नःस्तुति' के समान है। इसकी रचना गुजरात के एक कवि ने की थी।

अवन्ति के अभिलेखों का पर्यालोचन करने के पश्चात हम अंतिम अंश में सिंहावलोकन की दृष्टि से फिर दशपुर के एक शिलालेख के बारे में दिग्दर्शन करेंगे। यह लेख सन् 1913 में चार टुकड़ों में किंतु पूरा देखा गया था, किंतु हस्तांतरित होते-होते आज इसके दो टुकड़े इंदौर संग्रहालय में सुरक्षित हैं। यह तो हमारा सौभाग्य है कि इस शिलालेख का वर्ष सुरक्षित है। विक्रम सम्वत 1274 (1217 ई.)। यह परमार वंश के नरेश जयवर्मन ने उत्कंटित करवाया था और इसका अभिप्राय उस स्थल पर एक पाशुपत मंदिर बनाने का था। मोर्दा ग्राम (भानपुरा परगना) जो आज चंबल के पानी में डूब गया है, परमारों का प्रादेशिक केंद्र स्थल था। यहाँ अनेक सुंदर मूर्तियों के साथ यह अभिलेख मिला था।

अब अपने विषय को समाप्त करते हुए यहाँ केवल इतना ही संकेत करना चाहते हैं कि दशपुर भूभाग जो अभिलेखों के मान से सघन है, उसके लेखों का एक पृथक संग्रह करना व उसे प्रकाशित करना आवश्यक है। इस ओर हम पुरातत्व विभाग का ध्यान आकर्षित करना योग्य समझते हैं। प्रसंगवश यहाँ मांडु सुल्तान हुशंग शाह का खड़ावदे में मिला एक शिलालेख निर्दिष्ट करना है, जिसमें संस्कृत का एक सुंदर काव्य ही है। इसका संपादन नागरी प्रचारिणी पत्रिका के एक अंक में सन् 1930 में हुआ था, किंतु आज वह आसानी से उपलब्ध नहीं है।

भट्टिकाव्यशास्त्र समीक्षा

मिथिला प्रसाद त्रिपाठी

भट्टिकाव्यस्थ कर्ता भट्टिदेव भर्तृहरिरासीत। भर्तृ शङस्य प्राकृतरूपं महिरिति विदुषां मतम्। डॉ. शिवशंकर अवस्थी महोदय: भर्तृहरि चतुष्टयमवर्णयत्। आदि भर्तृहरिर्विक्रमाद्वस्य चतुशताहृत्प्राक्विक्रमांक यायत्प्रसृते कालांश समजनीते। द्वितीयश्च षष्ठयुत्तरषड्षताहस्य (667) सप्तसप्तत्युत्तरषड्शताहस्य (667) च मध्ये बभूव। तृतीयस्तु एकोत्तरसदाशत वर्षस्य (771) पञ्चोत्तरसप्तशतवर्षस्य 705 च विक्रमस्य मध्ये स्थितिं लेभे। चतुर्थो भर्तृहरिविक्रमाद्वस्य द्वादशषताहृयामासीत।

महिकाव्य स्यान्ति मं पद्यं श्री धरसेनारव्यं वलभीनरेश निर्दिशति

तद्यथा-काव्यमिदं विहितं भया वल्भ्यां श्रीधरसेन नरेन्द्र पालेताद्याम्।

कीर्तिरतो भवतान्नृ पस्य तस्य प्रेमकर: सितिपो यतः प्रजानाम् ।।1।।

वलभीनृपा: श्रीधरसेननामतश्चत्वारो बमूकः। चतुर्व्यां काल: पञ्चशताद्वत: एक चत्वारिशदुत्तरषड्षताइं (641) यावदस्ति। द्वितीय श्रीधरसेनस्य दशोत्तर षउधिकै (610 स्त्रीष्टाद्वेऽभिलिखिशिलालेखे मट्टिनाम्ने भूदानं कृतामिति प्राप्नोति समुल्लेखः। यद्यसं स्याद्भट्टिकवि स्तदा तत्समयो राज्ञः समयमेव सिहयति। विशोत्तरषड्षताद्वस्य (620) भा माह: यपान्तरेण पद्य मेकं भट्टकाव्यस्य उपस्थापयतीति विचिन्तयापि एत

स्मात्प्रागेष कालो निर्णेतुं शक्यते। भट्टिकाव्यस्य पद्यं यथा

व्याख्यागम्यमिदं काव्यमुत्सव: सुधियामलम्। ळता दुर्मेधसष्चास्तिमत्र विद्वत्प्रियतया मया ।।2।।

भामहस्य चवद्यम्- काव्यान्यपि यदीमानि व्याख्यागम्यानि शास्त्रवद्।

उत्सवः सुधियामेव हन्त दुर्मेधसो हताः ॥

भट्टरेव भर्तृहरिरिति टीका कर्तृ मिरपि स्वीकृतः। यद्यथा

टम तावन्महोपाध्याय श्री भर्तृहरिकविना शङकाव्ययोर्लक्षणसितानि महाकाव्यामिधेतानि अतः सर्गबन्धः काव्यबन्धश्च कृतः। (कन्दर्पशर्मकृताया वैजयन्ती टीकाया और में)

2. अत्र कदिना श्रीधरस्वामि सूनुना भर्तृहरिणा सर्गबन्धो... (विद्याविनोदकृताया भट्टिचन्द्रिकाया आरंभे)

3. भर्तृहरिनीम कवि: श्री रामकथाग्रंथ महाकाव्यं चकारा। (भरतमल्लिकाकृताया मुग्धबेधिन्या प्रारंभे)

4. कविकुलकृति कैरवहरकाट: श्री भर्तृहरिः कविर्महिकाव्यं चिकीर्षुः तस्या शेषाशुभशमनैक प्रयोजन श्रीरामचंद्र चरित रूपस्य स्वत एवं निस्प्रत्यू हेन समाप्ते निश्चिन्वम् स्वतन्मेण मंगलाचरण परिहरन् साकांक्षपद्येनग्रन्थार्थमुत्थापवति अभूदिति। (भर्तृहरिकाव्य दीपिका)।

5. लक्ष्यं लक्षणंज्योमियमेकत्र विदुषः प्रर्शयितुं श्री स्वामिसूनुः कविर्भहिनामा रामकथा श्रय महाकाव्यं चकर। (जयमंगलकृता जयमंगला टीका)।

अथ च पञ्चपादी उनादि वृत्तिकार : श्वेत वनवासी भर्तृकाव्य इति प्रयुङ्क्तं हरिनामामृत व्याकरणेऽपि वृत्तौ 'भर्तृहरिविप्रः' इति प्रयोगो लमते। युधिष्ठिरों मीमांसक: भर्तृहरिमिमं गुर्जरप्रान्तस्य वलमीनरेशस्य श्रीधरसेताख्पस्यं तृतीयस्य समये स्वीकरोति। व कबिलदेवो हिवेदी श्रीधर सेनाख्पस्य द्वितीयस्य समये भर्तृहरिसमयं निश्चितनोति एवं महावेया करणो भर्तृहरिराद्योऽस्ति। स एव वाक्यपदीय कारः शहनत्भवेत्ता आसीत। अपसे मट्टिकाव्यकर्ता। तृतीयश्च विमलमतिरेव भागवृत्तिकर्ता अष्टाध्याय्या बौद्धः। अन्तिमश्च गोरखनायाशिष्यो भर्तृहरिः॥

1- व्याकरणशास्त्र का इतिहास भाग - 2, पृ. 386 से 388

भट्टिकाव्यस्थ द्वाविंश सर्गात्मके कथान के रामकथा व्यपृता अस्ति। राम जन्मतो राज्याभिषेकं यावद्रामचरित मत्रवर्णित माता काण्ड चतुष्ट ये मद्य: प्रकीर्णकाण्ड: पंचसंर्गात्मक अद्य सर्गे रामसम्भवः द्वितये सीतापरिणयः समवर्णि कतिना। व्याकरण दृष्ट्या कृदन्ताः प्रयोग नैकविद्या लम्ते पंचमेसर्गे टाधिकारार्थं पद्यचतुष्टयम् (92100) आमधिकारार्थंच पद्य चतुष्ट यम् (5/104-106) कविररीरचत्। अग्रे काण्डचतुष्टयम् सस्ठते नवमं यावदधिकार काण्ड तथा प्रसिद्धम्। षष्ठे सर्गे सुग्रीवाभिषेक: सप्तमे सीताऽन्वेषणम् अष्ट में अशोक विनका मङ्गः, नवमे च सर्गे मारुति संयम् कविरवर्ण यत्॥ व्याकरण हशा दुहादिद्विकमेकधातवः ()18-10) सष्ठस्यास्ट मपयात: क्षामं यावत् ताच्छीलिककृतधिकारः सप्तमेऽष्टाविंशतितस्त्रयशत्तम। (28-33) पद्य यावद् भावे कर्तरि प्रयोगाश्चारस्मेन्नेव सर्गे अष्टषष्ठितः सप्त सप्ततिसमं (6677) पद्य यावत् आटमनेपदाधिकारार्थमष्ट मसर्गस्य सप्ततिंतश्चतुरशीतितमं पद्य (8/70-84) यावत् अनमिहितेऽधिकार निरवनिंच नवमे सर्गे चतुर्नवतितो एकत्रिशोत्तरशतैकतमं पद्यं (9/94-131) यावत् वर्नानि मिलान्तं। तृतीयस्तावत्प्रसन्नकाण्ड: चतु:सर्गारमक: (दशात स्त्रयोदशं यावत्) कश्यते। दशमे सीताऽभिज्ञान दर्शनम् एकादशे लंकागतप्रभातवर्णनम् द्वादशे विभीषनागमनम् भयोदशे च सेतुबन्धन मवर्नयकविः। सर्गेष्वेतेषु प्रदर्शयति का: स्वीयामलंकारशास्त्र विदग्धताम्। शद्वर्थालंकारा दशमें सर्गे समेदा उपन्यस्ता: एकादशे माधुर्य प्रदर्शनम् द्वादशे भाविकप्रदर्शनं। विधोतते भट्टिकाधे। त्रयोदशे सर्गे भाषासमनाम्: श्लेष भेद: प्रदर्शितः भट्टिकादीना। अन्ति मस्तविस्तिदुन्तकाण्ड: स्फुरति। तेबु नवसर्गेषु चतुर्देशे शरबन्ध: पंचदवो कुम्भकर्णहति: षोषशे रावणविलाप: सप्तदशे रावणवध: अष्टादशे विभीषण विलपतम एकोनविपो विभीषर्णाम मेक: विंशे सीताप्रत्याख्यानम् एकदिनो सीता संशोधनम्। द्वाविंशे च अर्गे अयोध्या प्रत्यागमन मारस्ते प्रतिपादितम्। व्याकरम हस्ता विलसनम् चतुदेशे, लिङ् प्रयोगा एकानविशे लोङ् प्रयोगा: विंशे। लृङ् विलसनम् एकविंशे द्वाविंशे च लुङ विलासितानि भूयोभूयः प्रतिस्थापितानि कविल।

यद्यपि मट्टिकवि व्याकरण शिक्षणार्थ प्राणिनाय ग्रन्थ रत्नामि तथापि कवित्वमाद्यन्तं राजति। कालिदासं सरसतापादनेन, भारविं साद्यञ्चचित्रालकार प्रयोगे: श्रीहर्षं पाण्डितयमुखेन भृशं स्मारयति भट्टरयम्। प्रबन्धकाव्यमारचयन्नपि व्याकरण मारीक्ष यदि यमस्य कवे: कापि नवा सरणिरत्र प्रकाशीता यद्ययं क्वाचिन्नीरसो भवति प्रयोगविवशस्तदा बहुत्र रसपेशल वर्णच यनतया

सरसोऽपि भवति कुत्रपि व्याकरण कारिन्यमनुमूयालकारकमृकृति मनुभावयति कविरयम्। वैयाकरण मात्रं साहित्यिकमात्रं भा भाईनास्ति। एकत्रैव खर: कोमलोऽपि राराजनं विदुषां मूर्ध्न।

भट्टि: स्वयमेव स्वकाव्यं दीपतुल्यमिति प्रचारयति येन मानवा: शद्व शास्त्रते नान्धा भवु यु:।
दीपतुल्य प्रबन्धोऽयं शद्वलक्षण चक्षुषाम्। हस्तामर्ष दूवान्धानां भवेद् व्याकरणाहते ॥1॥

जिष्णु धृष्ण रोचिलूनामेकपद एवं प्रयोगो विधीयते येषां क्रमशः 'ग्स्नु:' 'क्वु:' इष्णु आदि प्रत्ययेम्य: विद्धिर्भवति प्रयास्यत: पुण्यवनाम् जिष्णो रामस्य रोचिष्णु मुखस्य घृष्णु:॥3॥

वीप्सार्थेणमुल् प्रत्ययस्य प्रयोगं प्रदशितु एकास्मिन्नेव पद्ये वारत्रयं कृतवान् कविः क्रमशः विश पद् तथा च स्कन्द् धातुम्य:। लतां लतामनुपात्य इति लतानुपातम्। नदीं नदीमवस्कन्ध इति वधवस्नन्द शिलां शिलामु पविश्य इति शिलोपवेश मिति प्रयोत्रय मत्र चक्रे कवि:।

भट्टिकाव्यंम् - 22/33

ग्लाजिस्थश्च 3/2/39 अतयननेऽस्नु: यति-गृधि-घृष सिपे: क्नु: 3/4/140 इत्थनेन क्नु: तु च अलंकृञ् 3/2/136 इत्यनेन इष्ण च, प्रत्ययाः भवन्ति।

ल्तानुपातं कुसुमान्यगृहात् स नद्यवस्कन्मुपा स्पृशच्च।
कुतूहलाच्चारुशिलोपवेशं काकुत्स्य ईषत्स्मय मान आस्ता ॥1॥

काव्यस्य द्वितीय एव श्लोकः 'सामान्यभूतेलुङ्' इतिहेतोः सप्त धातनां प्रयोगं प्रस्तौति तद्यथा- सोऽध्यैष्अ वेतांस्त्रिदशानयष्ट पितृनताप्सत्सनमंस्त बन्धून्।

व्यजेष्ट षड्वर्गमरंस्त नीतौ समूलघातं न्यवधीदरीपूचा ॥2॥

पदान्तरेण लिङ्ख्याणि दर्शनीयानि यथा-

तेनेऽद्रिबन्धो ववृधे पयोधिस्तुतोष रामो मुमुदे कपीन्द्र:।
तयास शत्रुर्दहशे सुवेल: प्रापे जलानतो जींट: प्लवंगा: ॥3॥

एवमेव लंकामुपेत्य वानोत्साहं क्रियापदैरेव समवर्णयत्कविः। यथा

भ्रेमर्ववल्गुर्ननृतुर्जजक्षु र्जगुठ समुमुप्लुविरे निषेदु:।
आस्फशेट याञ्चक्रु रमिप्र णेदू रेजुर्ननन्दुर्विययु: समीयु: ॥4॥

हेतु हेतु म भविष्यत्प्रयोगार्थं लृङ् लकारस्योदाहरणं प्रदश्यते

संकल्पं नाकरिष्यच्च तत्रेय शुडू मानसा।
सत्याद्र मर्ष मवाप्स्यस्त्वं राम: सीतानिबन्धनम् ॥5॥

वैयाकरणत्वमस्य लाक्षणिकत्व मतिशेते परन्तु बहुयालंकाररिवदयं विभाति च।
यथा प्रभातवर्णने मानिन्या: कमलिन्या व्यवहारो वर्णित:।
प्रभातवाताहतिकाम्पेलकृति : कुमुद्वती रेणुपिदाडूविग्रहम्।
निरास भृंगकुपितेव पाद्मीनी न मानिजी संसहतेऽन्यसंगमम् ॥6॥

रोरवीति प्रभाते तडागतररूहो यथा तुा वर्ण यति भट्टिकवि:
निशातुषारैर्नयनाम्बुकल्पै पत्रान्तपर्यागलदच्द्रबिन्दु:।
उपारूरोदेव नदपतंग: कुमुद्वतीं तीरतरूर्दिनादौ ॥7॥

वीरस्य प्रधानता महाकाव्येऽस्मिन्नास्ते। उदाहरण भूतं पद्यनेमकत्र परयक्तु अधिज्यचाप:
स्थिरबाहुमुष्टिरूदाञ्चितदक्षिणोरू:।

तान् लक्षणम: सन्नतवामजंगो जघान शुदेषुरमन्दकर्षी ॥8॥

अत्र यथा लक्ष्मण: षूत्रनवधीत्तथा वर्णितमस्ति। एकादशे सर्गे प्रभातवर्णन प्रसंगे शृंगार वर्णन मपि निमाल्यताम्सामोन्मुखेनाच्छुरिता प्रियेण दत्तेऽथ काचित्पुलकेन भेदे।

अत: प्रकोपापगकाद्विलोला वशीकृता केवल विक्रेमेणा ॥9॥

सामनीतिं विदधता प्रि येण नरव क्षतालंकृरिता रोमाञ्च विभ्रती नायिका कंचलत्वाद्वशीकृता। एवकेव राम: गोपालङगनानां दधिमन्थने स्वरूपं दृष्टवा मुमुदे।

विवृत्तपार्श्व रूचिरांगहारं समृद्वहच्चारूनितम्बरम्यम्।
आमन्द्र मन्थध्वनि दत्तताल गोपांनानृत्थमनन्दयत्तम ॥1॥

अत्र मावर्णनमस्ति अलकाराजां सम्यक् प्रयोगे पटुरवे कवि: । उपमाया: प्रसंग मेक मत्रोदाह्यिते।

हिरण्मयी साहलतेन जंगमा च्युतादिव: स्थास्नुरिवाचिरप्रभा।
शशांककान्ते रधिदेवताकृति : सुताददे तस्य सुता य मैथिली ॥2॥
अत्र सीता या: कृते उपमाययमत्र प्रदाय वर्णित वान् कवि सौन्दर्य तस्य:।

एकावल्लंकारस्य सुन्दर मुदाहरणमत्र पश्यन्तु

न तज्जलं यन्न सुचा रूपकंज नपंकजतद् यदलीनषट्पदम्।
न षट्पयोऽसौ न जुगुज्ज य: कलं न गुञ्जितं तन्न जहार यन्मन: ॥3॥

दशमे सर्गे शंहालकाराणामर्थालंकारानाञ्चोदाहरणानि विलसन्तितराम्।

यमकस्य विविधा भेदा नैपुष्यतया विजृम्मिताः सन्ति।

चक्रवालयमकस्य यथा- **अवसितं हसितं प्रसितंमुदा विलासितं हासितं स्मरमासितम्।**
न समदा: प्रमदा हत समंदा: पुरहितं विहितं न समीहितम ॥4॥

तथैवैका यावकावली प्रस्तूयते

न गजा न गजा दयिता दयिता विगतं विगतं ललितं ललितम्।
प्रमदा प्रदमाऽमहता महता मरणं मरणं समयात्समयात् ॥5॥
एव मेव सर्व यमकस्यापि प्रयोगो:ऽचीकरत्कवि:
बनौ मरुत्वान् विकृत: समुद्रो बमौ मरुत्वान् विकृत: समुद्र।
बमौ मरुत्वान् विकृत: समुद्रो बमौ मरुत्वान् विकृत: समुद्र: ॥6॥

विविधोपमा: समासोर्वितर्थान्तरन्यास आक्षेपो व्यतिरेको विभावनातिरा योक्तिर्थथासंरकमुत्प्रेक्षा कर्ता रसवदूर्जस्विप्रे योविशेषोक्ति: पर्यायोक्ति: समाहितमुदारं श्लेिष्टमूपहुतिव्योजस्तुतिस्तुल्ययोगिता विरोधो निदर्शनम् सहोक्ति परिवृत्ति: ससन्देहोऽनन्वय: ससृष्ट्चादयश्चालंकारा: दशमे सर्गे वैदुस्यत वोप स्थशपितवान् रचना रसिकोऽयं महाकवि:।

एकदशे सर्गे माधुर्यगुणासयंजता भट्टिखविना कृता।
कासिदासं स्मारयतीव पद्मेकार तम: प्रसुप्तंमरणं मुखनु मूर्च्छा नु माया नु मनानेवस्य।
किं त त्कयं वेत्युपलब्धसंज्ञा विकल्पयन्तोऽपि न संप्रतीयु: ॥11॥

अधूनांमुखानि वर्णयति कवि:

पुतौस्ठ रागाणि हृतांजनानि भास्वन्ति लो लैरलकै र्मु खानि।
प्रात: कृतार्थानि यथा विरेजु स्तथा न पूर्वे द्युरलंकृतानि ॥2॥

स्त्रीनां स्वभाव वर्णने कविवृत्ति दर्शनीयाऽस्ति

स्त्रक्षभूषणं चेष्टितमप्रयल्मं चारुव्यवक्राव्यपि वीक्षितानि।
त्रटजूंश्च विश्वाससकृत: स्वभावान् गोपांगनानां मुमुदे विलोक्या ॥3॥

रामेण सह सन्धि करोविति रावणं प्रति विभीषणोवैशिष्ट्यं कविना
वर्णितम्-रामोऽपि दाराहटणेन तप्तो वयं हतैर्बन्धुमिरात्मतुल्यैः।
सप्तस्य तप्तेन यथायसो नः संधिः परेणस्तु विमुंच सीताराम ॥4॥

एकमेव विभीषणो राजनीतिमुपादिशरत्

एकेन संधि: कलहोऽपरेण कार्योऽमितो वा प्रसमीक्ष्य बुद्धिम्।
एवं प्रयुज्जीत: जिगीषुरेता नीतीर्विजानन्नहितात्मसारम् ॥5॥
बन्दसा प्रयोगे कविर्निपुण:। त्रयोदशे सर्गे सकन्धकनाम्नः ॥6॥

प्राकृतच्छन्दः प्रयोगपटुत्वं वरीवर्ति। भाषासम प्रयोगस्थापि निदर्शन मास्मिन्वेव सर्गे कृत्वा भट्टिमहाकविष्वम्यत मोबमूब।

चारुसमीरणरमणे हारेण कलंक किरणावली विलासा।
आबद्ध राममोहा वेलामूले विभावरीपरिहीणा ॥7॥

संस्कृते प्राकृते च पद्यमिदं भवत्येताहशमेव। अन्यदापे पश्यतु तैव तुंगमणिकिरण जालं गिरिजल संघट्टबद्ध गभीररवम्।

चारुगुहाविवरसमं मुरपुरसममयरचारण सुसंरावम् ॥8॥

आस्मिभेव सर्गे समा सान्तपदानां बाहुल्यं दरीदृश्यते परन्तु प्रवाहहीनता न कुत्तापि। व्याकरण संबंन्धि सर्गेषुछनद सा वौविध्यं नास्ति परन्तु सर्गेष्वन्येषु द्वन्दान्यनेक विधानि मिलन्तोवा दशमे। छन्दोबाहुल्यं दरीधर्ति कवि:। चतुर्थ सर्गतो नवमं यावत्तथा च शतुर्दवातो द्वाविशं यावदनुष्टुवृ छन्दांस्येव मिलान्ते बहुश:। एवं मुपन्त छिन्दसां स्थित्रतः प्रथम द्वितीये द्वादषो त्रयोदशि चास्ति। त्रयोदशे आर्या: न्ति दशमे च पुष्पिताग्रा:। तथापि प्रहर्षिणी, मालिनी वंशस्थम्, औपच्छ दातिकम् वैतालीयम् पृथ्वी, रूचिता तोटकम् द्रतबिलाम्बितम् स्गग्धरा मन्दाक्रान्ता शार्दूलविक्रीडितम् प्रमितासरोपेन्द्र वज्रेद्रवज्राप्रम्ततीनि इन्द्रांस्थपि यथास्थशनं सम्यक् प्रयुक्तानि कविना। इन्द्रोभंगन करोति कवि: श्रेणीकृता इति स्थले श्रेणिकृत इति प्रयोगं विचकार। आनित्येरे श्रेणीकृता स्तथाऽन्यैः परस्परं वालधिसन्तिबद्धा ॥1॥

अत्र च्वौच (7/4/26) इति शास्त्रापेक्षया अपि माषं मषं कुर्याच्छन्दो भंगू कारयेत् इति द्वन्द: शास्त्रस्य प्राक्ल्य मुररीकृतम कविना।

द्वादशसर्गस्य भावानामुदात्तताद्भुतता च एकादश सर्गस्य माधुर्य गुणामिव्यक्तिः दशमसर्गस्थशलंकार सज्जता, त्रयोदशसर्गस्य भाषा निवेश: कस्य सहृदय स्य कृते नाह्लादंवर्द्धयन्ति। अन्यत्रापि प्रसादमाधुयौजः गुणानां स्थित्रतर्तम्यत एव। भट्टिकवेर्वक्तृतृता पात्राणां भाणणेननानुमीयते। पंचमे सर्गे शर्पूणखा भाषणेन कुटिलतायाः परि विभीषण भाषणेन च राजनीतिबोधं सुस्पष्टं भवतीते। द्वितीयसर्गस्य शरदर्तुवर्णनम् द्वादशस्य च प्रभातवर्णनं कमनीयतापादनेन कवीनतिशेते। न कुयाप्य ताहशमुबकालवर्णनं प्राप्नोति यथा-

दुरुत्तरे पंकइवान्धकारे भग्नं जगत्संततरश्मिरज्जुः।
प्रनष्टमूर्ति प्रविभागमुद्यन् प्रत्युज्जमहादेव तो विवस्वान ॥2॥

उदयालस्यो रवि: किरणरज्जुनिर्निमग्न संसार मंधकारे प्रत्युज्जहार इत्यादि तीया कल्पना कं न प्रीणाति। कविरयं व्याकरणशास्त्रं पिपारीषया समुद्यतान् छात्रान् पद्यैः पाठयितुः प्रथमं प्रयासं व्याधात् लक्ष्यलक्षणयोरैवयं समुपापादयताऽनेन काविन्यास्परस्टशप्रयुक्तादिदोषान् स्वीकृत्यापि नवा परम्परा प्रकटिता। भट्टरस्ति स्वपरम्परायाः कविमालायं सुमेरु: भट्टमौमस्य रावणार्जुनीयम् भट्टिकाव्यपरम्परा यां महाकाव्यं रावण-कार्त वीर्ययो: कथावर्णनमिषेण पापिनिव्याकरणस्य नियतान् वर्णयति। हलायुधस्य काव्य रहस्यं धातुपाठं प्रदर्शयति। हेमचन्द्रस्य प्रमारपालचरितं हेमव्याकरणमयिव्यनाक्तं। वासुदेवचरितम् वासुदेव एवें: धातुकाव्यञ्च नारायणमट्टःस्य भट्टिकाव्यस्य परम्परां निर्वहन्ति। यद्यपि व्याकरण सम्मत रूपाणामन्वेषणे रता बुद्धि काव्यशैल्या: प्रवाहं रुणाद्रि तथापि शद्वशास्यस्य काव्यस्य च विधामेकत्र संस्थशप्य रचनाप्रवाह: सर्वजनसुहम्: कथं भविष्यति। भट्टिर्नवसरणे: प्रजा पतिरासीत अद्याप्यस्ति। व्याकरण सुगमाबोधने प्रवृत्तिस्ततस्य समुदिता, भट्टिकृता रचना प्रथम: प्रयासः॥

वाम भाग: ध्वज एवं वृक्षांकन युक्त सप्त बिंदुओं का अंकन, निम्न भाग में वामाभिमुख ककुदमान वृषभ खड़ा है तथा बायें किनारे पर एक अक्षर 'ध' अंकित है। अर्थात् यह मुद्रा धार नक्षर से जारी की गई।

अन्य मुद्राओं के पुरोभाग पर शिवलिंग एवं भोजदेव का नामांकित किंतु वाम भाग पर दक्षिणाभिमुख ककुदमान वृषभ का दाहिना पैर उठाये कहीं बिन्दुओं द्वारा अंकन और कहीं रेखांकन द्वारा वृषभ का अंकन है।

राजा भोज शैवोपासक होते हुए भी समकालीन प्रचलित अन्य धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति आदर भाव प्रदर्शित करते हैं। उनके अनुसार बौद्धों की बातें सुननी चाहिये, जैनों का आचरण करना चाहिए, व्यवहार वैदिक के अनुसार हो और ध्यान शिव का हो ।10

श्रोतव्य: सोगतो धर्म कर्तव्य: पुनरार्हत वैदिको व्यवहृर्तव्यो ध्यातव्य: परमः शिवः।

भोज परम शैवोपासतक है। उनके समकालीन संपूर्ण भारत में शैव धर्म उच्चतम शिखर पर था। भोज की नीति धार्मिक समन्वय की थी। समकालीन समस्त धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति उनकी दृष्टि आदर भाव की थी।

संदर्भ

1. हिस्ट्री ऑफ इण्डियन फिलासफी : एस. एन. दासगुप्ता, अध्याय 5, पृ. 159
2. समरांगण सूत्रधार, भाग 2, अध्याय 10, पृ. 46-50।
3. एपिग्राफिया इंडिका, भाग 1888, पृ. 222-238।
4. प्रबंध चिन्तामणि- मेरुतुंग, पृ. 46।
5. इम्पीरियल गजेटियर, भाग 8, पृ. 121-123।
6. श्रृंगारमंजरी, पृ. 32 व 35।
7. उज्जैन और उसका गौरवशाली अतीतः, सम्पादक रा. कु. अहिरवार, पृ. 215।
8. चाणक्य-माणिक्य डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, पृ. 157-159।
9. विक्रमार्क- सम्पादक डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित, माह मार्च 2013, वर्ष 1, अंक 1, पृ. 54-57।
10. प्रबंध चिन्तामणि मेरुतुंग, पृ. 18।

भारतीय ज्ञान परम्परा और नई शिक्षा नीति

डॉ. संतोष चौबे

भारतीय संदर्भों में नवरत्न की परपंरा सम्राट विक्रमादित्य ने शुरू की थी। नवरत्न कौन थे और वे करते क्या थे? उससे हमारी ज्ञान परपंरा की एक लिंक भी हमें मिलती है। इन नवरत्नों में जो पहले थे उनका नाम घटर्खपर था और वे खनिजों की पहचान और उसके उत्खननों के विशेषज्ञ थे। दूसरे धन्वन्तरि जिनके बारे में आप ज्यादा परिचित होंगे। वे चिकित्सा और औषधि विज्ञान के बड़े विशेषज्ञ थे और उनके नाम से बहुत सारा चिकित्सीय औषधि विज्ञान हमारे यहाँ देखने को मिलता है। तीसरे क्षपणक जो ज्योतिष शास्त्री और हस्तरेखा विशेषज्ञ थे। हमारी प्राचीन ज्ञान परंपरा में ज्योतिष शास्त्र का एक विशेष स्थान रहा है। चौथे थे वेताल भट्ट, जो तंत्र-मंत्र के बहुत बड़े ज्ञाता थे और जिनके पास अलौकिक शक्तियाँ थी। जो एक तरह से पराविज्ञान की तरफ ले जाते थे। भाषाविद् अमरसिंह जिन्होंने अमरकोश लिखा। भृर्तहरि ने अमरकोश का उल्लेख किया है। अमरकोश हमारी परपंरा में लंबे समय से कायम रहा है। वररुचि जो व्याकरण विशेषज्ञ थे। कालिदास से आप भलीभाँति परिचित हैं। वे नाटककार और कवि थे। वराहमिहिर खगोल विज्ञानी और शंकु वास्तुकार व शिल्पज्ञ थे। अब आप सोचिए कि आज से लगभग दो हजार साल पहले ये सारे विशेषज्ञ एक राजा के दरबार में होते हैं और यही उन परंपराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं जिनकी आज हम बात कर रहे हैं। भारत की ज्ञान परपंरा इन सारी परपंराओं और विज्ञानों से मिलकर बनती है और ये अनायास नहीं है कि विश्व ये बात मानता है कि ज्ञान की जो जननी है वो भारत भूमि है। मैं जिस उज्जैन में मैं अपनी बात कर रहा हूँ वह एक ऐसी प्राचीन नगरी है जहाँ ज्ञान की परपंरा बहुत पहले से विद्यमान रही है। फिर भी हम कुछ विषयों पर बात करेंगे। हमारे यहाँ इन सारी परपंरा को लेकर ज्ञान का मूल तत्व क्या माना गया? मुझे लगता है किस विद्या या विमुक्ति जो हमारा मूल ध्येय है। याने विद्या वो है जो आपको मुक्त करती है। यदि इसको आप ध्यान में

रखते हैं तो बहुत सारे सवाल आपके दिमाग में साफ भी हो सकते हैं। उनको हम लोग अलग-अलग दृष्टिकोण से देख भी सकते हैं।

यदि विद्या को आपको विमुक्त करना है तो वो विमुक्ति किस तरह की होगी? वो मुक्ति किस तरह की होगी और उसका स्वरूप क्या होगा और उसकी यात्रा का रास्ता क्या होगा? मुझे लगता है कि परपंरा हमें वो रास्ता बताती है और सिर्फ हमें ही नहीं वो सारे विश्व को रास्ता बताती है कि देखो मित्रों वसुधैव कुटुम्बकम की जब हम बात करते हैं तो ये एकमात्र धरती है जो समग्र विश्व को कुटुम्ब मानती है। ये एकमात्र सभ्यता है जो सभी को अपना मित्र मानती हैं। ये एकमात्र सभ्यता है जो किसी अन्य धर्म का अपमान नहीं करती और इस रास्ते पर चलने के लिए कहती है। इसीलिए हम विश्वगुरु बनने की संभावना रखते हैं। जो कोई भी किताब धर्म आधारित है वो इस तरह की स्वीकारोक्ति नहीं करती और ना ही वो इस तरह की अश्वस्ति देती है। ज्ञान के माध्यम से मुक्ति की जो बात की गई हैं। वो भारतीय सभ्यता का पहला और बड़ा गुण है। मुझे लगता है कि जब हम ज्ञान परपंरा की बात करेंगे तो ये गुण को हमें ध्यान में रखना है। आप सब जानते है कि 'मैक्समूलर' जर्मनी के बड़े दार्शनिक थे और उन्होंने भारत की सभ्यता पर गहरा शोध किया। मैक्समूलर कहते हैं- 'अगर मुझसे पूछा जाए कि किस आकाश के तले मानव मस्तिष्क ने अपने सबसे उत्तम उपहारों में से कुछ को सर्वाधिक सम्पूर्णता के साथ विकसित किया है। जीवन की सबसे बड़ी समस्याओं पर सबसे अधिक गहराई से विचार किया है और उनमें से बहुत सी समस्याओं का समाधान भी सुझाया है। तो मुझे भारत की ओर संकेत करना पड़ेगा। अगर मैं खुद से पूछूँ कि हम किसी साहित्य से संबद्ध हों जो हमारे आंतरिक जीवन को अधिक सम्पूर्ण, अधिक व्यापक, अधिक सार्वभौमिक बनाने में और वास्तव में मानव जीवन को सही अर्थ देने में मदद करें तो फिर मुझे भारत की ओर संकेत करना पड़ेगा। मैक्समूलर ये बात आज से लगभग 100 साल पहले कहते हैं। आज जब हम नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनाते हैं तो हम भारत की उसी ज्ञान परपंरा की बात कर रहे होते हैं जिसकी बात मैक्समूलर ने की थी या कि जो सभी को मुक्त करने की बात करती है। विद्या के माध्यम से मुक्ति का मार्ग खोजती है और ये मुझे लगता है कि भारतीय ज्ञान परपंरा की पहली और सबसे बड़ी बात है।

इस छोटी सी भूमिका के बाद मैं कुछ गुणों की तरफ आपका ध्यान आकर्षित करना चाहूँगा जो कि भारतीय ज्ञान परपंरा के मोटे गुण है। इसमें सबसे पहली बात है समग्रता। आप आज धरती को देखें और मानव सभ्यता को देखें तो एक अजीब सा भ्रामक कुहासा आपको देखने मिलता है, लेकिन भारतीय ज्ञान परपंरा की तरफ जायें तो बहुत साफ-साफ आप देख पाते हैं कि ये पूरी मानव सभ्यता और उसके आसपास का वातावरण चार स्तरों में विभाजित है। अपनी आँखें खोलकर देखने भर की जरूरत हैं। हमारी परंपरा ये बताती है कि ये चार स्तर जो हैं इनमें से पहला स्तर है पदार्थ, उसके ऊपर का स्तर वनस्पति, फिर पशु-पक्षी, उसके सबसे ऊपर का स्तर मनुष्य है। ये चारों चीजें एक ही नहीं हैं। इन चारों में पदार्थ के गुण मिलते हैं। लेकिन वनस्पति में आपको जीवन देखने को मिलता है। पशु-पक्षियों में आपको चेतना देखने को मिलती हैं और अंत में जाकर मनुष्य में आपको आत्मबोध देखने को मिलता है। ये चार गुणानुक्रम हैं जो नीचे से ऊपर की तरफ आगे बढ़ते हैं। अगर आप इसको ध्यान में रखते हैं तो आपको पृथ्वी का पूरा-पूरा ढाँचा साफ हो जाता है। और अगर ये जो पदार्थ का गुण, जीवन, चेतना और आत्मबोध का गुण है तो ऐसा लगता है कि इसके आगे भी कुछ हो सकता है। हमारी परपंरा में उसको ईश्वरत्व कहा गया है। इस यात्रा का लक्ष्य है इस देवत्व को प्राप्त करना। यदि हम इस देवत्व को प्राप्त करना चाहते हैं तो हमारा पूरा काम व कार्य पद्धति परिभाषित हो जाती है। हमें अपनी विद्या के द्वारा वो गुण, अपने जीवन के द्वारा वो गुण प्राप्त करने हैं जो हमें अपने चौथे स्तर से ऊपरी स्तर तक ले जाएँ और आज से 100 साल पहले तक सभी लोग ये बात मानते थे कि एक अदृश्य शक्ति है जिसके प्रति हम आकर्षित हैं। धीरे-धीरे इस परिकल्पना को समाप्त किया गया और बाद में ये मानना भी खत्म हो गया कि कोई ऐसी अदृश्य शक्ति भी हो सकती है। आप देखिए पदार्थ सबसे ज्यादा दृश्य है। लेकिन वनस्पति के भीतर के जीवन को आप देख नहीं सकते, वनस्पति को देख सकते हैं। आप पशु-पक्षियों को देख सकते है उनके बाहरी आवरण को देख सकते हैं लेकिन उनके भीतर छुपी हुई चेतना को नहीं देख सकते। आप मनुष्य को देख सकते हैं लेकिन मनुष्य के भीतर आत्मबोध को नहीं देख सकते। इस तरह से दृश्यता से अदृश्यता से बढ़ने वाला गुणानुक्रम है। जो नीचे के स्तर से ऊपर के स्तर तक जाता है। इससे ये सिद्ध होता है कि एकदम ऊपर भी कोई अदृश्य चीज हो सकती है। जिसे हमारे यहाँ देवत्व कहा गया है। वैसे ही जैसे आप मनुष्य का विखंडन नहीं कर सकते। आप मनुष्य का हाथ काट देंगे तो दोबारा नहीं उगता। लेकिन वनस्पति की एक डाल काट दी जाती है तो वनस्पति दोबारा उगती है। आप पदार्थ का विखंडन अंतिम काल तक कर सकते हैं। इलेक्ट्रॉन वगैरह तो बहुत पीछे छूट गए अब हम हिग्सबोसान तक पहुँच गए। तो पदार्थ का विखंडन किया जा सकता है। पदार्थ में उस तरह का एकीकरण नहीं

है।

मनुष्य पूरी तरह से एकीकृत चीज है। इसलिए अगर आप फिजिक्स और केमिस्ट्री के माध्यम से मनुष्य का आकलन करने की कोशिश करेंगे, मनुष्य को समझने की कोशिश करेंगे तो शायद आप आकलन नहीं कर पाएंगे यहाँ तक कि मनोविज्ञान भी इस काम के लिए काफी नहीं है। जो मनुष्य के लिए बनाया गया था जिससे उसे हम समझ लेंगे। मनुष्य के भीतर की दृश्यता इस तरह से नहीं मापी जा सकती। मनुष्य एक समग्र इकाई है और हमारे चिकित्सा शास्त्र में दिमाग यानि मन और शरीर को अलग-अलग करके नहीं देखा गया है। तो पहला गुण हमारी परपंरा हमें जो देती है वह यह है कि चीजों को समग्रता में देखिए। हम समग्रता के बिना देखेंगे तो अधूरे ज्ञान तक पहुँचेंगे। अगर हमें मुक्त होना है तो इन चारों स्तरों को पहचानना है। इसकी जीवन यात्रा को पहचानना है। इसके साथ में इसके गुणों को पहचानना है। इसलिए प्रत्येक स्तरों को पहचानने के उपकरण भी हैं। जैसे वनस्पति को पहचानने के लिए उपकरण अलग है यानि उसकी पहचान से आप मनुष्य को नहीं पहचान सकते। ये चारों को जानने के उपकरण अलग-अलग हैं। महात्मा बुद्ध ने कहा कि मनुष्य को जानने का अंतिम उपकरण ध्यान है, क्योंकि जितना अच्छा आप अपने आप को जानेंगे उतना ही बाहर दूसरे व्यक्ति को जान सकते हैं। जब तक आप अपने आप को नहीं जानते तो आप दूसरे व्यक्ति को भी नहीं जानते। तो वो एक अंतिम सीमा है। हम अक्सर घालमेल ये करते हैं ये कहने लगते हैं कि मनुष्य एक पदार्थ हैं, मनुष्य एक तरह की मशीन है, मनुष्य एक तरह का टोनिडम है। आप अक्सर मनुष्य के अंदर उस तरह से देख ही नहीं सकते हैं। इसलिए हमारे चिकित्सा शास्त्र में कहा गया कि योग और ध्यान के माध्यम से अपने आपका विस्तार करना, तभी आप दूसरे मनुष्य को जान सकते हैं। मैं इस बात पर यहाँ रुक जाता हूँ क्योंकि एक बहुत बड़ी बहस है इसे लेकर। ये भी हमारे यहाँ माना गया कि ये जो अलग-अलग स्तर है इस पर अलग-अलग विश्व उपस्थित है। अब मैं आपको भागवत कथा से कुछ पंक्तियाँ सुनाता हूँ। भाषा थोड़ी सी पुरानी है, लेकिन एक स्तर पर विश्व किस तरह उपस्थित है, वो जरा आप सुनिए। बहुत ही दिलचस्प और आश्चर्यजनक है। ये आज से दो हजार साल पहले की बात है जब ये बात कही गयी होगी। वनस्पति, औषधि, लता, तत्वसार, विरुद और दरुम इनका संचार जड़ से ऊपर की ओर होता है। इनमें प्राय: ज्ञानशक्ति प्रकट नहीं रहती जो मैं कह रहा था। ये भीतर ही भीतर केवल स्पर्श का अनुभव करते हैं तथा इनमें से प्रत्येक में कोई ना कोई विशेष गुण रहता है। आठवीं सृष्टि पशु-पक्षियों की है वो अट्ठाइस प्रकार की होती है। इन्हें काल का ज्ञान नहीं होता। तमगुण के अधिकता के कारण वे सिर्फ खाना-पीना, मैथुन करना, युग और सोना आदि ही जानते है। इन्हें सूंघने मात्र से वस्तुओं का ज्ञान हो जाता है। इनके हृदय में विचार शक्तियाँ दूरदृष्टिता नहीं होतीं। नवीं सृष्टि मनुष्यों की है। यह एक ही प्रकार की है। उनके आहार का प्रवाह ऊपर से नीचे की ओर होता है। मनुष्य रजोगुण प्रधान और दु:ख देने वाले विषयों में ही सुख पाने वाले होते है। इस तरह, पशु-पक्षी और मनुष्य ये तीनों प्रकार के सृष्टियों का आगे चलने वाला देवित्व वर्ग भी सृष्टि में हो सकता है। अब आप सोचिए कि आपकी भागवत कथा में ये ज्ञान जो कि आज के आधुनिक ज्ञान के बहुत निकट है आपको मिलता है। भारतीय परपंरा में यह बात कही गयी है कि समग्रता में देखें। ये सभी किस्म की सृष्टियों की बात कर रहे हैं। प्रत्येक सृष्टि के अंदर एक विश्व उपस्थित है।

यदि इतना सारा विस्तार है तो क्या इसे जोड़ने वाला कोई दर्शन भी है। मुझे लगता है कि भारतीय परपंरा में ही वो दर्शन भी उपस्थित है और आप सब उसको जानते हैं। शंकराचार्य जब अद्वैत की बात करते हैं तो कहते हैं कि सारी चीजें अंतत: अद्वैत हैं। अंतत: परमात्मा सब में प्रकट होता है और जब वो कहते है कि हिग्सबोसान से सारे कण बनते है। तो वो भी एक तरह की ऐसी ही बात है जहाँ पर हम सब ये बात करते हैं। ये अद्वैत दर्शन की बात शंकराचार्य ने तो कही है लेकिन ये ऋग्वेद से चली आ रही है। हमें तमाम विविधताओं के बावजूद ये अद्वैत की बात अपने दिमाग में रखनी है। ये दूसरा गुण है मैंने पहले गुण की बात की समग्रता। दूसरा गुण है अद्वैत।

'अखंड मंगलाकारं व्याप्तं येन चराचरम तत पदम् दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।'

ईश्वर वह जिसका स्वरूप संपूर्ण और अविभाज्य है। जो हर जगह मौजूद है। जड़ व चेतन दोनों जगह व्याप्त है। ऐसे गुरु जिसने ईश्वर से साक्षात कराया। उन्हें नमस्कार। तो यहाँ ये बात निकलती है कि ये जो सबको जोड़ने वाला दर्शन है। अंतत: वो अद्वैत दर्शन है और हमें इस बात को ध्यान रखना है कि हमारी परपंरा का दूसरा गुण ये अद्वैत दर्शन जो आगे चलकर हमारी ज्ञान की परंपरा को दर्शाती है। जैसा कि आप सभी जानते हैं कि शंकराचार्य के बाद अभिनव गुप्त हुए जो काश्मीर के थे। जिन्होंने योग, तंत्र और वेद की

त्रिवेणी के माध्यम से यह बताया कि अपने जीवन में कैसे अपनी परपंराओं को उतारना है। आप सोचिए कि इतने सारे आक्रमण हुये, इतने सारे लोग हमारे यहाँ आये, लेकिन तब भी हमारी परपंरा जीवित है। काश्मीर से कन्याकुमारी तक जीवित है। भारत एक सांस्कृतिक राष्ट्र के रूप में अभी भी जीवित है। अभिनव गुप्त जैसे दार्शनिकों ने वेद आधारित एक जीवन पद्धति स्थापित की जो योग व तंत्र आधारित थी। काश्मीर ने बहुत सारे लेखक, कवि, दार्शनिक और संगीतज्ञ पैदा किये। ये जो दृष्टि है विश्व दृष्टि है एक तरह की। वो विदेशियों को आज भी और पहले भी आकर्षित करती रही है। एक छोटा सा उद्धरण देखिए 'हेंडी डेविड थोरो' अमेरिका के बड़े दार्शनिक हैं। वो कहते हैं- जब कभी भी मैंने वेद का कोई भी हिस्सा पढ़ा तो महसूस किया कि किसी अलौकिक और अंजान प्रकाश ने मेरे मन को भर दिया है। वेदों की महान वाणी में संप्रदायवाद के लिए कोई जगह नहीं है। ये सभी आयुवर्ग के लोगों, सभी प्रकार के उत्कर्षों और राष्ट्रीयता के लिए है। जब भी मैं इसे पढ़ता हूँ तो महसूस होता है कि मैं किसी ग्रीष्म ऋतु की चाँदनी रात में खुले आकाश के नीचे बैठा हूँ। ये हेंडी डेविड थोरो कह रहे हैं और वे हमारी वेदों की परपंरा के बारे में कह रहे हैं। जब हमारी नई शिक्षा नीति बनती है तो इसमें यह कहा जाता है कि हमको राष्ट्रीय परपंराओं को संचय करना है और उसे दोबारा सामने लाना है। आइंस्टाइन ने भी कहा कि इतिहास के सबसे खतरनाक क्षण में मुक्ति का एकमात्र तरीका भारतीय तरीका है।

तीसरा गुण यह है कि प्रकृति को हमने अपने विरोधी नहीं माना। प्रकृति हर समय हमारी मित्र थी। प्रकृति के साथ हमें समन्वय के साथ काम करना था, प्रकृति को लेकर हमारे यहाँ दुश्मनी जैसी कोई बात नहीं रही है। मनुष्य प्रकृति के खिलाफ नहीं है। मनुष्य प्रकृति का मित्र है और प्रकृति हमारी मित्र है ये बात भी ऋग्वेद से हमारे यहाँ चली आती है। देखिए विकास की जो अभी अवधारणा है उस विकास की अवधारणा में हम प्रकृति से ले रहे हैं हम बाकी के अपने नीचे के स्तर के लोगों को जैसे कुछ समय पहले लेखक 'युवाल नोआह हरारी' की 'सेपियंस' नाम की किताब आयी है उसे देखना चाहिए। जानवरों के साथ जो हमारा व्यवहार है। जिस तरह से जानवरों को काटकर, डिब्बे में बंद करके पूरी मनुष्यता के खाने के लिए भेजा जाता है। क्या जानवर समाप्त हो जायेंगे तो क्या आप बचे रहेंगे। ये इस तरह का दुःखद प्रकरण है जिसमें कि आपने प्रकृति को दुश्मन मान लिया है, जानवरों को आपने समाप्त करने की ठान ली, अकेले मनुष्य के रूप में कैसे अपना जीवन गुजारेंगे। वहीं ऋग्वेद में कहा गया है कि-

'हिरण्यगर्भ: समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।' सभी उत्पत्तिशील पदार्थों का एक ही स्वामी हिरण्यगर्भ यानि परमात्मा है। उसने ही आकाश, पृथ्वी को धारण किया है। हम हवी द्वारा उसी को पूजित करें। जल को लेकर इतने सारे श्लोक ऋग्वेद में हैं। प्रकृति को लेकर इतने सारे श्लोक ऋग्वेद में है। पूरी पूजा पद्धतियाँ और संगीत को लेकर इतना सारा काम सामवेद में है। जल को लेकर एक श्लोक सुनिए-

शन्नो देवी रभिष्टय आपो भवन्तु पीपतये शनयो रविस्र वन्तुनः।

हमारे रोगों को दूर करने वाला यह जल सेवन योग्य है। तृप्ति करने वाला मंगलकारी जल अपने सुखद प्रवाह के साथ प्रकट होता है। स्वस्ति विद्या वरुण: स्वस्ति पत्रे रेवती, स्वस्ति इन्द्रश्च, अग्निश्च स्वस्ति ने अदिते रही। जल, वायु, पुल एश्वर्य से परिपूर्ण मार्ग और प्राणदायक वायु से परमात्मा हमारे लिए कल्याणकारी हो। जो तीसरा गुण हमारी परपंरा में ये है कि चारों स्तरों से हमें समन्वय के साथ काम करना है। ये चारों हमारे मित्र हैं। मनुष्य अकेला नहीं है। मनुष्य के साथ में पशु-पक्षी भी हैं। मनुष्य के साथ में प्रकृति भी है व जड़ पदार्थ भी हैं। हमारी कितनी प्रार्थनाएँ जड़ पदार्थों के बारे में है। चारों स्तरों का समन्वय हमारे विश्व को बनाता है। इसलिए विज्ञान का पूरा काम इस समन्वय को देखना और समझना है। आगे चलकर भृर्तहरि पाँचवीं-छठी शताब्दी में हुए हैं। भृर्तहरि को हम लोग सब वैराग्य शतक में पढ़ते हैं, श्रृंगार शतक में पढ़ते हैं। भृर्तहरि की पूरी कहानी आप सभी को मालूम है। भृर्तहरि भी उज्जैन की इस भूमि पर रहे हैं। हमारे एक मित्र महेश कटारे ने एक बहुत अच्छा उपन्यास लिखा है उनके बारे में। भृर्तहरि कहते हैं- 'हे पृथ्वी माता, वायु पिता, हे तेज मित्र, हे जल सुबंधु, हे भ्राता व यम में हाथ जोड़ करता प्रणाम हे कृपा सिंधु, जो आपके संग से पुण्य मिला। उस पुण्य आदि से ज्ञान मिला। दूर हुआ मेरा सारा भ्रम और मैं ब्रम्हलीन होने को अब।' हमारे यहाँ का कोई भी बड़ा विचारक अपने आपको पृथ्वी से काटकर नहीं देखता है और वो अंतत: मुक्ति को उस प्रकृति के भीतर ही देख पाता है। मैंने अभिनव गुप्त की बात की जो भृर्तहरि के बाद आये थे। मैं आपको कविवर रवीन्द्रनाथ टैगोर की कविता सुनाता हूँ। यह इसी दृष्टि के साथ है, जब तक हम ये दृष्टि प्राप्त नहीं करेंगे हमारी संपूर्ण पढ़ाई-लिखाई व ज्ञान-विज्ञान की परपंरा गलत दिशा में जाती हुई दिखेगी। इसके साथ में इस बिन्दु को

समाप्त करूँगा।

मेरे सुनहरे बंगाल मैं तुम्हें प्यार करता हूँ। हमेशा के लिए तेरे आसपास तेरे आसमान तेरी हवा ने मेरे दिल को ऐसी धुन में बाँध लिया जैसे एक बाँसुरी हो। हे माँ फाल्गुन में आम के बाग की सुगंध मुझे रोमांचित कर देती है। आहा क्या रोमांच है। हे माँ अगराहण में पके धान के खेतों में हर तरफ मीठी मुस्कान दिखाई देती है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भारत का राष्ट्रगान लिखा। ये जो राष्ट्रप्रेम बड़े कवियों में होता था। हमारी नई शिक्षा नीति इस वाक्य से शुरू होती है कि हमको राष्ट्रवादी भावना को और स्व के प्रेम से अपने छात्रों को भरना है। हमको अपने छात्रों में ये राष्ट्रप्रेम, देश की परपंरा, हमारे देश के ज्ञान से सन्नद्ध करना है और आप देखते हैं कि कोई भी बड़ा आदमी वो किसी भी अभिमत का रहा हो बिना राष्ट्रप्रेम के बड़ा हुआ ही नहीं। चौथा गुण जो हमारी ज्ञान परपंरा में है। वह है व्यक्तित्व की सम्पूर्णता। आप अकेले वैज्ञानिक बन जाये। आप कलाकार बन जाये। लेकिन आपका व्यक्तित्व सम्पूर्ण तब होता है जब आप कलात्मक और वैज्ञानिक संवेदना भी रखते हों। राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने ये काम किया है कि वो आपको अपने विषयों के साथ-साथ ज्ञान और विज्ञान की तरफ भी ले जाने की कोशिश करेगी। नीति संतुलित मनुष्य की बात कर रही है सम्पूर्ण मनुष्य की बात कर रही है। अभी भगवान कृष्ण का जिक्र हुआ। जो आपके शहर में रहकर पढ़ाई करने आये थे और उन्होंने चौसठ कलाओं में कुशलता हासिल की। तो हमारे यहाँ ये जो मुडोपनिषद है उसमें दो तरह की विद्याओं की बात कही गयी है। एक है पराविद्या और एक है अपराविद्या। तो पराविद्या में लगभग 18 किस्म के विषय बताये गये हैं जिसमें आप अपने आज की ह्यूमिनिटिज, आज के साइंस के विषय ले सकते हैं। लेकिन उसके अलावा अपराविद्या है और उसमें चौसठ कलाओं का जिक्र किया गया है। वो सारे कार्य जो हमारे नियमित जीवन का हिस्सा है। वे समस्त कलाएँ या वे सारे शिल्प जो हमें रोजगार प्रदान करेंगे वे अपराविद्या के अंतर्गत होते हैं।

हमारी ज्ञान परपंरा 'परा' और 'अपरा' की बात करती थी। हमने हमेशा औपचारिक शिक्षा व व्यवसायिक शिक्षा को भेद करके ही देखा है। हमें दोबारा वहाँ लौटना है। बीच में पिछली सरकारों ने व्यवसायिक शिक्षा की इतनी उपेक्षा की कि हमारे पास फिलहाल विश्व की दृष्टि से देखा जाए तो कुल 4 प्रतिशत के आसपास ही लोग कुशल कामगार की तरह से है। बाकि लोग कुशल कामगार नहीं हैं जबकि जर्मनी में ये 78 प्रतिशत के करीब डाटा होता है। सामान्य विकसित देशों में विकासशील देशों में ये 30 से लेकर 50 प्रतिशत तक है। प्रत्येक उच्च शिक्षा के साथ जो कौशल की बात कही गयी हैं। उसका लक्ष्य है कि लोगों को कौशल से भी सन्नद्ध करें और वो जाकर हमारी परा और अपरा विद्या की अवधारणा से जाकर जुड़ता है।

पुराने समय में भी आप ज्योतिष शास्त्र पढ़ते थे, आप भाषा पढ़ते थे, आप व्याकरण पढ़ते थे, आप शायद इतिहास जैसे कोई चीज पढ़ते होंगे, लेकिन साथ में आपका कौशल और कलाओं की बात भी की जाती थी। तो मित्रों ये जो चौथी बात है नई शिक्षा नीति में व्यक्तित्व को सम्पूर्णता तक पहुँचाना है। इसीलिए सामान्यत: हमारे यहाँ सैद्धांतिक विषयों के साथ-साथ व्यवसायिक शिक्षा की बात भी की गई है। पाँचवाँ गुण है वो है विचार की स्वतंत्रता। आपको कोई बाँधा नहीं जा रहा है। हमारे यहाँ बाँधा नहीं गया कभी भी। हमारे यहाँ चार्वाक भी थे जो कहते थे किवणमं कृतवो प्रवेत। या चार्वाक कहते थे कि ईश्वर जैसा कोई कुछ नहीं है और सब कुछ यहीं पर है। लेकिन उनके अलावा भी बहुत सारी वैचारिक धाराएँ थीं और कभी इस कारण उनको गैलीलियो नहीं बनाया गया। कभी इस कारण उनको चौराहे पर जलाया नहीं गया कि आप दूसरा विचार रखते थे। कभी उनको जेल में नहीं डाला गया कि आपका विचार हमसे अलग है। हमारी परपंरा हमें बताती है कि विचार की स्वतंत्रता सबसे प्रमुख चीज है। गांधी भी ये कहते थे- 'सब जगह से देखो, हासिल करो लेकिन अपने पैर जमीन पर टिकाये रखो। कई बार ये मान लिया गया कि लोग आए और हमारे यहाँ बस गए हमारी दार्शनिक परपंरा यह कहती थी कि हमको किसी का अपमान नहीं करना है। हमको विचारों की स्वतंत्रता को खुलकर देखना है, इसी तरह से हमने सभी को समेकित भी किया है। जो समन्वय बात अभिनव गुप्त ने की थी या उसके बाद जो हमारे यहाँ नए दार्शनिक आये। श्री अरविंद हुए जिन्होंने अतिमानव की बात कही, टैगोर हुए जिन्होंने खुली सीमाओं की बात कही। तो यह हमारी परपंरा के भीतर ज्ञान परपंरा में शामिल है। ये गुणों में अंतिम गुण जो है अभी आज कहना चाहता हूँ खुलेपन के साथ-साथ व्यापक तर्क-वितर्क के साथ वाद-विवाद और वाद-संवाद की परपंरा थी जिससे ज्ञान प्राप्त किया जाता था।

तो आपने पृथ्वी को लेकर विश्व दृष्टि बनायी, विश्व दृष्टि के साथ-साथ जीवन दृष्टि बनायी, जीवन दृष्टि के साथ-साथ आपने

खुलापन रखा, खुलेपन के साथ-साथ वाद-विवाद और वाद-संवाद की बात की। इस तरह से ज्ञान की वृद्धि होती है। इस तरह हम मुक्ति के रास्ते पर आगे चलते हैं। इस तरह हम पाते हैं कि हमसे ऊपर भी कोई चीज हो सकती है। जो देवत्व होगी और मुझे वहाँ तक पहुँचना है। अगर इस यात्रा को बंद कर देंगे तो आपको नरक की तरफ जाना पड़ेगा जिसमें कोरोना जैसी महामारी लगभग नरक की तरह ही है। हम इसको अपनी जीवनशैली में शामिल करें और हमारा छात्र मुक्ति की तरफ आगे बढ़ें। एक उपनिषद में गार्गी और याज्ञवल्लक्य का एक संवाद है जो इस बात को सिद्ध करता है उसे मैं पढ़कर सुनाता हूँ। 'हे याज्ञवल्लक्य यदि सब कुछ जल में घुल मिल जाता है तो जल फिर किसमें जाकर मिलता है? गार्गी पूछ रही है। हे गार्गी जल वायु से ओतप्रोत हो जाता है। तो वायु किससे ओतप्रोत होती है? हे गार्गी वायु आकाश से ओतप्रोत होती है। तो आकाश किसमें जाकर मिलता है। हे गार्गी आकाश गंर्धवलोक में जाकर मिलता है। तो गंर्धवलोक किस लोक में जाकर मिलता है। हे गार्गी गंर्धवलोक सूर्यलोक से जाकर मिलता है। तो सूर्यलोक किस लोक से जाकर मिलता है। सूर्यलोक चन्द्रलोक से जाकर मिलता है तो चन्द्रलोक किस लोक में जाकर मिलता है ? हे गार्गी चन्द्रलोक तारालोक से जाकर मिलता है।' अब ये गार्गी और याज्ञवल्लक्य के बीच का संवाद हो रहा है। वो गुरु है लगभग वो भी बराबरी की बौद्धिक क्षमता वाली है और वो पूछ रही है।

इससे ज्ञात होता है कि कैसे हम समस्या को समझकर अपनी जिज्ञासा प्रकट करते थे। जिज्ञासा की इतनी बात होती है। सवालों की बात होती है। लेकिन हमारे यहाँ यह परपंरा बनी हुई है तर्क-वितर्क की। कोई किसी का गला नहीं घोट दे रहा है। कोई किसी को मारे नहीं डाल रहा है। वो पूछ रहे हैं कि किस तरह से संवाद हुआ किस तरह से बातचीत होगी, कैसे हम ज्ञान का रास्ता पकड़ेंगे। एक और बहुत अच्छी इसी उपनिषद में बात है कि तर्कशास्त्र जो हमारे अध्ययन का स्वरूप था। उसमें तीन तरह के तरीके हैं तर्कशास्त्र करने वाले। आपको समझ आ जाएगा कि टीवी में जो बहस होती है वो किस तरह की होती है। तर्कशास्त्र तीन तरह की बहसें करता है। एक है वाद, दूसरा गल्प और तीसरा है वितंडा। वाद वो चीज है जिसमें हम ईमानदारी के साथ अपनी बात रखते हैं और सच्चाई तक जाना चाहते हैं। गल्प वो तरीका है जिसमें कि आप किसी भी तरीके से वाद-विवाद को जीतना चाहते हैं। उसमें आप ईमानदारी और सच्चाई की चिंता नहीं करते। और वितंडा वो है जिसमें इन दोनों में से कुछ नहीं है। खूब सारा शोर करो, खूब सारा हल्ला करो और सच्चाई को परे रखो बस सामने वाले पर विजय प्राप्त करो। ये जितनी टीवी की बहसें हैं ये सारा वितंडा है। भारतीय परपंरा से कटा हुआ विमर्श। कभी भी ऐसा नहीं होता है। हमारे यहाँ वाद-विवाद, संवाद होता था मैंने आपको पढ़कर सुनाया। हमारे यहाँ राजनीतिक बहसों में जब कृष्ण भगवान दुर्योधन के पास आते हैं तो एक तरह का गल्प है जो संवाद उनके बीच में हो रहा है।

आज की पूरी स्थिति में वितंडा देखने को मिलता है कि जो सारा संवाद वितंडा में परिवर्तित है इसमें ही कोई सच्चाई तक पहुँच नहीं सकते हैं। हमारी ज्ञान परपंरा इसका निषेध करती है। वह कहती हैं कि असल में आपको अपने वाद-विवाद और संवाद से अपने सत्य की खोज करनी है। तो मित्रों मैंने अपने भाषण का पहला हिस्सा यहाँ समाप्त किया है। जिसमें मैंने यहाँ ये बताया कि हमारी ज्ञान परपंरा कि प्रमुख गुण क्या है और ये परपंरा के प्रमुख गुण इस प्रकार थे जो मैंने यहाँ छह या सात गुण बताये। इसके अलावा भी बहुत सारी चीजें हैं जिस पर आज बात करने का अवसर नहीं है। लेकिन आप इसे हमारे साहित्य में जाकर देख सकते हैं और हमारी ज्ञान परपंरा के जो दूसरे स्रोत हैं उनमें जाकर इन्हें देख सकते हैं। ये सारी बातें दर्शन के आसपास थीं। तो क्या हमारी परपंरा सिर्फ दर्शन की है। हमारी परपंरा विज्ञान की भी है। ये पश्चिम का षड्यंत्र है जो आपको यह बताता था कि मित्रों भारत गैर भौतिकतावादी देश है। वो तो धार्मिक देश है। दर्शन जैसा देश है, ये गलत बात है। धर्मपाल हमारे यहाँ के बड़े चिंतक हुए हैं। उन्होंने बताया कि 1560 के आसपास भारत विश्व की 30 प्रतिशत जीडीपी पर अपना कब्जा रखता था। भारत में साक्षरता की दर सबसे ऊँची थी। 15वीं-60वीं शताब्दी में। हमारी शिक्षा प्रणाली का एक तंत्र था जहाँ लोगों को पढ़ाया-लिखाया जाता था। गाँव में भी था और शहरों में भी। मंदिरों और गुरुकुलों के माध्यम से पढ़ाई-लिखाई की जाती थी।

अंग्रेजों के आगमन के बाद योजनाबद्ध तरीके से इस पूरे तंत्र को ध्वस्त किया गया, इसको पुनः उस प्रणाली में प्रकट करना सबसे ज्यादा आवश्यक है। मेरी अपनी ही किताब है इसमें विज्ञान पर एक पैराग्राफ है, हमारी परपंरा उतनी ही वैज्ञानिक है जितनी की दार्शनिक है और मैं एक पैराग्राफ इसमें से पढ़कर सुनाऊँगा।

विज्ञान का सामान्य अर्थ समझा जाता है - पश्चिमी विज्ञान। जिसने अनेक अद्भूत आविष्कारों और टेक्नोलॉजिकल यंत्रों को जन्म दिया है। किंतु आधारभूत वैज्ञानिक सिद्धांत और तकनीक पूरब में प्राचीनकाल में भी मौजूद थी और विज्ञान के विकास में पूर्व का महत्वपूर्ण योगदान है। सभ्यता की अनेक निधियाँ हमें पूर्व से मिलती हैं। भारत में प्रारंभिक विज्ञान की दो प्रमुख धाराएँ थीं। प्रथम गणित और खगोलशास्त्र और द्वितीय औषध विज्ञान। आपसतम्र सर्वसूत्र में पाइथागोरस के प्रमेय तथा अन्य कई विशिष्ट प्रश्नों का सामान्य हल है। सर्वसूत्र का प्राणायन पाइथागोरस के बाद के समय में हुआ था। किन्तु उसके विशिष्ट सूत्र निश्चित ही यूनानी नहीं भारतीय हैं। ये प्राचीन प्रयोग सिद्ध अंकीय आविष्कार हैं जिनके आधार पर बाद में ज्यामितिय प्रमेय बने या प्रमेय के आधार पर विकसित विशिष्ट हिन्दू प्रयोग है। ये इतना स्पष्ट नहीं है। संक्षेप में इतना ही कहना काफी है कि हमारे यहाँ गणित में हिन्दुओं की महत्वपूर्ण मौलिक उपलब्धियाँ हैं। स्थानिक अंकों का महत्वपूर्ण आविष्कार तथा शून्य के लिए संकेत भारतीय योगदान है। खगोलशास्त्र में हमारे यहाँ पाँच सिद्धांत प्रातमह, वशिष्ठ, सूर्य, पोलिश और रोमन है और ये परपंरा अटूट रही है। आर्यभट्ट पाँचवी शताब्दी, वराहमिहिर छठी शताब्दी, ब्रह्मगुप्त छठी और सातवीं शताब्दी, महावीर नौवीं शताब्दी, श्रीधर दसवीं शताब्दी और भास्कर बारहवीं शताब्दी। ये लगातार चलती चली आती है। कौन कहता है कि भारत जो है वैज्ञानिक राष्ट्र नहीं था। यदि वैज्ञानिक राष्ट्र नहीं था तो जो 30 प्रतिशत की जीडीपी हासिल की थी। वो क्या ऐसे ही हो गयी थी। जब हम विश्व के लीडर देश के रूप में थे और जहाजरानी को तो अंग्रेजों ने बहुत ही षड्यंत्र के साथ खत्म किया। क्या नौका हमारे नहीं बनती होगी? जहाज हमारे यहाँ नहीं बनते थे ? कपड़े सबसे अच्छे बनते थे। हमारे यहाँ ढाका वगैरह की बात होती है। ये सारा ज्ञान व तकनीक हमारे यहाँ थी और अंग्रेज अगर षड्यंत्रपूर्वक हस्तक्षेप नहीं करते तो हम उसी स्वाभाविक धारा में आगे बढ़ते, लेकिन 150-200 सालों का जो कालखंड है उसमें जिस तरह हमारी प्रगति को रोका गया। अब ये जगह आयी है जहाँ पर हम दोबारा पुनर्विचार कर सकते हैं और दोबारा बातचीत कर सकते हैं और हमने किया भी है। भारत आज जब टेक्नोलॉजी के क्षेत्र में दुनियाभर में एक ताकतवर देश की तरह नजर आता है।

आज इसरो और अंतरिक्ष में हमारी उपलब्धियाँ है, एटोमिक एनर्जी व सैन्य क्षेत्रों में हमारी उपलब्धियाँ है। यह सब इसलिए संभव हुआ है कि हमने अपनी पारंपरिक तकनीकों को दोबारा संग्रहीत करने के क्षेत्र में कार्य किया है। जहां ज्ञान का दर्शन हमारे लिए एक आंतरिक शक्ति है। वहीं विज्ञान हमारी बाहरी शक्ति है। इन दोनों के संतुलन को हमारी नई शिक्षा नीति संतुलित करके देखती है। इसमें एक बड़ी दिक्कत भाषा को लेकर भी है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति कहती है कि सारी पढ़ाई-लिखाई हिन्दी और भारतीय भाषाओं में होगी। हमारे कई मित्र कहते हैं कि साहब ये ऐसे नहीं हो सकता। हिन्दी और भारतीय भाषाओं में विज्ञान इसमें है नहीं, किताबें वगैरह हैं नहीं। आपको जानकर ये आश्चर्य होगा कि विश्व के जितने विकसित राष्ट्र हैं वो सब अपनी भाषा में ज्ञान-विज्ञान करते हैं। सिर्फ हमारे जैसे जो अल्प विकसित देश हैं वो सिर्फ अंग्रेजी या दूसरी भाषाओं में सोचते हैं और काम करते हैं। जापान, स्पेन, इंग्लैंड, रशिया, जर्मनी सहित दुनिया के अनेक देश अपनी भाषा में ही सोचते और अपना काम करते हैं। ये सब दुनिया में सर्वाधिक जीडीपी वाले देश हैं। राष्ट्रीय शिक्षा नीति कहती हैं कि अपनी भाषा पर गर्व करो। अपनी भाषा में सब कुछ संभव है। मैं व्यक्तिगत अनुभव से जानता हूँ कि आज से 30 साल पहले मैंने कम्प्यूटर पर हिन्दी में कार्य नहीं करवाया होता तो मैं इतनी बड़ी संस्था बना ही नहीं सकता था। ये जो आज 27 हजार टेक्नोलॉजीकल केंद्र जो पूरे देश में हैं। जो बहुत सारी भारतीय भाषाओं में काम करते हैं। इतने सारे जो हमारे विश्वविद्यालय बने हुए हैं। इन सभी में हमने हिन्दी, जहाँ पर हिन्दी है और जहाँ पर अन्य भारतीय भाषाएँ हैं वहाँ उसमें काम शुरू किया है। मित्रों ये मिथ है कि अपनी भाषा में काम नहीं किया जा सकता। कुछ दिनों तक अनुवाद करेंगे, सीखेंगे, लेकिन बहुत जल्दी आप अपनी भाषा में काम करना शुरू कर देते हैं। क्योंकि आपका जो ज्ञान और प्रज्ञा है वो अपनी भाषा में सबसे ज्यादा जागृत होती है।

पवन वर्मा नाम के हमारे यहाँ एक बुद्धिजीवी हैं उन्होंने 'भारतीयता की ओर' एक किताब लिखी है। उसमें उन्होंने महात्मा गांधी का एक कोट किया है भाषा को लेकर। गांधी कहते हैं स्वतंत्रता के पहले की बात है। मेरे विचार से जिस तरह से अंग्रेजी की शिक्षा दी गई है उसने अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों को नपुंसक बना दिया है। उसने भारतीय छात्रों पर जबरदस्त मनोवैज्ञानिक दबाव डाला और नकलची बना दिया है। ब्रिटिश राज में क्षेत्रीय भाषाओं का जो हाल किया गया। अभी तो मैं बोलियों की तो बात ही नहीं

कर रहा हूँ। ये बेहत दुखदायी है।

भारत में जितने तरह के अंधविश्वास हैं। उनमें इस बात से बड़ा अंधविश्वास कोई नहीं हो सकता कि बगैर अंग्रेजी जाने स्वतंत्रता को समझना और उससे जुड़े विचार में खरापन आना संभव नहीं है। मित्रों गांधी ये कह रहे हैं स्वतंत्रता के पहले। लेकिन सरकार जो उसके बाद आती है। उसका क्या करती है। वो तमाम भाषाई फॉर्मूले को उलझा देती है। आज 70 साल गुजर गए, 80 साल हो गए लेकिन आप अपनी भाषा में पढ़ाई-लिखाई शुरू नहीं कर पाये ढंग से। आपकी इंजीनियरिंग की शिक्षा, आपके डिप्लोमा की शिक्षा, आपकी मेडिकल की शिक्षा, अपनी भाषा में क्यों नहीं हो सकती। जबकि बच्चा तो उसी गाँव से आ रहा है, बच्चा उसी धमतरी से आ रहा है, बच्चा उसी नीमच से आ रहा है, बच्चा उसी मालवा के छोटी जगह से आ रहा है। सबसे पहला डर आपकी जो कार्य पद्धति है जिस तरह से बच्चे आप पैदा करते हैं जिस तरह की टेक्नोलॉजी आप लाना चाहते हैं। जिस तरह की भाषा में बात करते हैं। जब मैंने शुरूआत में काम शुरू किया तो सबसे बड़ी दिक्कत होती थी कि मैं गाँव में जाऊं और बच्चों में कम्प्यूटर का तो बड़ा शौक था। अगर मैं टाई पहनकर जाउंगा, अगर मैं सूट पहनकर जाउंगा, मतलब यदि कम्प्यूटर सीखने के लिए टाई और सूट पहनना जरूरी है तो इससे बड़ी मूर्खता की बात क्या हो सकती है और मैं कहूं कि बड़े-बड़े ग्लास के कैबिन बनाउंगा और उसमें कम्प्यूटर रखूँगा तो उसके अंदर कोई घुसता ही नहीं है। ग्रामीण बच्चा जो है इस तथाकथित चमक-धमक से डर जाता है। वैसे ही जैसे धाराप्रवाह अंग्रेजी बोला तो वह डर जाता है। सबसे बड़ी बात मुझे राष्ट्रीय शिक्षा नीति में लगती है कि वो अपनी भाषा में और भाषा के सम्मान के साथ बात शुरू करते है। अपने देश के प्रति सम्मान, अपनी परपंरा के प्रति सम्मान, अपने ज्ञान और परपंरा के प्रति सम्मान और अपनी भाषा के प्रति सम्मान ये सबसे बड़ा और प्रारंभिक गुण है जो राष्ट्रीय शिक्षा नीति हमें बताती है। आप देखिए राष्ट्रीय शिक्षा नीति का मूल गुण क्या है और उसे कैसे क्रियान्वित किया जा रहा है। इसके प्रियंबल से एक पैराग्राफ में पढ़ता हूँ।

प्रियंबल कहता है-'प्राचीन और सनातन भारतीय ज्ञान और विचार की समृद्ध परपंरा के आलोक में ये नीति तैयार की गई है। ज्ञान, प्रज्ञा और सत्य की खोज को भारतीय विचार परपंरा और दर्शन में सदा सर्वोच्च मानवीय मूल्य माना जाता था। प्राचीन भारत में शिक्षा का लक्ष्य सांसारिक जीवन अथवा स्कूल के बाद में जीवन के तैयारी के रूप में ज्ञान अर्जन नहीं। बल्कि पूर्ण आत्म ज्ञान और मुक्ति के रूप में माना गया था। तक्षशिला, नालंदा, विक्रमशिला और वल्लभी जैसे प्राचीन भारत के विश्व स्तरीय संस्थानों के अध्ययन के विविध क्षेत्रों में शिक्षण और शोध के उच्च प्रतिमान स्थापित किये थे और विभिन्न पृष्ठभूमि और देशों से आने वाले विद्यार्थियों और विद्वानों को लाभांवित किया था। इसी शिक्षा व्यवस्था ने चरक, सुश्रुत, आर्यभट्ट, वराहमिहिर, भास्कराचार्य, ब्रह्मगुप्त, चाणक्य, चक्रपाणि दत्ता, माधव, पाणिनि, पतंजलि, नागार्जुन, गौतम, पिंगला, शंकरदेव, मैत्रेयी, गार्गी और थिरुवल्लुवर जैसे अनेक महान विद्वानों को जन्म दिया। इन विद्वानों ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान के विविध क्षेत्रों, जैसे गणित, खगोल विज्ञान, धातु विज्ञान, चिकित्सा विज्ञान और शल्य चिकित्सा, सिविल इंजीनियरिंग, भवन निर्माण, नौकायान- निर्माण और दिशा - ज्ञान, योग, ललित कला, शतरंज इत्यादि में प्रामाणिक रूप से मौलिक योगदान किये। भारतीय संस्कृति और दर्शन का विश्व में बड़ा प्रभाव रहा है।'

जितनी बातें मैंने की हैं इस प्रियंबल का इतना हिस्सा पढ़ लें तो हमें समझ में आ जाता है कि ये प्रियंबल कहाँ से शुरू होता है और हमारी विश्व दृष्टि, हमारी न्याय दृष्टि, हमारी ज्ञान दृष्टि क्या है? एक समय में अंग्रेजों के प्रभाव में रहा हो या उसके बाद के जो प्रभाव रहे हैं। हमने ये गर्व करना ही छोड़ दिया कि वाकयी में हम एक महान राष्ट्र थे और हैं और हममें महान राष्ट्र की संभावना बनी हुई है और रोजगारों की तरफ मतलब अब खैर कई लोग वापसी भी डाल रहे हैं लेकिन अमेरिका की तरफ, ऑस्ट्रेलिया की तरफ, अन्य देशों की तरफ राष्ट्रीय शिक्षा नीति में एक सुझाव दिया गया है वो ये है शोध को आप स्थानीय चीजों से जोड़िये, इतने सारे शोध करते है इतनी सारी पीएचडी की जाती है, हजारों पीएचडी हमारे यहाँ होती है। इनमें से किसी ने पीएचडी के माध्यम से हमारे देश में कोई स्थानीय प्रयोग किया गया या उसमें स्थानीय समस्या को, हमारे बगल में नदी प्रदूषित है इसके बारे में कुछ करोगे क्या? हमारे यहाँ कृषि में तमाम दिक्कतें होती हैं इसके बारे में कुछ करोगे क्या ? एक सरल सी बात है कि यदि आप ग्रेन के बदले सब्जियों में जाये तो ज्यादा लाभ होगा ये किसानों को बताओगे क्या ? तो एक अजीब किस्म के माहौल में हमें डाल दिया गया है। जिसमें की हमारी

पढ़ाई, हमारे आधार से विच्छिन्न, हमारी पढ़ाई दूसरी भाषा में। हमारी पढ़ाई पश्चिमी दृष्टि के साथ में। इस सारे को टेकल करना बहुत ही कठिन काम था और नई शिक्षा नीति ने ये काम किया है। इसमें ऐसा नहीं है कि दर्शन और धर्म की बात करती है या हमारे पारंपरिक विज्ञान की बात ही करती है। ये पूरी तरह सचेत है कि आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस या मशीन लर्निंग और फ्यूचर स्किल्स के बारे में क्या किया जाए। ज्ञान के परिदृश्य में पूरा विश्व तेजी से परिवर्तन के दौर से गुजर रहा है। बिग डाटा, में मशीन लर्निंग और आर्टिफिशियल इंटेलीजेंस जैसे क्षेत्रों में हो रहे बहुत ही वैज्ञानिक और तकनीकी क्षेत्र केविकास के चलते एक ओर तो विश्वभर में कुशल कामगारों की जगह मशीनें ले लेंगी और दूसरी ओर डाटा साइंस, कम्प्यूटर साइंस, गणित के क्षेत्रों में कुशल कामगारों की जरूरत पड़ेगी। जो विज्ञान, समाज विज्ञान और मानवीकी के विविध विषयों में योग्यता रखते हैं। जलवायु परिवर्तन, बढ़ते प्रदूषण और घटते प्राकृतिक संसाधनों की वजह से हमें ऊर्जा, भोजन, पानी, स्वच्छता आदि आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए नये रास्ते खोजने होंगे। इस कारण से भी जीव विज्ञान, रसायन विज्ञान और भौतिक विज्ञान, कृषि जलवायु विज्ञान और समाज विज्ञान के क्षेत्र में नये कुशल कामगारों की जरूरत पड़ेगी। मैंने शुरू में संतुलन की जो बात कही थी सिर्फ विज्ञान से काम नहीं चलेगा, आपके दिमाग में ह्यूमन टच भी होना चाहिए। इस समय कला ह्यूमिनिटिस पर काफी जोर है। अभी जब मैं डॉ. पाण्डेय से बात कर रहा था तो उन्होंने कहा कि वो विक्रम विश्वविद्यालय में कला और ह्यूमनिटिस विभाग का और बड़ा विस्तार करना चाहते हैं। ये बहुत ही स्वागत योग्य बात है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति कह रही है कि ये वैज्ञानिक है कला और ह्यूमिनिटिस भी सीखे। जो ह्यूमिनिटिस सीखता है वह थोड़ा-थोड़ा विज्ञान भी सीखे और दोनों मिलकर एक कौशल भी हासिल करें। इस तरह का एक पर्सपेक्टिव इसमें बनाया गया है।

अंत में जो क्रियान्वयन के जो बिन्दु हैं। ये सारा सैद्धांतिक परिपेक्ष्य है। इसमें कुछ मोटे जो क्रियान्वयन के बिन्दु निकलते हैं वो बताउंगा और हमारा विश्वविद्यालय क्या कर रहा है ये बताउंगा। पहला काम तो क्रियान्वयन में किया गया कि विद्यार्थियों को विषयों और कालखंडों से मुक्त करने की बात की गई है। आप देखिए कि ये रिजिट फ्रेमवर्क है, एक टाइम टेबल होता हैं, एक घंटी बजती है, आप इतना पढ़ते हैं, आप उतना पढ़ते हैं, एक विषय पढ़ते हैं। तो विद्याथियों को कालखंडों से और पीरियड से मुक्त करने की बात कही गयी है। एक बहुविषयक करिकुलम डिजाइन किया गया है जैसे कि अगर आप फिजिक्स, केमिस्ट्री, मैथ्स पढ़ते थे साइंस में तो आप दो कोर सब्जेक्ट्स लेंगे। तीसरा आपका मन है आप चाहे तो इकोनोमिक्स ले सकते हैं। आप फिजिक्स, केमिस्ट्री के साथ-साथ ह्युमिनिटिस का कोई सब्जेक्ट ले सकते है। हो सकता है कि आप ड्रामा में जाना चाहते हैं तीसरा विषय आप ड्रामा का ले सकते हैं।

तो ये कहा गया है कि आप विषयों की जकड़न से मुक्त हों और अंडर ग्रेजुएट प्रोग्राम को इस तरह से चेंज करिये। फिर उसके साथ में तीन चार चीजें और कही गयी है। जैसे स्किल एनालिसिसमेंट का प्रोग्राम भी। जिसमें स्किल एनालिसिसमेंट करना है फिर इंटर्नशिप की बात भी कही गयी है आज बच्चे कॉलेज में पढ़ते रहते है उन्हें किसी इंडस्ट्री में, कृषि फॉर्म में जाकर देखों या कहीं और जाकर देखों। कम्युनिटी इंगेजमेंट और इंटर्नशिप भी बहुत महत्वपूर्ण चीज बनायी गई है और एबिलिटी एनालिसिसमेंट जैसे उद्यमी बनना है तो उद्यमिता के कोर्स भी इसमें शामिल कराये गये हैं ये सब कठिन लगता है। लेकिन इसमें पर्सपेक्टिव पूरा बदल गया है। इसे विशेषकर प्राध्यापकों को समझने की जरूरत है। दूसरी बात है कला और मानवीकी पर जोर।

डेकार्टे नाम के फ्रेंच वैज्ञानिक थे हमारा पूरा विज्ञान उसी पर खड़ा हुआ है। डेकार्ट ने कहा वो सारा ज्ञान बेकार है जो फिजिक्स और मैथ्स की तरह एक्यूरेट ना हो, सोचिए, अब मेरी आँखों को दिख रहा है कि ये पेड़ है इस पेड़ में जीवन है जब इसे काटता हूँ तो मर जाता है। ये फिजिक्स की तरह एक्यूरेट नहीं है ये तो विवरण है। या ऐसी बहुत सारी चीजें हैं जो विवरणात्मक है। मैं देख रहा हूँ कि 100 लोग यहाँ बैठे हुए हैं हो सकता है कि वे 99 हों। फर्क नहीं पड़ता कि 99 हैं या 100 हैं, लेकिन महत्वपूर्ण ये है कि वो मेरी बात सुन रहे हैं।

तो डेकार्टे ये कहने लगे और बाद में हमारा यही सिद्धांत भी बना 15,16 सेंचुरी में कि जितना फिजिक्स एक्यूरेट होता है जितना मैथ्स होता है, उतना ही ज्ञान है बाकि ज्ञान नहीं है। इसने पूरी कलाओं को, ह्युमिनिटिस को पीछे ढकेल दिया है। मानवीय संवेदनाएँ तो कलात्मक होती है। ऐसा तो कभी नहीं होता कि एक किलो प्यार करता हूँ और दो किलो करूणा रखता हूँ। मैं संवेदनात्मक तरीके से मनुष्य हूँ जो इसको रखता हूँ। संवेदनात्मक ज्ञान को जो पीछे धकेलना था इसने पूरी पश्चिमी सोसायटी को

बहुत ही रूखा, बहुत ही क्रूर और बहुत ही कठोर बना दिया है। हमारी सोसायटी कभी ऐसी थी ही नहीं। हमारे समाज के गुण में प्रेम, समरसता, आपसी भाईचारा होता है। गाँव में लड़की की शादी होती थी सारे लोग पैसा इकट्ठा करके देते थे, शादी हो जाती थी। हमारे गाँव में तो अभी भी गाँव की लड़की को बहन माना जाता है। भारतीय समाज पश्चिमी समाज से अलग था और आज भी है। इसकी शिक्षा व्यवस्था वहाँ से अलग थी, आज भी होनी चाहिए। तब डेकार्टे का विज्ञान यदि ले आएंगे और एक्यूरेसी और विवरणात्मक विज्ञान को बाहर कर देंगे। जो दृश्य मेरी आँखों को दिखता है उसको कहेंगे बेकार है। तो मेरी शिक्षा पूरी गड़बड़ हो गई ना। ये कलात्मक संवेदना ही इस चीज को वापस लौटा सकती है। इसलिए माना गया है कि इंजीनियरिंग और विज्ञान के छात्र भी कला का एक विषय जरूर ले। कविता पढ़ें, साहित्य पढ़ें और देखें उसको मनुष्य के भीतर। आप दर्शन का भी एक विषय ले सकते हैं। तीसरी बात है कौशल विकास पर जोर दिया गया है। यानी कि आप कुछ भी सीखें लेकिन एक कौशल जरूर सीखना है। आप कॉमर्स पढ़ रहे हैं तो टेली सीखिए। आप मैनेजमेंट पढ़ रहे है तो कम्युनिकेशन स्किल सीखिए। आप मास कम्युनिकेशन पढ़ रहे हैं तो आप फिल्म बनाना सीखें। इस तरह कोई ना कोई स्किल आपके पास होना चाहिए। जब आप बाहर निकलें तो आपको नौकरी मिले। फिर ये भी है कि आप एक बार घुस गए तो फिर पूरा बी. ए. करके ही बाहर निकलोगे। अब कहा गया है मिडिल पाइंट एंटी और मिडिल पाइंट एक्जिट। एक साल पढ़ लो नौकरी कर लो, घुम-फिर कर आ जाओ, दूसरे साल पढ़ लेना। फिर घुम-फिर कर आना फिर तीसरे साल कर लेना। ये हमारे समाज के लिए बहुत ही आवश्यक था। इसमें डिप्लोमा मिलेगा फर्स्ट ईयर के बाद में। एडवांस डिप्लोमा मिलेगा दूसरे साल के बाद में। डिग्री मिलेगी तीसरे साल के बाद में। मिडिल पाइंट एंट्री और मिडिल पाइंट एक्जिट की जो बात है। सबसे पहले मैंने जो मुक्ति और खुलने की बात कही थी इसके व्यवहारिक पक्ष इस प्रकार है। यह कहा गया है कि भारतीय ज्ञान परपंरा पर केंद्र स्थापित करो। भारतीय ज्ञान परपंरा को देखना शुरू करो। तो हमने भारतीय ज्ञान परपंरा पर केंद्र बनाया है उसमें पुस्तकालय है, उसमें विचार-विमर्श होता है, उसमें बहुत सारे अनुवाद होते हैं, उसके भीतर अनुवाद केंद्र। तमिल मेरा दुश्मन थोड़ी है या मलयालम मेरी दुश्मन थोड़ी है। मैं अनुवाद करके उनका साहित्य पढ़ूँ, देखूँ, आगे चलूँ। ना बोलियाँ मेरी दुश्मन हैं, कोई मालवी हिन्दी की दुश्मन है क्या। तो बुंदेलखंडी हिन्दी की दुश्मन है क्या, छत्तीसगढ़ी हिन्दी की दुश्मन है क्या। ये वो बोलियाँ थी जहाँ से हम जमीन रस प्राप्त करते थे। और हमारी भाषा उससे समृद्ध होती थी। हमने इस जमीन को छोड़ दिया। अब बोलियों से हम कोई शब्द लेते ही नहीं। हमारी अम्मा घर अवधि और बृज का मिक्चर ऐसा कुछ बोलती थी। वो इतनी रसीली महिला थी। उनकी पूरी बातचीत में रस आता था। उनके पास बैठकर कहानियाँ सुनी जाती थीं। तो ये जो जमीनी रस है ये बोलियों के माध्यम से आपकी भाषा में आता था। इस प्रवाह को दोबारा खोलना है। इसमें अभी बाँध बंध गया है। हिन्दी वालों के इसमें जाएंगे मतलब यदि आपने मुहावरों का प्रयोग कर लिया तो आपको गवार आदमी माना जाता है। आपने बोलियों के शब्दों का प्रयोग कर लिया तो आपको गवार आदमी मानते हैं। आपको उच्च साहित्यिक नहीं मानते। उच्च साहित्यिक वो है जो दिल्ली जैसी भाषा बोलता है। तो टूटी-फूटी विकृतिपूर्ण मुम्बइया हिन्दी बोलता है। मित्रों जितना प्रयास हमको अंग्रेजी सीखने में करना पड़ता है उतना ही प्रयास हमें हिन्दी सीखने में करना पड़ेगा। ऐसी क्या बात है। तो ये भाषा के पूरे विमर्श को बदलती है। इसी तरह अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं को सीखने पर जोर देती है। हमारी लड़ाई जैसा मैंने कहा शायद हमारी लड़ाई स्पेनिश से है क्योंकि हमको दक्षिण अमेरिका में बिजनेस करना है तो हमें स्पेनिश सीखनी पड़ेगी। जापान में इस समय लगभग एक लाख इंजीनियर्स की डिमांड है। जो कि जापानी जानते हों। तो विदेशी भाषाओं के प्रति ऐसा विरोध नहीं है। विदेशी भाषाएँ सीखने पर जोर है। पर आपने यहाँ पर अपनी भाषा में ज्ञान प्राप्त करने पर भी जोर दिया गया है। जैसे मैंने कहा कि शोध में स्थानीयता पर बहुत बल है यानी आपकी किस तरह की पीएचडी है कि आप अपने बगल की समस्या नहीं सुलझा सकते। या आपके मन में ये बात नहीं आती क्या। हाँ उच्चतर फ्रंटियर एरिया है जरूर जैसे क्वांटम है कोई और है कोई और है। लेकिन सामान्य जो पीएचडी निकल रही है उनमें स्थानीयता को जोड़ना। नई शिक्षा नीति बहुत जोर देती है। फिर 2030 तक सभी महाविद्यालयों को स्वतंत्र करने की बात है जो अपने आप में डिग्रियाँ दे पायेंगे।

उद्यमिता, स्टार्टअप, इंक्यूबेशन, एंटरप्रेन्योरशिप ये सारे कोर्सेस सब जगह शुरू किए गए हैं और हमारे यहां स्टार्टअप और इंक्यूबेशन पर बहुत जोर है। अपना जो भारत अब है। वो विश्व का तीसरा सबसे बड़ा स्टार्टअप ईको सिस्टम है। नये बच्चे इतने सारे स्टार्टअप में कूद गए है मैं खुद देखकर चकित हो जाता हूँ। नये बच्चे टेक्नोलॉजी को सीख इतने सारे नये काम कर रहे हैं। तीन-चार

साल में वो 300-400 करोड़ की कंपनी बन जाती हैं। ये कैसे संभव हुआ। भारत सरकार ने और नई शिक्षा नीति ने ये तय किया स्टार्टप, इंक्युबेशन को बल देंगे। उन्हें ट्रेंड करेंगे, उनकी मेटरिंग करेंगे, उनको सिखाएंगे, उनको बताएंगे कंपनी कैसे बनती है, नये विचार कैसे कन्वर्ट होते हैं, फॉयनेंस कैसे होता है, वेंचर कैपिटल क्या चीज होती है, इन चीजों को बताया जाएगा। और एक बात कही गई है कि लोककला और संस्कृति केन्द्र भी विश्वविद्यालय में बनाये जाए। जिससे कि हम जो जमीनी रस की जो बात हो रही थी, लोककलाओं की बात हो रही थी। मैं एक बार एक बड़े फिल्मकार के साथ था जो हमारे विश्वविद्यालय में आये थे। उन्होंने कहा- आप आधुनिक फिल्म इंस्टीट्यूट मत बनाओ, आप एक लोक कला केन्द्र बनाओ, क्योंकि फिल्म इतनी प्रिय हो चुकी है कि उसे बहुत सी लोककलाओं से सीखने की जरूरत है। आप निमाड़ी लोककला केंद्र बनाओ, आप छत्तीसगढ़ी लोककला केंद्र बनाओ, बुंदेलखंडी में किस कदर रस है! क्या भाषा है बुंदेलखंडी की या कहा जाए क्या बोली है। नई शिक्षा नीति कहती है कि प्रत्येक विश्वविद्यालय को भारतीय ज्ञान परपंरा केंद्र भी बनाना है और लोककला संस्कृति केंद्र भी बनाना है। ये बहुत ही खुशी की बात है कि इस तरह का पीठ यहाँ बन रहा है।

रवीन्द्रनाथ टैगोर विवि और सीवी रमन विवि ये कैसे नई शिक्षा नीति को देखते हैं और इन्होंने क्या-क्या किया है। और कैसा काम हम विक्रम विश्वविद्यालय में कर सकते है। इसके बारे में बताकर मैं अपनी बात समाप्त करूंगा। पहली बात तो देखिए कि ये दोनों विवि महानुभावों के नाम पर है वो भारत की बड़ी हस्तियाँ हैं। भारत के पहले नोबल पुरस्कार विजेता हैं, पहले साइंटिस्ट थे और एक कलाकार थे। पहले की हमारी दृष्टि में ये संतुलन देखने को मिलता है कि हम विज्ञान पर भी बात करेंगे, हम कला पर भी बात करेंगे। सीवी रमन विवि और टैगोर विवि इस विजन को रखकर सामने चलते हैं।

हाल ही में हमने राष्ट्रीय शिक्षा नीति आने के बाद में भोपाल में रवीन्द्रनाथ टैगोर विवि है उसने एक तो सबसे पहले अटल इंक्यूबेशन सेंटर की स्थापना की है। इंक्यूबेशन सेंटर लगातार बच्चों की उद्यमिता के लिए प्रशिक्षण कर रहा है। उनको स्टार्टअप बनने में मदद करता है। 56 ऐसे स्टार्टअप हमने पिछले दो-तीन सालों में बना लिये है। जो नये उद्यमियों के स्टार्टअप है। उनमें से एक ने इलेक्ट्रिक बाइक बनायी है जो अब मैन्यूफैक्चरिंग में जा रही है। उनमें से एक ने साइबर सिक्योरिटी पर एक प्रोग्राम डेवलप किया गया है। जिसे ब्राजील की कंपनी ने खरीद लिया है और वो अब 2000 करोड़ की कंपनी बन गयी है। तो ये इंक्युबेशन, स्टार्टअप, उद्यमिता ये एक बड़ा काम हमारा विश्वविद्यालय कर रहा है।

दूसरा प्रधानमंत्री कौशल केंद्र हमारे यहाँ स्थापित हुआ है जो विभिन्न किस्म की स्किल्स पर काम करता है। 51 ऐसे कौशल हमने छांटे है जो अलग-अलग विषयों के लिए उचित हो सकते हैं। इंजीनियरिंग के लिए भी है, मैनेजमेंट के लिए भी है, कॉमर्स के लिए भी है, आर्ट्स के लिए भी है। मैं मध्यप्रदेश सरकार को बधाई देता हूँ कि उन्होंने नई शिक्षा नीति को अपनाया है। हमने रायसेन जिले के 11 महाविद्यालयों को अपने यहाँ बुलाया। क्योंकि एक लड़की कॉलेज की थी उन्होंने कहा कि मैं बुलाती हूँ इन लोगों को नई शिक्षा नीति समझ में नहीं आ रही है और कैसे इम्प्लीमेंट होगा ये भी समझ नहीं आ रहा है। ये 11 महाविद्यालयों ने हमारे विश्वविद्यलय के साथ एमओयू किया जबकि हम प्राइवेट हैं और वो सरकारी हैं। अब प्रत्येक महाविद्यालय में एक उद्यमिता का कॉर्डिनेटर बनाया गया है। एक कौशल विकास का कॉर्डिनेटर बनाया गया है और हमारा विश्वविद्यालय कंटेंट और ट्रेनिंग उन्हें प्रदान कर रहा है। जब ये सफल हुआ तो हमने फिर खंडवा को बोला। तो खंडवा ने बुरहानपुर, खंडवा और हरदा इन तीन जिलों के 12 महाविद्यालयों के साथ एमओयू किया है। मंत्रीजी कह रहे थे कि यदि ऐसा ये मॉडल बना है तो बहुत ही अच्छा मॉडल है। इसको पूरे प्रदेश में फैलाया जा सकता है। तो उद्यमिता और स्टार्टप, इंक्युबेशन, कौशल नये काम हैं। इसके लिए आपको बहुत सारे एमओयूस की आवश्यकता पड़ेगी। इस विवि को भी पड़ेगी और हमें भी पड़ेगी और हमारे पास 500 ऐसी इंडस्ट्रीज है जिनके साथ हमने इंटर्नशिप का टायअप किया है।

तीसरा हमने दीनदयाल उपाध्याय कौशल केंद्र बनाया है। ये सरकार द्वारा फंडेड केंद्र है। इसमें हमारा जो केचमेंट एरिया है मतलब उज्जैन के आसपास के गाँवों के बच्चों को हम विश्वविद्यालय में लाते हैं। नि:शुल्क पढ़ाई दी जाती है। आप उन लड़कियों को आकर देखिए 100 लड़कियाँ हमारे यहाँ पढ़ रही हैं इस समय। वो नॉर्मल बड़े वाले कोर्सेस नहीं करती हैं। वो छोटे स्किल के कोर्सेस करती है। विश्वरंग में वो सब श्रोता भी थी। इतनी खुश दिखती है। उनके चेहरे पर चमक आ गयी है। उन्हें एक स्किल हाथ में

मिली है। उनको अभी चेन्नई से एक जॉब ऑफर आया है। उनको इस तरह से प्लेसमेंट के ऑफर्स भी आ रहे हैं। मुझे ऐसा लगता है कि हमारे कैचमेंट एरिया के लिए इमिजेट रोजगार सृजन का काम करना चाहिए। वो भी एक बड़ा तरीका है।

फिर मित्रों हमने एक सेंटर ऑफ एक्सीलेंस तैयार किया है। ये है ग्रासरूट लेवल का काम लेकिन आपको कुछ बड़ा भी तो करना पड़ेगा। तो भविष्य के काम है दो। पानी और ऊर्जा। आईटी हमारे देश में बड़े पैमाने पर हो रहा है। उस वेव से हम निकल चुके बाहर। अब जो वेव है वो ऊर्जा की वेव है। अब जो लहर है वो पानी की लहर है। हमको ऊर्जा और पानी के सेंटर्स बनाने हैं जो कि आपको आगे ले जाएंगे। फिर पर्यावरण भी एक बड़ा इशू है। एक अनुवाद केंद्र हमने बनाया है जो कि अभी फिलहाल तो हिन्दी की प्रसिद्ध 51 कहानीकारों को देश के अन्य दस भाषाओं में अनुवाद करवा रहे हैं। वैसे ही हम अन्य लोगों से भी कर सकते है। एक दिलचस्प ग्रुप बना है जो हमारे विवि में अलग-अलग भाषा के पढ़ने वाले लोग होते हैं दो मलयाली, चार तमिल, तीन उर्दू वाले सबको पकड़ कर एक ग्रुप बनाया है। वो आपस में बातचीत करते है। सामान्य रूप से उनकी भाषाओं के गीत गाते हैं। गीत गाने से बहुत जल्दी दोस्ती होती है। ये भाषाई विमर्श अपने विश्वविद्यालय के भीतर शुरू करना चाहिए। अनुवाद भी अपने विश्वविद्यालय के भीतर शुरू करना चाहिए।

फिर एक टैगोर इंटरनेशनल सेंटर बनाया है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति कहती है कि आपको अंतर्राष्ट्रीय होना है। हमारे यहाँ करीब-करीब 50 बच्चे अफ्रीकन कंट्रीज से और ईस्ट एशियन कंट्रीज से आते हैं। लेकिन हमने अब ये टैगोर अंतर्राष्ट्रीय केंद्र बनाया जो तीस देशों में जहाँ हिन्दी पढ़ाई जाती है उन विश्वविद्यालयों से बात कर रहा है। आपको जानकर आश्चर्य होगा कि पूरे विश्व में 116 ऐसे विश्वविद्यालय हैं जहाँ पर हिन्दी पढ़ाई जाती है। हिन्दी की डिमांड है। और हम यहाँ मतभेद लेफ्ट-राइट ये वो करते रहते हैं। विश्वरंग का लक्ष्य है कि मतभेद भुलाओ-अपनी भाषा को सामने लाओ और हिन्दी भाषा की तरह सारे पूरे विश्व में काम करना शुरू करो। 30 देशों में इस बार विश्वरंग हुआ है टेक्नालॉजिकल भी हुआ है, वर्चुअल भी होता है। फिजिकल भी होता है। संस्कृत की इतनी डिमांड है तो हमने संस्कृत इंस्टीट्यूट अपने विश्वविद्यालय में बनाया है। आप सोच नहीं सकते कि नाट्यशास्त्र में बच्चे डिप्लोमा करने आएंगे, लेकिन नाट्यशास्त्र डिप्लोमा में हमारे यहाँ 30 बच्चे ऑनलाइन पढ़ाई कर रहे हैं। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी जो कि संस्कृत विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर थे, पहले वो क्लासेस लेते है। हमने ऐसी टीम बनाई है जो ऑनलाइन काम करती है। बहुत सारे डिप्लोमा सर्टिफिकेट प्रोग्राम ऐसे संस्कृत प्रोग्राम्स की अच्छी-खासी डिमांड है। ऐसे ही अनुवाद को लेकर मैं इंदिरा गाधी नेशलन सेन्टर में गया था। हमारे मित्र डॉ. सच्चिदानंद जोशी बोले कि ये पाली और प्राकृत की इतनी सारी पांडुलिपियाँ और मेनस्क्रिप्ट हैं। इनके अनुवाद होने हैं। हमको पाली, प्राकृत, संस्कृत, प्राच्य भाषा को लेकर भी काम करने की जरूरत है। नई शिक्षा नीति ऐसा कहती है कि आप ऐसे केंद्र बनाइए। उनके कहने से पहले ही हमने काम शुरू किया है। हाल ही में हमने एक राष्ट्रीय नाट्य विश्वविद्यालय बनाया है। अब दिल्ली में एक राष्ट्रीय नाट्य विश्वविद्यालय है। पूरे देश के बच्चे बेचारे में बहुत कॉम्पीटिशन करते हैं और कम ही बच्चे पहुँचते हैं। टैगोर नाट्य विश्वविद्यालय टैगोर विश्वविद्यालय में बनाया है जिसमें 1000 एप्लीकेशन आयी थी उनमें से 20-30 बच्चों को चुनकर एक रेपरटरी बनायी है और अब पढ़ाई करा रहे हैं। पूरे देश में एक नई तरह की वेव है जो विश्वविद्यालय इस बात को समझ लेगा मतलब इन्टरमोनोशेव की वेव है। उद्यमिता की वेव है। स्टार्टअप की वेव है। कला-ह्यूमन फिल्म आदि इसकी डिमांड है। फिर एक फ्यूचर स्किल एकेडमी भी बनाई है। ऐसा नहीं है कि छोटा-मोटा करना है। उसमें एआई, एमएल और उसमें भविष्य की स्किल भी सिखायी जाती है। एकदम एडवांस कम्प्यूटर लेब है। एकदम एडवांस फैकल्टी है। उसका लिंकेज बैंगलुरू और हैदराबाद से किया में गया है और उसको भी सिखाया जा रहा है। हर चीज में मुझे नई बात कहने की जरूरत पड़ती है। इतने लोग कहानी लिख रहे है इस समय हमारे देश में, लेकिन क्या वह हमारी कथा परम्परा से परिचित हैं? इतने लोग कविता लिख रहे है पर क्या वह जानते हैं कि निराला जो है वह नवगीत के आदमी हैं और वह कविता के भी आदमी हैं। क्या वह जानते हैं कि भारतेन्दु गजलें भी लिखा करते थे। क्या वह जानते हैं महादेवी वर्मा फॉग फार्मेट में कविताएँ भी लिखती थीं। अपनी खुद की भौतिक ज्ञात जैसी चीजों के बारे में दोबारा खोज करने की जरूरत है। तो हमारे विश्वविद्यालय ने कथा मध्यप्रदेश करके एक आठ खंडों में छह खंडों में संग्रह किया। जिसमें मध्यप्रदेश में 200 वर्षों में जो कथाकार हुए हैं। उन पर आलोचना भी, उन पर समझ भी, उनकी कहानियाँ भी, उनके उदाहरण भी, वो इतना लोकप्रिय हो गया कि लोगों ने कहा कि कथादेश करिये आप, तो हमने कथादेश किया।

18 खंडों में कथादेश भी किया। जिसमें करीब-करीब 620 कथाकार पूरे देश के हैं। पंजाब में हिन्दी लिखने वाले लोग, केरल में हिन्दी में लिखने वाले लोग, नॉर्थ-ईस्ट में हिन्दी में लिखने वाले लोग, इन सब को लेकर 18 खंडों में यह भी काम किया गया। लोकप्रिय विज्ञान की किताबें, हिन्दी में नहीं हो सकता, क्यों हो सकता ? आप लिखो तो 50 ऐसी लोकप्रिय विज्ञान की किताबें हैं जो कि हिन्दी में लिखी गई हैं। उसमें मॉर्डन साइंस भी है उसमें मॉर्डन टेक्नालॉजी भी है। कम्युनिकेशन भी है प्रयास करते हैं फिर वर्कशाप करते हैं एडिट करते हैं वो किताबें निकाली गई हैं। कम्प्यूटर पर पहले से ही हिन्दी में हमारा बहुत बड़ा काम था, वो किताबें 50 की संख्या पर पहुँच रही हैं और लाखों की संख्या में बिकती हैं। मतलब हमें अपनी जगह से हिलने की जरूरत है और नई शिक्षा नीति वो जगह देती है जहाँ पर हम यह काम कर सकें। अंत में कार्यक्रम डिजाइन भी किया गया जिसमें 51 स्किल को भी आगे बढ़ाया गया है।

तो मित्रों, ये अपने भारतीय ज्ञान परम्परा और राष्ट्रीय शिक्षा नीति के वक्तव्य पर अंत में मैं आ पहुँचा हूँ। मैंने तीन हिस्सों पर आपसे बात की एक राष्ट्रीय शिक्षा नीति के पहले जो हमारी भारतीय ज्ञान परम्परा है उसके प्रमुख गुण क्या हैं? या जो मेरे हिसाब से मैंने 6 या 7 गुण बताये वो मुझको लगता है कि वो डाइव करते है। फिर राष्ट्रीय शिक्षा नीति के गुण क्या हैं? और अंत में उसका क्रियान्वयन कैसे किया जा सकता है। तमाम डिबेट के बीच में मेरा यह विश्वास है कि राष्ट्रीय शिक्षा नीति समय पर आयी है, जहाँ पर हम एक संतुलित मनुष्य के निर्माण की तरफ आगे बढ़ रहे हैं। एक सशक्त राष्ट्र के निर्माण की तरफ आगे बढ़ रहे है और हम अपनी परम्पराओं का सम्मान करते हुए आगे काम करना चाहते हैं। मुझे लगता है कि यह बहुत सही समय पर आयी है और इसके आधार पर वास्तव में एक सशक्त राष्ट्र का अधिक संतुलित मनुष्य का, छात्र का, एक विकसित राष्ट्र का निर्माण किया जा सकता है।

(विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन में भारत विक्रम व्याख्यानमाला अंतर्गत 18 दिसंबर 2021 को रवीन्द्रनाथ टैगौर विश्वविद्यालय, भोपाल के कुलाधिपति डॉ. संतोष चौबे का व्याख्यान)

भारत में प्रचलित संवतों में विक्रम संवत्

डॉ. हरीश निगम

भारतवर्ष में संवतों की विशाल संख्या रही है। इन संवतों ने धार्मिक उत्सवों व अनुष्ठानों के निर्धारण, अभिलेखों के अंकन, साहित्य लेखन व इतिहास लेखन आदि अनेक प्रकार के उद्देश्यों को पूरा किया है।

संवत् का आधार गणना-पद्धति होती है। गणना पद्धति का विकास शनै: शनै: होता है तथा विश्व के अलग-अलग स्थानों पर थोड़े-थोड़े अंतर वाली गणना पद्धतियों का विकास प्रागैतिहासिक युग से ही आरंभ हो गया था और अब तक इन पद्धतियों में निरंतर सुधार किये जाते हैं। एक देश की पद्धति का दूसरे देश की पद्धति के साथ आदान-प्रदान भी हुआ है।

भारतीय काल गणना पद्धति के अध्ययन से यह पता चलता है कि भारत में वैदिक काल से ही समय-मापन की पद्धति का वैज्ञानिक स्वरूप निर्धारित हो चुका था व इस पद्धति के आधार पर बहुत से संवतों की स्थापना समय मापने के लिए कर ली गई थी। बाद में विदेशों में भी इस संदर्भ में बहुत से तत्वों का आदान-प्रदान हुआ। भारतीय गणना-पद्धति के इतिहास को चार प्रमुख स्तरों में अध्ययन किया जाता है - वेदांग ज्योतिष का समय, वेदांग ज्योतिष से सिद्धांत ज्योतिष तक का समय, आरंभिक सैद्धांतिक युग तथा अंतिम सैद्धांतिक युग। इसके साथ ही गणना के लिए नक्षत्रों का अलग-अलग महत्व प्रदान करते हुए उनके नाम पर कुछ समय चक्रों का निर्धारण किया गया। इसमें सप्तर्षि चक्र, वृहस्पति चक्र, परशुराम चक्र व ग्रह परिवर्णी चक्र प्रमुख हैं। धीरे-धीरे ये चक्र भी अनेक संवतों का आधार बने।

यद्यपि धर्म-चरित्रों व ऐतिहासिक घटनाओं से आरंभ होने वाले संवत् अपनी आरंभिक तिथि, आरंभकर्ता व उपयोगिता में एक-दूसरे से बहुत भिन्न थे, फिर भी गणना पद्धति विद्यमान रही। भारत में अनेक स्थानों पर विभिन्न संवतों के संदर्भ में ये आज भी

प्रयुक्त हो रही हैं जिस कारण गणना की बहुत सी इकाईयों व तत्व लगभग सभी संवतों में एक जैसी ही प्रयुक्त हुए।

अभी तक ज्ञात भारतीय या भारत में प्रचलित संवतों को दो प्रमुख भागों में विकसित किया जा सकता है :

1. धर्म- प्रधान तथा

2. इतिहास - प्रधान.

इनसे संबंधित संवत् इस प्रकार हैं-

धर्म - प्रधान संवत् - सृष्टि, कालयवन, कृष्ण, युधिष्ठिर, कलि, लौकिक, बुद्ध - निर्वाण, निर्वाण, ईस्वी, हिजरी, वहाई, दयानंद आदि; तथा

इतिहास प्रधान- मौर्य, सैल्यूसिडियन, पार्थियन, विक्रम, शक, कलचुरि - चेदि, कुषाण, गुप्त, अमली, विलायती, फसली, बंगाली, श्रीहर्ष, भट्टिखश, मागी, गंगा, बर्मी (कोमन), भौमाकर, कोल्लम, नेवार (नेपाल), चालुक्य, सेन, शिवसिंह, शाहूर, इलाही, जुलुसी, राज्याभिषेक व अन्य।

विक्रम संवत् इतिहास की एक जटिल समस्या रही। उचित होगा हम तत्कालीन 'कुषाण-संवत्, कृत-संवत्, मालव संवत् व विक्रम संवत्' के बारे में कुछ जान लें।

1. कुषाण राजाओं में सर्वप्रथम कपस का पुत्र कुजुल ने हेरमाय नामक ग्रीक महाराजा को पराभूत किया। उस समय से वह अपने को 'वाङ्' (सार्वभौम राजा, सम्राट) कहलाने लगा। 70 वर्ष की उम्र में उसने अपना राज्यसंवत्सर प्रवर्तित किया। वह 50 से अधिक वर्ष तक चलता रहा। उसके पुत्र, पौत्र, प्रपौत्र, आदि कुषाण शाहियों तथा उनके क्षत्रपों ने भी उसे अपनाया। कनिष्कादि कुषाणों के समय 200 वर्ष पूरे होने पर प्राय: शतक का अंक भारत में ब्राह्मीलिपि के क्षेत्र में टाला जाने लगा। फिर भी ऐसे तीन उल्लेख उपलब्ध हैं जिनमें वह शतक का अंक लिखा गया है। इससे इस मामले में अब कोई संदेह नहीं रहता।

2. मालव-मौखरी प्रदेश में वह अंक नहीं मिटाया जाता था। फलस्वरूप यहाँ के 280 तथा अन्य ब्राह्मी के प्रदेशों में उसे संवत् 80 के स्पष्ट रूप से अपनाया गया था।

मालव के राजस्थान स्थित विभिन्न गणराज्य कृत संवत् को अपने अभिलेखों में उत्कीर्ण करते रहे। चौथी सदी में मालवों की दशपुर केन्द्रित औलिकर शाखा ने कृत संवत् को मालव संवत् में परिवर्तित कर दिया। राजपुताने के मालवों ने भारी संख्या में मुद्राएँ निर्गमित की। इन सिक्कों एवं कृत संवत् अभिलेखों पर सम्प्रति चर्चा करना अन्यथा न होगा।

कृत संवत् के प्रयोक्ता मालव शासकों के अभिलेख

मालव नेता श्री (?) सोमसोगी के नान्दसा यूप-अभिलेख

कृत संवत् 282 (= 225 ई.)

1. सिद्धम। कृतयोवयोव्वर्षशतोय शीतयो: 20080 (चैत्र पूर्णमासी) (स्या) मस्याम्पूर्वार्या त्रमहता स्वशक्तिगुणगुरुणा पौरुषेण प्रथम चंद्रदर्श (नमिव मा) (लव गण विषयमवतार)
2. यित्वैकषष्टिरामतिसत्रमपरिमितधर्ममात्र समुद्धुत्य (त्व) पितृ पैतामह ही न्धुरमावृत्य सविपुलं द्यावापृथिव्योरन्तरमनुत्तमेन (यशसा) स्वकर्म संपादया विपुलां समु)
3. पगतामृद्धिमात्मसिद्धिं वित्यमायामिव सत्रभूमौ सर्वकामौधधारां वसो रमिवब्राह्मणाग्नि वैश्वानरेषु हुत्वा।
   ब्रह्मेन्द्र प्रजापति महर्षि विष्णु (स्थानेषु कृता वकाशस्य पापनि)
4. निरवकाशस्य सितसभावसथ तडाक कूपदेवपायतन यज्ञ दान सत्य प्रजा विपुल पालन प्रसंग
5. पुराण राजर्षि धर्म पद्धति (ति) सतत कृत समनु गमन निश्च (यस्य स्वगुणातिशय विस्तैर्मनु) निर्विशो (श) षमिव भुवि मनुष्यभावं यथा यथार्थमनुभवत इक्ष्वाकु प्रथित राजर्षिवंशे मालववंशे प्रसूतस्य जयवर्तन पु (प्र) भी ग्र (?) वर्द्धनपौत्रस्य जयसोमपुत्रस्य सोगिने श्री सोमस्यानेक शत (गोसहस्र)
6. दक्षिणा। वृषप्रमत्त श्रृंग विप्रधृष्टचित्यवृक्ष यूपसंकटतीरो (2) पुष्कर प्रतिलम्भभूते स्वधर्मसेतो महा (तडाके यू पप्र) तिष्ठा

कृता (1)

अनुवाद

सिद्धि हो। कृत संवत् दो सौ बयासी (282) की चैत्र पूर्णिमा को पूर्वोक्त तिथि को, अपनी शक्ति के गुणों के कारण विशिष्ट पौरुष के द्वारा एकषष्टिरात्र नामक महासत्र को, जो अपरिमिस धर्म (का स्रोत) प्रथम चंद्र के दर्शन केसमान मालव गण के विषय में अवतरित करके; निर्विशेष जो किसी दृष्टि से विशेष अर्थात् भिन्न नहीं थी; पिता और पितामह से उत्तराधिकार में प्राप्त भार के जुए को वहन करके; अपने अप्रतिम यश से पृथ्वी और आकाश के मध्यवर्ती विपुल अंतर को ढक कर समृद्धि को अपनी आत्मसिद्धि से उत्पन्न हुई प्रतीत कराकर, सत्र भूमि (यज्ञभूमि) में ब्राह्मणों को, अग्नि वैश्वानर (के समान पवित्र थे), धन की धारा प्रदान करके जो सर्व इच्छाओं की धारा (को संतुष्ट करने के कारण) माया (अर्थात् जादू) के समान थी (अथवा सत्रभूमि में अग्नि वेश्वानर को (जो जाति से) ब्राह्मण है, वसौर्धारा नामक बलि देकर जो सब इच्छाओं की धारा (को संतुष्ट करने वाली होने के कारण) माया (अर्थात् जादू) के समान है।

(उसकी) जिसने ब्रह्मा, इंद्र, प्रजापति, महर्षियों और विष्णु के मंदिरों के लिए तो स्थान प्रदान किया है (परंतु) पाप के लिए स्थान नहीं छोड़ा है, जिसने श्वेत सभा भवन व आश्रय स्थल (बनवाने), तालाब और कुएँ (खुदवाने), मंदिर बनवाने, यज्ञों में दान देने अथवा यज्ञ करने व दान देने, सत्य बोलने तथा प्रजा का विपुलरूपेण पालन करने के प्रसंग में पुरातन राजर्षियों की धर्म पद्धति के अनुगमन करने का सतत निश्चय कर रखा है, जो अपने गुणों के अतिशय विस्तार के कारण यथार्थ मानवीय गुणों का, जो मनु किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है, अनुभव कर रहा है; जो राजर्षियों के मालव (जातियों), वंश में, जो इक्ष्वाकु वंश के समान प्रसिद्ध है, उत्पन्न हुआ है; जो जयनर्तन (अर्थात् युद्ध में विजय प्राप्त करके न र्तन करने वाले) प्रभाग्र वर्धन का पौत्र, जयसोम का पुत्र तथा सौगियों का नेता है, उसकी अनेक लाख (अर्थात् लाखों) गायों की दक्षिणा है। उस श्री सोम ने (सत्रोंपरांत) मत्तवृषभों के सींगों से खरोंचे गए वृक्षों के यूपों से परिपूर्ण तट वाले पुष्कर की भर्त्सना के समान धर्म के सेतु जैसे महातडाक में यूप स्तम्भ स्थापित कराया।

बर्नाला यूप अभिलेख
कृत संवत् 284 (= 227 ई.)
मूलपाठ

1. सिद्धज्ञ। कृतेहि चैत्र शुक्ला पक्षस्य पं (पञ्) चदशी।
सोहर्त्त सगोत्तस्य राज्ञो वर्द्धनस्य यूप सत्तको पुण्ण व द्यतु।

अनुवाद

सिद्धि हो। कृत संवत् 284 के चैत्र शुक्ल पक्ष की पंचदशी पूर्णिमा को सोहत गोत्रोत्पन्न राजा के पुत्र राजा वर्द्धन का यह सत्र यूप (यज्ञकर्ता के) पुण्य (को बढ़ाने वाला हो)।

मौखरी महासेनापति बल के पुत्रों के तीन बड़वा पाषाण यूप-लेख
कृत संवत् 295 (=238 ई.)

1. सिद्धं (द्धम्)। क्रितेहि 200 (+) 90+5 फ(1)
ल्गुण शुक्लस्य पंचे दि श्रिमहासेनापतेः
मौखरेः बलपुत्रस्य बलवर्द्धनस्य यूपः।
त्रिरासिंमितस्य दक्षिण्यं गवां सहस्रं।

अनुवाद

सिद्धम्। कृत संवत् 295 वर्ष में (295 वर्ष बीत जाने के बाद) फाल्गुन शुक्ल की पंचमी के दिन श्री महासेनापति मौखरी बलके पुत्र सोमदेव का (उसके द्वारा स्थापित) यूप | त्रिरात्र यज्ञ में सहस्त्र (1000) गायों की दक्षिणा दी गई।

बर्नाला यूप- अभिलेख

कृत संवत् 335 (278 ई.)

मूलपाठ

1. क्रतेहि 300-90-5 जय + (ज्येष्ठ) शुद्धस्य पंच च दशी भृट्ट (भट्ट) त्रितवणेशु (त्रितवनेषु?)

2. गर्ग (त्रि) र (रा) त्र 5 यज्ञ इष्ट (इष्टा) सव्वस्त (सवस्ता) इ (ए) व वागा (गावो) दक्षिण्या (णा) दाता (दत्ता) 90 वष्टः (विष्णुः) प्रियतां धर्मो वर्द्ध (ताम्र)

कृत संवत् 335 के ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की पंचदशी को पांच गर्ग? त्रिरात्र गर्ग भट्ट (नामक ब्राह्मण द्वारा) (त्रित वन में?) किये गये। बछड़ों के साथ 90 गाएँ दक्षिणा में दी गईं। विष्णु प्रसन्न हों। धर्म की वृद्धि हो।

धनुत्रात मौखरी का बड़वा यूप-लेख

मूलपाठ

मोखरेहस्तीपुत्रस्य धनुत्रातस्य धीमतः। आप्तो (र) क्रतोः यूपः सहस्रो गव दक्षिणा ॥

अनुवाद

यह हस्ती के पुत्र बुद्धिमान धनुत्रात मौखरी के आप्तोर्याम यज्ञ का यूप है, जिसमें एक सहस्र गायों की दक्षिणा दी गई।

भट्टिसोम सोनी का नान्दसा यूप-लेख

मूलपाठ

1. यस्क
2. (सम) ग्रलोकाः।
3. स्वदेशे कोटीर्ती (र्थे)
4. (पा) र्वे शल्मलिवक्षः।
5. तापस (सा) श्रम व (ने)
6. कुलगोत्रविवर्द्धनार्थी (र्थे) पुत्रपौत्रप्रतिष्ठित
7. महासेनापतिस्य (पतेः) भट्टिसोमस्य सोगिस्य सोगे: म

अनुवाद

1. जिसका
2. समस्त लोक
3. अपने देश कोटीतीर्थ में
4. शाल्मलि वृक्ष के पार्श्व में
5. तपस्वियों के आश्रमवन में
6. कुल गोत्र के वर्द्धन हेतु पुत्र पौत्र प्रतिष्ठित

7. महासेनापति सोगी भट्टिसोम का

साभार गोयल, श्रीराम, प्राचीन भारतीय अभिलेख संग्रह,
खण्ड - 2, पृ. 270-89

मालव सिक्कों पर 'मालव', 'मालवानां जय:', 'मालवानां गणस्य जय' आदि अक्षर-समूह पाये जाते हैं। इन मालव सिक्कों पर जो अक्षर सूमह पाये जाते हैं, इनका संभावित अर्थ इस प्रकार है-

सिक्कों के लेख	**संभावित अर्थ**
1. वपमयन	विक्रम पर्वतेन्द्र मालव यजति नरेन्द्र
2. मजुप	मालवानां जय: पर्वतेन्द्रः
3. मपोजय	मालव पर्वतेन्द्र (उज्जयिनी) जय (जय: यजति)
4. मपय मालव	पर्वतेन्द्रो यजति
5. मगजस	मालव गणस्य जय: सकारि
6. मगोजवि	मालव गणस्य जयविक्रम
7. गजर	गणस्य जय राजा
8. मसप	मालव पर्वतेन्द्रः
9.गजव	गणस्य जय: विक्रमः
10. पछ	पर्वतेन्द्र छत्रिय
11. जमपय	जय मालव पर्वतेन्द्र यजति
12. यम	यजति मालवः
13. मगछ	मालव गण: छत्रिय:
14. जामक	जय मालव कृत
15. जमकू	जय मालव कृत
16. महाराय	महाराज
17. मरायज	मालवराजा यजति:
18. मपक	मालव पर्वतेन्द्र:
19. पय	पर्वतेन्द्रो यजति राजा
20 गोजर	गणस्य जय: राजा

अक्षरों के संभावित अर्थ

म	मालव
प	पर्वतेन्द्र
व	विक्रम
य	यजति
न	नरेन्द्रः
ज	जय:
पो	प+उ (पर्वतेन्द्र+उज्जयिनी)
ग	गण:
स	सकारि

गरो	गणस्य + उज्जयिनी अथवा गण:
र	राजा
क्ष	छत्रिय
जा	जय
क	कृत+उज्जयिनी
रा	राजा

मालव सिक्कों पर लेख

मालव
मालवन
मालवान
मालवगण
मालवाण
मालवजय
मालवसुजय
मालवगणस्य जय

उद्धृत डॉ. भगवतीलाल राजपुरोहित
पुरातत्व में विक्रमादित्य, पृ. 13-14

मालव गणतंत्र की इन प्रारंभिक शाखाओं ने अपने में कृत संवत् का प्रयोग किया। संबंधित अभिलेख इस प्रकार हैं-

कतिपय विद्वानों की राय है कि 'कृत' शब्द का सही अर्थ 'काल', 'वध' या 'शत्रुनाश' हो सकता है। एकमत यह भी है कि राजनीति में शत्रु-वध के लिए स्त्रीलिंग के लिए 'कृत्या' शब्द प्राचीन ग्रंथों में सर्वत्र व्यवहृत किया गया है, उसी का रूप 'कृत्य' हो सकता है। कुछ विद्वान इस पद को कृत युगया सतयुग के अर्थ में पढ़ते हैं। वे इस प्रकार के अर्थों के कारण इस संवत् की स्थापना में पर्याप्त भ्रम उत्पन्न किया गया और इतिहास को शंकाओं का विषय बना दिया गया। इस कारण ये मत को अधिकांश विद्वान स्वीकार नहीं करते।

मालव संवत्

कृत संवत् को इसके पश्चात विभिन्न अभिलेखों में मालव-काल, मालवेश तथा मालवगण संवत् भी कहा गया है। दशपुर, ग्यारसपुर, मैनागढ़ अभिलेख इसके साक्षी हैं।

उदाहरणार्थ दशपुर (मंदसौर) के राजा नरवर्मा का शिलालेख में जो मालव संवत् 461 का उल्लेख निम्न प्रकार है-

'श्रीर्मालवगणाम्नाते, प्रशस्ते कृत् संज्ञिते। एक षष्ट्याधिके प्राप्ते सभाशतचतुष्टये ॥

-एपिग्राफिया इंडिका

इस प्रकार पुराना कृत संवत् ही मालव गणाम्नात अथवा मालव संवत् कहलाया। भारतवर्ष की काल-गणना में अनेकानेक संवत् चले, परंतु उनमें से प्रचलित थोड़े से ही रहे। सबसे लंबा जीवन विस्तार विक्रम संवत् का ही रहा है और विभिन्न शिलालेखों तथा लेखों से सिद्ध हो गया है कि उज्जयिनी नरेश विक्रमादित्य ने ही अपनी प्रथम शक-विजय के उपलक्ष्य में ईसा पूर्व 57 वर्ष में विक्रम संवत् का प्रवर्तित किया। जिन शिलालेखों का उल्लेख किया जा चुका है, उनसे स्पष्ट है कि चाहे इस संवत् का प्रयोग 'कृत', 'मालव', 'साहसांक' आदि नामों से किया गया हो, किंतु इन सबका अर्थ विक्रम संवत् से है जो ईसा पूर्व 57 वर्ष में आरंभ हुआ था। मालव अथवा उत्तरी भारत में विक्रम संवत् का आरंभ चैत्र शुक्ल पक्ष 1 से और दक्षिण भारत में कार्तिक शुक्ल पक्ष प्रतिपदा से माना जाता है। इसलिये उत्तरी को 'चैत्रादि' और दक्षिणी को 'कार्तिकादि' संवत् कहते हैं। उत्तर में महीने कृष्ण प्रतिपदा से आरंभ होकर कृष्ण अमावस्या को समाप्त होते हैं। इसी कारण उत्तरी भारत में 'पूर्णिमान्त' और दक्षिण भारत में 'अमान्त' कहलाते हैं। भारतवर्ष के

संवतों में जिस संवत् का उपयोग सबसे प्राचीन काल से लेकर आज तक प्रचलित है, वह विक्रम संवत् ही है। जिन लोगों ने उपेक्षा भाव से या क्षेत्र -न्यामोह के कारण इसमें उलटफेर करने की चेष्टा की है, इस प्रकार के उनके प्रयत्न निराधार ही नहीं, अपितु पाठकों को गुमराह करने वाले हैं। ऐसे तथ्यहीन तर्कों को कोई भी मान्य नहीं कर सकता। अत: यह मानना होगा कि उज्जयिनी नरेश विक्रम ही 'विक्रम संवत्' के प्रवर्तक थे। प्राचीन साहित्य से विदित होता है कि इस महान प्रतापी एवं जन सम्राट ने लगभग 60 वर्ष और इनके पुत्र ने 40 वर्ष तथा इनके वंशजों ने लगभग 35 वर्ष तक मालव राज्य को भोगा। यही समय 135 वर्ष का विक्रम संवत्, जो 57 वर्ष ईसा पूर्व से आरंभ होता है और शक संवत् का है, जो सन् 78 ई. से आरंभ होता है।

विक्रम संवत् : कुछ प्रश्न एवं उनका निराकरण

1. क्या किसी विक्रमादित्य ने एक संवत् चलाया था ?
2. संवत् का नाम कृत संवत् क्यों पड़ा ?
3. कृत संवत् कालान्तर में मालव व उपरांत विक्रम संवत् क्यों कहलाया ?
4. विक्रम एवं मालव संवत् के मध्य क्या और क्यों संबंध रहे ?
5. कृत संवत् के प्रारंभिक अभिलेख एवं प्रमाण अवन्ती जनपद की क्षेत्रीय परिधि में क्यों प्राप्त नहीं होते?
6. भारत में विक्रम संवत् के स्वरूप में क्या विभिन्नताएँ पाई जाती हैं ?
7. विक्रम संवत् विषयक उक्त विवेचन का निष्कर्ष क्या है ?

इन प्रश्नों के उत्तर देना परमावश्यक हैं। विक्रमादित्य द्वारा शकों को खदेड़ के विजय स्वरूप एक संवत् प्रवर्तन के प्रभूत प्रमाण पौराणिक एवं जैन साहित्य (विशेषकर) कालकाचार्य कथानक में प्राप्त होते हैं। लगभग प्रत्येक स्रोत उज्जयिनी के विक्रमादित्य द्वारा एक संवत् प्रवर्तित करने का प्रमाण देते हैं। लोक-जीवन में विक्रमादित्य की सर्वव्याप्ति ख्यात है। किसी भी इतिहासकार ने उसके अस्तित्व एवं उसके द्वारा संवत्-प्रवर्तन की घटना का विरोध नहीं किया है। अत: यह प्रश्न खड़ा ही नहीं होता।

शेष प्रश्नों के निराकरणात्मक उत्तर आगे के पृष्ठों में सप्रमाण दिये गये हैं।

विक्रम संवत् व विक्रमादित्य

विक्रम संवत् प्रवर्तन इतिहास की कोई जटिल पहेली नहीं है, किंतु इतिहासकारों ने अपने मत-मतांतरों से बना दी है। जिस संवत् का निर्बाध व्यवहार होता चला आ रहा है, उसका प्रवर्तन निश्चित ही हुआ था। फिर भी विक्रम संवत् तथा इसके प्रवर्तन विक्रमादित्य को लेकर अनेक मत प्रकट कर दिये गये हैं।

उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में फर्ग्युसन ने यह मत प्रकट किया था कि विक्रम के संवत् का प्रवर्तन 544 ईस्वी में हुआ, जब विक्रमादित्य नामक अथवा उपाधिकारी नरेश ने हूणों को पराजित कर इसकी स्थापना की। मैक्समूलर ने भी इसका समर्थन किया।

कीलहार्न के मत 56 ईसा पूर्व में दत्य नामक कोई नरेश था ही नहीं और किसी व्यक्ति विशेष ने विक्रम संवत् का प्रवर्तन ही नहीं किया। इसी प्रकार कनिंघम के मत में विक्रम संवत् का संस्थापक कुषाण नरेश कनिष्क था। सर जॉन मार्शल के मतानुसार गांधार नरेश एजेस (अज) प्रथम इस संवत् का संस्थापक था। यह मत इस कारण अमान्य हुआ क्योंकि विक्रम संवत् का प्रचलन शुरू में कृत नाम से हुआ था, एजेस नाम से नहीं। साथ ही यह संवत् मालव प्रदेश से प्रारंभ हुआ था, न कि गांधार प्रदेश से।

इन मतों के अतिरिक्त कुछ और भी मत प्रकट किये गये हैं। एक के अनुसार यशोवर्मन और अन्य के अनुसार पुष्यमित्र शुंग इस संवत् के प्रवर्तक रहे। काशीप्रसाद जायसवाल के मत में गौतमीपुत्र सातकर्षि इस संवत् के प्रवर्तक थे।

सर रामकृष्ण भण्डारकर का कहना रहा कि मालव-संवत् को चंद्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य ने नाम परिवर्तित कर विक्रम संवत् कर दिया। विन्सेन्ट स्मिथ जैसे कुछ अन्य विद्वानों ने भी इस मत का समर्थन किया था।

इन विभिन्न मतों पर समीक्षात्मक विचार आवश्यक है। विक्रमादिनत्य के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रमुख आधार स्वयं

विक्रम संवत् ही है। उन सभी के अभिलेखों के आधार पर निम्न निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं-

1. संवत् 282 से 461 तक यह कृत संवत् रहा।
2. संवत् 467 से 936 तक मालव संवत् (संवत् 461 के मंदसौर के अभिलेख में इसके कृत व मालव दोनों ही नाम)।
3. धौलपुर से प्राप्त चण्डज्ञहासेन के संवत् 898 के अभिलेख में इसे विक्रम संवत् की संज्ञा दी गई। इसके बाद के सभी अभिलेखों में इसका यही नाम रहा।
4. कृत व मालव नामों के प्रयोग की भौगोलिक सीमा उदयपुर, जयपुर, कोटा, भरतपुर, मंदसौर और झालावाड़ हैं। पर विक्रम नाम का प्रयोग प्राय: सारे देश में हुआ।

मालव संवत् के निम्न पाठ हैं-

1. मालव 461 प्राप्ति मंदसौर	श्रीमालवगणाम्नाते प्रशस्ते कृतसंज्ञिते
2. 493	मालवानां गणस्थित्या
3. 524	विख्यापके मालववंशकीर्ते:
4. 589	मालवगणस्थितिवशात्कालज्ञानाय
5. 795	कणस्य संवत्सर.... मालवेशानाम्
6. 936	ग्यारसपुर मालवकालाच्छरदाम्

इन पाठों को एक साथ पढ़ने से निम्न तथ्य सामने आते हैं-

(अ) इस संवत् मालवेश या मालवगणाध्यक्ष का चलाया हुआ है।

(आ) इसके प्रारंभ का कारण मालवगण की स्थिति अर्थात् उनके अस्तित्व की प्रतिष्ठा अथवा पुन: स्थापना थी।

(इ) यह संवत् मालववंश या मालवगण की कीर्ति का कारण था।

(ई) मालव संवत् का प्रारंभिक नाम कृत संवत् था।

अत: कृत शब्द का अर्थ खोजना भी उपयोगी होगा। डॉ. राजबलि पाण्डेय के अनुसार 'सतयुग या स्वर्णयुग'। यहाँ कृत का अर्थ है मालवेश या मालवगणनायक का ऐसा कार्य जो मालववंश कीर्ति बढ़ाने वाला था, जिससे मालवगण की पुन:स्थापना हुई, विदेशियों का विनाश हुआ और सतयुग या स्वर्णयुग का प्रारंभ हुआ। मालवगण की मुद्राओं पर 'जय मालवानाम् मालवानां जय' अथवा 'मालवगणस्य जय' लिखा है। गण ने भी 'विजय मुद्राओं' का प्रचलन किया। कृत का अर्थ है।

प्रश्न यह उठता है कि मालवेश के कृत व मालवा का विक्रम में बदलना। इसके समाधान के हेतु विक्रम संवत् के विभिन्न उल्लेखों पर ध्यान देना अनिवार्य है। इनका उल्लेख निम्न प्रकार से हुआ है-

पुराना कृत संवत् ही मालव गणाम्नात अथवा मालव संवत् कहलाया।

(घ) 'मालवानांगणस्थित्या' यह शिलालेख मंदसौर से प्राप्त है और संवत् 493 में लिखा गया।

(च) 'विख्यातके मालववंश कीर्ते:' और

(छ) 'मालवगणस्थित्रतवशात्कालज्ञानाय'

ये दो लेख क्रमश: मालव संवत् 524 और 589 भी मंदसौर से प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त 'संवत्सरमालवेशान्तम्' यह शिलालेख कोटा से प्राप्त जो संवत् 795 में लिखा गया है।

मालवगणस्थित्यब्द के साथ आरंभ से ही मालवेश विक्रमादित्य के नाम का संबंध न होने का एक कारण कदाचित् यह भी है कि मालवा की राज्य शासन प्रणाली गण-शासन पद्धति थी, जो एक प्रकार की प्रजातंत्र या प्रतिनिधि तंत्र की प्रणाली थी। ऐसी सामूहिक राज्य-प्रणाली में किसी विशेष सार्वजनिक राज्य-कार्य जैसे जयपराजय, संधिविग्रह का यश किसी एक व्यक्ति को देने से संघ में फूट पड़ने का भय था। अत: इन स्थितियों को विचार कर मालव गण की विजय के उपलक्ष्य में स्थापित संवत् के यश को संघ ही मूलत: प्राप्त कर सकता था, केवल संघपति, फिर चाहे वह विक्रम हो अथवा कोई और। यह भी हो सकता है कि संघपति ने स्वयं फूट पड़ने की आशंका से उस यश को संघ के ही अर्पण कर दिया हो और इस प्रकार संघपति विक्रम की उदारता, न्यायप्रियता,

पराक्रम व लोकप्रियता से वह संवत् मालव-गण संघ नाम से ही प्रसिद्ध किया गया हो; किंतु शकों के पराभव की अत्यंत महत्वपूर्ण घटनाओं के कारण इस महान सेनापति का नाम किसी प्रकार भी नहीं भुलाया जा सकता था, अत: इतिहास ने शकों को निष्प्रभ करने वाले सेनापति विक्रम का नाम विशेष रूप से याद रखा, जोश्रुति, उपश्रुति तथा व्याख्यानादि के द्वारा सर्वसाधारण में क्रमानुगत प्रसिद्ध होता चला गया और जब गण-शासन संबंधी बातें भूली गईं तो संवत् के इतिहास को स्पष्ट रखने के लिये उसके साथ सेनापति या संघपति का नाम मिला दिया गया। प्रश्न यह है कि क्या वस्तुत: प्राचीनकाल में कोई विक्रम नामक व्यक्ति संवत् का संस्थापक हुआ भी था ? और यदि ऐसा कोई हुआ था तो कब ? इस पर हमारा मत है कि यदि कोई व्यक्ति हुआ ही नहीं था तो फिर यह नाम कहाँ से आ गया ? विक्रम को स्पष्ट रूप से 'शकारि' कहा जाता है, जिसका अर्थ यही है कि संवत्कार विक्रम ने शकों का सर्वनाश किया था, क्योंकि कोई व्यक्ति तो उनका मुख्य नायक या सेनापति रहा होगा। बिना सेनापति के युद्ध चल ही किस प्रकार सकता था। वस्तुत: जो व्यक्ति शकों के विरुद्ध अभियान करने में मालव- गण राष्ट्र का अधिनायक था, वहीं विक्रम था।

समीक्षा

विक्रम संवत् के अभिलेखीय प्रमाण 9वीं सदी से स्पष्ट दिखाई देते हैं। उसके पूर्व यह संवत् पहले कृत एवं उपरांत मालव संवत् कहलाता रहा। इस आधार पर तथाकथित इतिहासकार यह प्रश्न उठाते रहे हैं कि यह संवत् पहले विक्रम संवत् क्यों नहीं कहलाता रहा। भाग्य से इस तथ्य पर किसी को इंकार नहीं है कि पहले यह संवत् कृत एवं उपरांत मालव संवत् क्यों कहलाता रहा और फिर एकाएक क्या हुआ कि इस संवत् का नामकरण विक्रम संवत् हो गया। हमारे इन ख्यातनाम इतिहासकारों ने पहले तो विक्रमादित्य के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया और फिर उसे मान्यता भी दी गई कि उसे मालवा की उपेक्षा अन्य क्षेत्रों में खोजने का प्रयास किया गया। कभी उसे कनिष्क, कभी यशोधर्मन-विष्णुवर्धन, कभी उसे अजेस या वोनोनिस, तो कभी उसे एक सातवाहन शासक के रूप में पहचानने की कोशिश की। फिर वे गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य को ही उज्जैन का विक्रमादित्य मानने लगे। वे इस तथ्य को एकदम भूल गये कि चंद्रगुप्त की उपाधि विक्रमादित्य थी, जबकि उज्जैन के गर्दभिल्ल शासक विक्रमादित्य एक नाम था, उपाधि कतई नहीं और फिर उज्जैन सहित पश्चिमी मालवा पर तो गुप्तों का कोई अधिकार था ही नहीं। पुराण कई जैन ग्रंथ तो विक्रमादित्य को गुप्त सम्राट चंद्रगुप्त विक्रमादित्य के लगभग चार सौ वर्ष पूर्व उसे मगध का शासक मानते हैं। यह बात दूसरी है कि उज्जैन के राजा विक्रमादित्य की दिग्दिगंत-व्याप्त ख्याति के कारण चंद्रगुप्त व उसके गुप्त वंश के एकाधिक नरेशों ने विक्रमादित्य शब्द को एक उपाधि के रूप में धारण कर लिया हो। भाग्य से दोनों द्वारा शकों को पराजित कर लिया था, इस कारण इतिहासकारों ने दोनों ही शकारि को एक मान लिया और इतिहास के साथ अन्याय कर दिया था। संवत् के नाम में परिवर्तन पर एक बार गंभीर विचार करना परमावश्यक है। जैसा कि इस ग्रंथ में अन्यत्र एकाधित बार कहा जा चुका है कि कृत संवत् के प्रणेता मालव-जन या तो पंजाब से मालवा की ओर राजस्थान होते हुए आये या मालवा से राजस्थान की ओर गए। स्थिति जो भी रही हो, मालव-जन अनेक शाखाओं में विभक्त हो पूर्वी राजस्थान से लेकर पश्चिमी व मध्य मालवा से दूर-दूर तक फैल गए। ये सभी शाखाएँ गणतंत्रीय पद्धति की अनुपालक एवं समर्थक थीं। इनके अधिकांश शासक-प्रशासक अपना नाम संक्षिप्त रूप में या उपाधिधारी के रूप में अंकित करते रहे थे। मालवों की कई सैनिक टुकड़ियों के प्रमुख अपना संबोधन सेनापति या महासेनापति के रूप में करते रहे थे। ये टुकड़ियाँ एक प्रमुख गणराज्य से संबंधित रहीं। प्रत्येक उपशाखाएँ अपनी मुद्राएँ निर्गमित करती रहीं। इस कारण अवंती क्षेत्र में विक्रमादित्य की मुद्राओं के साथ-साथ अन्य कई छोटे-मोटे शासकों की मुद्राएँ भी प्राप्त होती हैं। इस कारण यह कथन अन्यथा न होगा कि इन मुद्राओं की उपलब्धता पृथक-पृथक शासकों की न होकर एक मालव गणराज्य की पृथक-पृथक शाखाओं की रही थी।

वराहमिहिर का कूर्म विभाग

बाल मुकन्द त्रिपाठी

पुराणों के अनुसार पृथ्वी के मध्य में मेरूपर्वत है और इस मेरूपर्वत की चारों दिशाओं में सात द्वीप (सप्तद्वीप) हैं, जिनमें जम्बूद्वीप भी एक है। इस जम्बूद्वीप को पुन: नव खंडों में विभाजित किया गया है, जिनके नाम हैं- कुरूवर्ष, हिरण्यमयवर्ष, रम्यकवर्ष, इलावृतवर्ष, हरिवर्ष, केतुमालवर्ष, भद्राश्ववर्ष, किन्नरवर्ष एवं भारतवर्ष। आचार्य वराहमिहिर ने इसी जम्बूद्वीप का विभाजन दिशाओं के आधार पर अपनी प्रसिद्ध कृति बृहत्सहिता के चौदहवें अध्याय में कूर्म विभाग के नाम से किया है।

कूर्मविभाग में एक भाग तो मध्य में स्थित है तथा शेष आठ भाग चारों ओर चार दिशाओं (उत्तर-पूर्व-दक्षिणपश्चिम) एवं इन चार दिशाओं से बनने वाली चार उप- दिशाओं (आग्नेयकोण, नैर्ऋत्यकोण, ईशानकोण एवं वायव्यकोण) में स्थित हैं।

आचार्य वराहमिहिर द्वारा वर्णित कूर्म विभाग का आधार ज्योतिष के 27 चान्द्र नक्षत्र हैं। इन नक्षत्रों को नौ समान भागों में बाँटा गया है, ताकि प्रत्येक भाग में तीन नक्षत्र आ जाएँ। नक्षत्रों के इन नौ भागों के आधार पर पर ही कूर्मविभाग के नौ भाग हैं। ध्यान रहे आचार्य वराहमिहिर के काल में उपरोक्त 27 चान्द्र नक्षत्रों का आरंभ कृतिका (जिसका स्वामी सूर्य है) नक्षत्र से होता था, जो आज अश्विनी (जिसका स्वामी केतु है) नक्षत्र से माना जाता है।

कूर्मविभाग में आचार्य वराहमिहिर ने अनेक नगरों, पर्वतों, नदियों एवं जातियों के नामों का उल्लेख किया है, जो ऐतिहासिक दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण है। आगामी पृष्ठों में कूर्म विभाग में वर्णित समस्त स्थानों का परिचय एवं उनकी आज के युग में स्थिति को सविस्तार प्रस्तुत किया गया है।

मध्यप्रदेश (1)

(कृ. उफा. उषा.- सूर्य)

1. मद्र- (मद्रक) (1) व्यास और सिन्धु नदी के मध्य। (2) रावी - चिनाब नदियों के मध्य। (3) बलख से व्यास तट तक। कालांतर में इसकी सीमाएँ घटती-बढ़ती रही हैं। वहाँ से शल्य, माद्री, नकुल-सहदेव, मिलिन्द, शालिवाहन (रसालू, हूण, मिहिरकुल और सावित्री (सत्यवान की पत्नी) का संबंध रहा था। राजधानी स्यालकोट में रही थी, जिसे शल्यकत, शाकलद्वीप, शागल, सागल, सांकल, संगल नाम से ग्रंथों में वर्णन किया गया है।
2. अरिमेद- खाकिर-वन (मथुरा में)। अरिमेदो बिटू खदिरे (अमरकोष)।
3. माण्डव्य- माडू (उत्तरप्रदेश के गढ़मुक्तेश्वर से 8 मील पूठ है और पूठ से 8 मील) यहाँ माण्डव्य ऋषि का आश्रम था।
4. साल्वनीप- (शाल्वनीप- शाल्वनगर)। नीबृज्जनपदो देश: (अमरकोष)। अलवर - जयपुर- जोधपुर का भूभा। शाल्व (भागवत - वर्णित) की राजधानी, अलवर में थी।
5. उज्जिहान- (बौद्धकालीन शब्द) उज्जयिनी-उज्जैन (मालवा में)।
6. संख्यात- (1) दशार्ण देश (मालवा का पूर्वी भाग, भोपाल का पश्चिमी भाग- इसकी राजधानी विदिशा (भेलसा) और विश्वनगर (वेशनगर - रुक्मगांद - कथा - भूमि) तथा दशपुर (मंदसौर) में रही थी। मध्यप्रदेश के छत्तीसगढ़ को 'पूर्वी दशार्ण' कहते थे। भेलसा (भोपाल से उत्तर-पूर्व)। वेशनगर (भेलसा से तीन मील उत्तर)। मंदसौर (मध्यप्रदेश की इंदौर कमिश्नरी में)। संख्यात शब्द से दशार्णदेश या दशपुर का ठीक बोध होता है।
7. मरु- मारत्राड़ (राजस्थान)। हस्तिनापुर में द्वारका के मध्य में 'मरुधन्व' का वर्णन किया गया है।
8. वत्स- (1) इस देश की राजधानी, कौशाम्बी में थी। कौशाम्बी- कोसम- मऊ (इलाहाबाद से 36 मील दक्षिण-पश्चिम, यमुना तट पर कोसम गाँव) मेघदूत- वर्णित उदयन की राजधानी, बुद्ध के समकाल में थी। (2) वत्सग्राम - विछग्राम-भीटा (इलाहाबाद) के इरादतगंज के पास। इसे वीथाव्यपट्टन भी कहा गया है। (3) वत्स-वन (उत्तरप्रदेशी मथुरा जिले के ब्रजमण्डल में) यहाँ ब्रह्मा ने बछड़े चुराये थे।
9. घोष- हरियाणा प्रदेश। घोष आभीरपल्ली स्यात (अमरकोष)। आभीर - अहीर-ग्वाल। पल्लीप्रदेश- मथुरा, हिसार, माण्टगोमरी, गुजरात (पाकिस्तान), ग्वालियर आदि में ग्वालों का निवास रहा था। किंतु मुख्य स्थान हरियाणा प्रदेश ही माना जायेगा।
10. यामुन- पूर्वी यमुना के तटवर्ती प्रदेश। इलाहाबाद (उत्तरप्रदेश) में एक तीर्थ स्थान 'यामुन' है।
11. सारस्वत- सरस्वती (कुरुक्षेत्र से भटनेर - हनुमानगढ़) तक नदी के तटवर्ती प्रदेश | कुरुक्षेत्र-थानेसर (हरियाणा में), भटनेर (बीकानेर में)।
12. मत्स्य- जयपुर, अलवर, भरतपुर (राजस्थान में) राजधानी मछेरी और विराटनगर (जयपुर से 41 मील, उत्तर) में थी।
13. माध्यमिक- नागरी (नगरिया), मेवाड़ के चित्तौड़ से 11 मील। इसे मध्यमिका और मध्यमक भी कहा है।
14. माथुरक- ब्रज-मण्डल (84 क्रोशी परिक्रमा) के स्थल। राजधानी मधपुरी - शूरसेना-मथुरा (उत्तरप्रदेश में)। यहाँ मधुदैत्य के पुत्र लवणासुर को शत्रुघ्न ने पराजित किया था।
15. उपज्योतिष- उत्तरकाशी (उत्तरप्रदेश के, टेहरी से 42 मील)। इसका क्षेत्र 10 मील - 1 योजन का है। यह बारणावत शिखर के ऊपर है।
16. धर्मारण्य- (1) कण्वाश्रम (क) राजस्थान के कोटा से 4 मील दक्षिण पूर्व। (ख) मन्दावर या मदावर (उत्तरप्रदेश के बिजनौर जिले में, मालिनी-चुका नदी के तट पर)। (2) कुरुक्षेत्र। (3) गंगा-यमुना का मध्य भाग। (4) नैमिषारण्य। (5) बलिया-गाजीपुर- जौनपुर के जिलों का भूभाग। इनमें नं. 3 अधिक ठीक है। दुष्यन्त-शकुंतला का मिलन, मदावर में हुआ था। (6) उत्तराखंड (यमुनोत्तरी, गंगोत्तरी, केदारनाथ, बदरीनाथ, नर-नारायणाश्रम आदि)।
17. शूरसेना- (देखिए नं. 14 माथुरक, इसे पुनरुक्ति किया है)। शत्रुघ्न ने विजय कर, मथुरा का नाम शूरसेना रखा था

(बाल्मीकीय)। कंस के पिता उग्रसेन के समकाल में शूरसेन भी थे। शूरसेन वसुदेव के पिता तथा कृष्ण के पितामह थे। किंतु शत्रुघ्न (रामभ्राता) के पुत्र का नाम शूरसेन (श्रुतसेन) था। इसी के नाम पर मथुरा राज्य का नाम शूरसेना था।

18. ग्रौरग्रीव- अद्रिगोत्रगिरिग्रावाचलशैरशिलोच्चयाः (अमरकोष)। जयपुर के आसपास के श्वेतपर्वत। यहाँ शुद्ध-पाठ 'गौरग्राव' से, शेखावती के पर्वत हैं।
19. उद्देहिक- बुलन्दशहर (उत्तरप्रदेश में) इसे उद्वेहिक भी कहा गया है। किंतु उद्देहिक ही शब्द ठीक है।
20. पाण्डुगुड- पाण्डुकेश्वर (उत्तरप्रदेश के गढ़वाल जिले में) यहीं पाण्डवों का जन्म हुआ था। पाण्डुकेश्वर को योगबदरी (ध्यानबदरी) भी कहते हैं।
21. अश्वत्य- (1) असीरगढ़- (मध्यप्रदेश निमाड़ जिले में), यहाँ अश्वत्थामा (महाभारत- वर्णित) की राजधानी थी। (2) अश्वत्थामा का स्थान कानपुर जिले के ब रराजपुर (शिवराजपुर) रेलवे स्टेशन से 2 मील उत्तर में, तारापतिनिवादा गाँव से कुछ पश्चिम 'खेरेश्वर' महादेव का स्थान है; ये अश्वत्थामा द्वारा स्थापित किये गये थे, पास ही अश्वत्थामा का भी स्थान है। (3) अश्वतीर्थ (गंगा-काली नदी के संगम पर, उत्तरप्रदेशी कन्नौज से 5 मील)। इस तीर्थ में ऋचीक से सत्यवती (गांधिपुत्री) के विवाह-प्रसंग का संबंध है। सत्यवती के पुत्र, जमदग्नि थे। अश्वत्थ के अर्थ पीपल (वृक्ष) है। अतएव (4) पिपरावाँ गाँव, उत्तरप्रदेशी गोरखपुर से 46 मील नौगढ़ स्टेशन है; नौगढ़ स्टेशन से 13 मील उत्तर में पिपरावाँ गाँव है। (5) पिपरिया (उलूक तीर्थ से 5 मील, नर्मदा के दक्षिण तट पर, मालवा- गुजरात सीमा पर) यहाँ पिप्पलाद ऋषि का आश्रम था। (6) पिपरियाघाट (मध्यप्रदेश के नरसिंहपुर जिले में, गरारू 4 मील, नर्मदा के दक्षिण तट पर)। (7) पिप्लेश्वर (मर्दाना से 6 मील, नर्मदा के उत्तर तट पर, मण्डलेश्वर से 12 मील, मध्यप्रदेश के इंदौर जिले में)। यह अश्वत्थ शब्द का देश, भ्रमात्मक है।
22. पांचाल- यह देश हिमालय से चम्बल नदी तक था। झेलम, चिनाब, व्यास, रावी, सतलज इन पाँचों नदियों के मध्यवर्ती, पांचाल थे। कालांतर में यमुना, गंगा, गोमती, चौका, सरयू नामक पाँच नदियों के मध्य, पाँचालों की बस्तियाँ हो गयीं। पांचाल की राजधानी (अहिच्छत्र, अहिस्थल=रामनगर, उत्तरप्रदेश के बाँस बरेली जिले में, आँवला स्टेशन से 6 मील) में थी। कौरव-पाण्डव के अध्यन काल में, द्रुपद को पराजित कर अहिच्छत्र में द्रोणाचार्य ने राजधानी बनायी। तब द्रुपद की राजधानी, काम्पिल्य= कम्पिला (उत्तरप्रदेशी फर्रुखाबाद जिले के, कन्नौज के पास) हुई। इसी कम्पिला में द्रौपदी - स्वयंवर हुआ था। इसी से द्रौपदी पांचाली भी कहाती थी। उत्तर पांचाल = कन्नौज (गंगा) से चम्बल तक। श्रीरामकाल में अहिच्छत्रा नगरी=गोहाटी (आसाम) को कहते थे (बाल्मीकीय)।
23. कंक- (एक प्रकार का पक्षी), लोहपृष्ठस्तु कंक: स्यात् (अमरकोष)। विराटनगर में युधिष्ठिर, कंक दे शी बनकर रहे थे। (1) लोहारू (राजस्थान में) (2) कंकाली टीला अथवा लोहवन (उत्तरप्रदेशी मथुरा के समीप)। लोहवन में, भगवान कृष्ण ने, लोहासुर को मारा था। (लोहार्गल=लोहागरजी, नवलगढ़ से 20 मील, राजस्थान)। यहाँ युधिष्ठिर द्वारा स्थापित, शिवमंदिर तथा भीमसेन द्वारा स्थापित भीमेश्वर है। (4) लोहाय (ब्राह्मण-गाँव से 9 मील, नर्मदा के दक्षिण तट पर; म.प्र. प्रांत) पाण्डव, वनवास- काल में आए थे।
24. कुरु- (कुरुवाह्य = कुरुक्षेत्र) हरियाणा का एक जनपद एवं भारत का प्रसिद्ध तीर्थ (सरस्वती और दृषद्वती (घग्गर) के मध्य का प्रदेश)। कुरु राजधानी या तीर्थ क्षेत्र = थानेसर (स्थाणु तीर्थ=स्थाण्वीश्वर=स्थानेसर)। परीक्षित प्रथम के पिता, कुरु (वायुपुराण) ने, यहाँ कृषिक्षेत्र (एग्रीकल्चर फार्म) बनाया था। कुरु से पूर्व, इस प्रदेश का नाम ब्रह्मावर्त था। ब्रह्मावर्त के बाद, ब्रह्मर्षि देश नाम पड़ा। क्रम से ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश, कुरुक्षेत्र, धर्मक्षेत्र, सप्तसिन्धु आदि नाम हुए।
25. कालकोटि- (कालकूट) (1) महाकाल वन में 'महाकाल' का मंदिर (उज्जैन में) (2) उत्तरप्रदेश बाँदा जिले में 'कालिंजर' ग्राम (यहाँ 'काल' का स्थान)। श्रीशिव ने काल को जीर्ण किया था।
26. साकेत- (स्वर्ग) अयोध्या (उत्तरप्रदेश के फैजाबाद जिले में)।
27. कुकुर- पूर्वी राजस्थान का खण्ड (आनर्त का पड़ोसी)। मतान्तर से महीकण्ठ।
28. पारियात्र- पुष्कर (अजमेर) से चम्बल तक के मध्यवर्ती पर्वत (अर्बली पर्वत)।

29. औदुम्बर- (1) डलहौजी-बाकलोह (2) व्यास-रावी के मध्य (व्यासतट में कुलू त देश तथा रावीतट में औदुम्बर देश था (3) अमरकण्टक (मारवाड़ में)।

30. कापिष्ठल- (कपिस्थले भव:) कपिस्थल तीर्थ=कैथल (हरियाणा के कर्नाल जिले में)।

31. गजाह्वय- हस्तिनापुर (प्राचीन नाम नागपुर)। नाग = हाथी = हस्ती (चंद्रवंशी सुहोत्र का पुत्र एवं अजमीढ़ का पिता)। उत्तरप्रदेश के मेरठ से 22 मील पूर्वोत्तर, बुढगंगा के तट पर (व (वर्तमान गंगा से 5 मील, पश्चिम)। इसी बुढगंगा में बाढ़ आकर हस्निापुर नष्ट हो गया, तब पाण्डववंशी निचन्कु ने वत्स (कौशाम्बी) में राजधानी बनायी।

32. मध्यप्रदेश - पूर्वोक्त सभी स्थानों के स हित मध्यप्रदेश की सीमा- "हिमवद्विन्ध्ययोर्मध्ये यत्प्राग्विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यप्रदेश: प्रकीर्तितः।" अर्थात् हिमालय से विन्ध्याचल (नर्मदा) तक (उत्तर से दक्षिण) और प्रयाग से कुरुक्षेत्र तक (पूर्व से पश्चिम) मध्य देश कहा गया है।

पूर्व देश (2)

(भ. पूफा. पूषा.= शुक्र)

1. अञ्जन- (1) नीलाञ्जनानदी (बिहार के गया के पास)। (2) लोहतक झील से निकलने वाली 'सुरमा नदी' (पूर्वी आसाम में)। (3) आञ्जन ग्राम (रांची से लोहार डागा)। लोहारडागा से पक्की सड़क गुमला तक, इसके मध्य (गुमला से 8 मील पहले ही) टोटो है। टोटो से 3 मील आञ्जन-ग्राम, छोटा नागपुर जिले में)।

2. वृषभध्वज- (1) वाराणसी के विश्वनाथ (सन् 1956 ई. से बनारस का नाम पुन: वाराणसी हो गया। (2) बिहार का राजगिर (राजगृह जरासंध राजधानी में एक वृषभ पहाड़ी।

3. पद्ममाल्यगिरि- (मालकेतु) पटकाई पर्वत, आसाम में। इसी के पास भारत-राज्य के पेटोल कारखाने हैं।

4. व्याघ्र मुख- (व्याघ्रसर) बक्सर (बिहार के शाहाबाद जिले में) यहाँ पाण्डव (भीम) द्वारा मारे गये बकासुर का स्थान था (महाभारत में, एकचक्रा नगरी (आरा-बिहार) की कथा)।

5. सूक्ष्म- (पाठ - भ्रष्ट) इसे सुह्य देश समझिए। सुह्य = (1) राजधानी चटगाँव (बंगाल)। (2) दामोदरनदी-हल्दीनदी के मध्य, राजधानी ताम्रलिप्ति (ई. पाँचवीं शताब्दी में)। ताम्रलिप्ति=तमलुक (बंगाल के मिदनापुर जिले में)। यहाँ मोरध्वज (मयूर-ध्वज) की भी राजधानी थी। इन्हीं की संतान वर्तमान बर्मा देश का राजवंश है।

6. कर्वट- (1) ताम्रलिप्ति राज्य (देखिए नं. 5) महाभारत में 'कवटाधिपति ताम्रलिप्त' का वर्णन है। (2) काशी (वाराणसी) में, एक 'काशी कर्वट' नामक स्थान है।

7. चान्द्रपुर- चांदपुर (होजागंज से दक्षिण, बंगाल में)।

8. शूर्पकर्ण- (सर्वतोभद्र में गजकर्ण) (1) करिग्राम (बंगाल के रंगपुर जिले में)। (2) कुण्डाग्राम=वैशाली=बनिया- बसाढ़ (बिहार के मुजफ्फरपुर जिले में) के पास - 'हस्तीग्राम'। (3) गजकर्ण नामक वेदी का स्थान 'गया तीर्थ' (बिहार) में है।

9. खस- खासी पर्वत (आसाम में)।

10. मगध- (1) दक्षिणी बिहार प्रांत (राजधानी राजगृह और गया) (2) नवीन मगध=संपूर्ण बिहार प्रांत (राजधानी राजगृह=जरासंध राज्य)। पटना में शिशुनागवंशी अजातशत्रु का राज्याभिषेक हुआ तथा इसके पौत्र (उदयाश्व) ने पटना को बसाया (विस्तृत किया) तब, राजगृह की राजधानी छोड़ दी गयी थी।

11. शिबिरगिरि- (पाठभ्रष्ट) शबरगिरि (शुद्ध) (1) शबरगिरि=स रे=सन्थाल परगना। (2) भुवनेश्वर के पास 'शबरदीपक' का स्थान था। (3) शैबलगिरि=रामगिरि=रामटेक (बम्बई के नागपुर जिले में)।

12. मिथिला- तीरभुक्ति (बौद्धकालीन) तिर्हुत= दरभंगा-भागलपुर के भूभाग, राजधानी जनकपुर (नेपाल में)। प्राचीन जनकराज्य= चम्पारन से दरभंगा तक मुजफ्फरपुर से जनकपुर तक।

13. समतट- 24 परगना, खुलना, बेकर गांव (बंगाल में)। इसे सुंदरर बन तथा खजरी - बन भी कहा गया है। यहीं से गंगा की लगभग 15 धाराएँ समुद्र में मिलती हैं। प्रथम धारा 'हुगली' नदी के नाम से, अंत में गंगासागर तीर्थ (सागर टापू) है। इसी धारा

को भगीरथ ने निकाला था।

14. उड्- उड़ीसा प्रदेश। इसे औड या ओद्र देश भी कहा गया है।
15. अश्ववदन- (अश्वमुख) रोहिताश्वगढ़ (बिहार के शाहाबाद जिले में रोहतास)। इसी किले को हरिचन्द्र पुत्र, रोहिताश्व ने बनवाया था। ई. 1553 में महाराज मानसिंह ने दो लाख रुपया खर्च करके, इसका सुधार करवाया था।
16. दन्तुरक- (1) समतट (देखिये नं. 13) (2) दन्तुरा नदी = बैतरणी नदी (बंगाल में) (3) मरगुईआर्च (बर्मा में) (4) जगन्नाथपुरी (उड़ीसा में)। यहाँ बुद्ध के रखने का स्थान और कलिंग राजधानी रही थी। यहाँ बुद्ध के दाँत रखने के कारण 'दन्तपुर' नाम था, ई. 318 में जगदीशमूर्ति प्रगट हुई थी; तब जगन्नाथपुरी नाम पड़ा।
17. प्रागज्योतिष- (प्रागज्योतिषपुर) गोहाटी (आसाम में)। यहाँ कामरूप देश की 'कामाख्या ' देवी है। 51 पीठों में से एक पीठ महाक्षेत्र है। यहाँ सती की योनि गिरी थी। आनन्दाख्य, प्राचीन मंदिर ई. 1564 में कालापहाड़ ने तोड़ डाला था। यह नवीन मंदिर, कुचबिहार - नरेश ने बनवाया था। तंत्र साधना का प्रमुख स्थान है।
18. लौहित्य- (लोहित्य = लोहित) लौहित्यगिरि से निकलने वाली लोहित नदी अथवा ब्रह्मपुत्र की सहायक नदी (पूर्वी आसाम में)।
19. क्षीरोद- ब्रह्मपुत्रनद। "उत्तरे हिमवत्पार्श्वे क्षीरोदो नाम सागर:। आरब्धं मन्थनं तत्र देवदानवपूर्वकैः ॥" इस क्षीरोद की प्रसिद्धि 'क्षीरसागर' है; किंतु यह श्री विष्णु का शयन स्थान नहीं था। इसे क्षीरोद सागर कहना चाहिए। श्री विष्णु लक्ष्मी के निवास का क्षीर सागर 'अदन' (अरब) में था।
20. समुद्र- (शिव सागर)। यह समुद्र शब्द क्षीरोद के साथ भी है। यदि अलग माना जाये तो शिव-सागर टाउन, पूर्वोत्तरी आसाम का रेलवे स्टेशन है।
21. पुरुषाद- (महाभारत में एकचक्रा नगरी) मानव-पक्षी बकासुर 'आरा' (बिहार) में, भीम द्वारा मारा गया। आरा में बुद्ध के समय में भी 'मानव भक्षी' रहते थे। 'अद् भक्षणं' धातु से युक्त=पुरुष+अद शब्द है। इसे पुरुष भक्षक भी लिखा गया है।
22. उदयगिरि- (1) भुवनेश्वर (उड़ीसा) से 7 मील पूर्व एक पर्वत। इसे कुमारीगिरि भी कहा गया है। (2) मध्यप्रदेश के भेलसा से 5 मील पश्चिम। चूँकि उदयगिरि शब्द पूर्व दिशा में कहा गया है, इसलिए कुमारीगिरि ठीक है।
23. भद्र- (1) शोणभद्र नद। (2) भद्रेश्वर= अनामदेश (इण्डोचायना) के 'मी-सोन' गाँव में। (3) भद्रेश्वर (बंगाल में) (4) भद्रकच्छ=शाहाबाद-पटना (बिहार में) (5) भद्राक्ष (उड़ीसा में)। तथ्यत: 'भद्र' शब्द से शोणभद्र तटवर्ती (भद्रकक्ष) प्रदेश समझिए।
24. गौडक- पूर्व गौड़ देश= बंगाल के ढाका, पाबना, बोगरा, फरीदपुर, राजशाही के भूगाग। राजधानी लखनौती (लक्ष्मणावती), मालदा जिले में। (पुरुषपरीक्षा तथा अद्भुतसागर में वर्णित गौड़ देश, मारवाड़ को न समझिए)। "बगदेश समारभ्य भुवनेशान्तगं शिवे। गौड़देश: समाख्यातः सर्वविद्याविशारदः॥" स्कन्दपुराण। लक्ष्मणापुरी= लखनौती। अद्भुतसागर = (बल्लालसेनदेव विरचित मेदिनीय ज्योतिष ग्रंथ)। उत्तर गौड़, दक्षिण गौड़, पश्चिम गौड़ देश भी बताये गये हैं, किंतु यहाँ केवल पूर्वदेशीय 'गौड़' लिखना ही आवश्यक है।
25. पौण्ड- बंगाल के बांकुरा-मिदानपुर का भूभाग। किसी समय गौड़ देश भी सम्मिलित था। पुण्डवर्धन (पूर्णवर्धन) के समय, राजधानी 'पाण्डुआ' (बंगाल के मालदा से 6 मील उत्तर) में थी। कोटिवर्ष या पुण्डवर्धनभुक्ति (बौद्धकालीन) = बंगाल के राजशाही-दीनाजपुर के भूभाग में।
26. उत्कल- उड़ीसा प्रदेश।
27. काशी- वाराणसी में, काशीराज्य की राजधानी थी। काशी = एक राज्य (यह नगर नहीं)। किंतु वर्तमान में काशी शब्द वाराणसी में सीमित है। विभिन्न समय में काशी राज्य की सीमाएँ, परिवर्तित होती रही हैं। स्थूलता से वाराणसी जिले का भूभाग समझिए। धन्वन्तरि (आयुर्वेदज्ञ) के वंशज, दिवोदास (प्रथम) ने वर्तमान वाराणसी को बसाया था। दिवोदास वैष्णवधर्मी था। इन पर शैवधर्मी हैहय वंशज भद्रसन ने अभियान किया था। काशी के विषय में अनेकों पृष्ठ लिखे जाएँ तो

भी उल्लेख पूर्ण न होगा।

28. मेकल- अमर कण्टक पर्वत (बघेलखण्ड में)।
29. अम्बष्ठ- (1) ससरामा (बिहार के शाहबाद जिले में) (2) अम्बष्ठ = एक जाति (ब्राह्मण-पुत्र और वैश्य कन्या से उत्पन्न संतति) (अमरकोष) (3) अम्बिकेश्वर = ताम्रलिप्ति= तमलुक (बंगाल के मिदनापुर जिले में)।
30. एकपद- देखिए नं. 21 पुरुषाद। आरा को एकचक्रा, एकपाद, एकचरण समझिए। (2) एकपद=पंगुदेश=कटापाद (उड़ीसा के कोटापुट जिले में, इंद्रावती नदी के दक्षिण)।
31. ताम्रलिप्ति- देखिए नं. 5 (सूक्ष्म=सुह्म)।
32. केशलक- महाकोशल = महानदी के तट पर, उड़ीसा के सोनपुर में राजधानी, नागराज 'मण्टराज' का उड़ीसा के सन्बलपुर के भूभाग में राज्य था।
32. बर्धमान- बर्दवान (बंगाल का एक जिला)।
34. पूर्वदेश- पूर्वोक्त सभी स्थानों के सहित पूर्व देश की सीमा- "प्रयाग से अराकान तक (पश्चिम से पूर्व) और बिहार (दक्षिण), उत्तरी बंगाल तथा उड़ीसा का कुछ भाग मिलाकर होता है।" कुछ स्थान सीमा-गत होते हैं, जिनका वर्णन, पुन:-पुन: आ जाता है।

आग्नेय देश (3)

(रो. ह. श्र. = चन्द्र)

1. कौशल- महाकौशल=दक्षिण कौशल (मध्यप्रदेश के बिलासपुर, रायपुर और उड़ीसा के सम्बलपुर)। श्रीराम के मातामह सुदास की राजधानी रायपुर जिले के श्रीपुर में थी।
2. कलिंग- (1) मद्रास के उत्तरी सरकार जिले में) उड़ीसा के दक्षिण और द्रविड़ के उत्तर पूर्वी समुद्र के तट तक) प्राचीन राजधानी दन्तपुर (जगन्नाथपुरी) में थी। कालिञ्जर (बौद्ध कालीन)=कलिंगनगर=भुरुनेश्वर) (उड़ीसा के पुरी जिले में)।
3. बंग- दक्षिणी बंगाल महानदी का भूभाग (यह देश, आग्नेय की उत्तरी सीमा का देश है)।
4. उपबंग- (1) गंगा डेल्टश के पूर्व का मध्य भाग (बंगाल में)। (2) मैमन सिंह (3) सुन्दरवन (4) बन्दरवन (चटगाँव से पूर्व)। ये देश आग्नेय की उत्तरी सीमा के देश हैं। बंगाला= आसाम।
5. जठरांग- (अंगदेश का मध्य भाग) गंगा से हिमालय तक। अंग देश (बिहार से भागलपुर और मुंगरे के भूभाग में था, राजधानी चम्पा =भागलपुर से 4 मील)। यह भी उत्तरी सीमा का देश है।
6. शौलिक- (शूलिक) स्थान-भ्रष्ट पाठ है। केवल काशी को समझकर सीमा देश रखिए।
7. विदर्भ- बरार, खानदेश, हैदराबाद, मध्यप्रदेश के भूभाग। राजधानी (1) कौडिन्यपुर = कुण्डिनपुर = कुण्डलपुर (वर्धा-अमरावती के मध्य, आर्वी से 6 मील) (2) बीदर (विदर्भपुर) हैदराबाद में। इक्ष्याकुवं शी अज की पत्नी (इंदुमती), निषधराज नल की पत्नी (दमयंती) और श्री कृष्ण की पत्नी (रुक्मिणी) इसी विदर्भ के नरेशों की कन्याएँ थीं।
8. वत्स- (पाठ-भ्रष्ट) इसे वत्सगुल्म समझिए। वत्सगुल्म= बासिम (बरार के अकोला जिले में)। वत्स-ग्राम (देखिए नं. 8 मध्यप्रदेश)।
9. आन्ध्र (1) मद्रास के गोदावरी और कृष्णा जिले में (2) तेलगांना= निमगिरि और तेल नदी के मध्य, अन्ध्र पुर में राजधानी थी, बाद में काजीपेट से 6 मील, बारंगल (एकशिला नगरी) में राजधानी हुई थी।
10. चेदिक- (1) राजधानी चन्देली (ग्वालियर) में, शिशुपाल - राज्यकाल। (2) त्रिपुरी = तेवर (मध्यप्रदेश के जबलपुर से 10 मील पश्चिम)। बुंदेलखंड और मध्यप्रदेश में राज्य था। यह राज्य, दाहल (डहल) और महाकौशल नामक दो भागों में था। दोनों राजधानियों का नाम 'चेदिनगरी' रहा था। बाद में दो राजधानियाँ और हुईं (1) नगरीवा (नर्मदा तट पर), (2) मणिपुर (सिरपुर में)।
11. ऊर्ध्वकण्ठ- महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा के गंजाबभ जिले में)।

12. वृष- (1) भोगनंदीश्वर (मैसूर के नंदी स्थान में)। किंतु यह स्थान आग्नेय दिशा में नहीं हो सकता। (2) बिहार के राजगिर में वृषभ पहाड़ी। यह स्थान यथाकथंचित् होना संभव है।
13. नारिकेर- (1) उड़ीसा में नारियल उत्पादक क्षेत्र। (2) नेकोवार टापू।
14. चर्मद्वीप- अण्डमान टापू।
15. विन्ध्यान्तवासी- बुन्देलखंड-बघेलखंड, विन्ध्य-भारत (विन्ध्याचल के देश)।
16. त्रिपुरी- (नं. 10 देखिये चेदिक)।
17. श्मश्रुधर- (1) जटाधर महादेव (मध्यप्रदेश के पचमढ़ी में)। (2) शुगवंशी पुष्यमित्र काल (ई. पूर्व 184-148) में यूनानी बस्ती, ग्वालियर की सिंधु नदी के तट पर। श्वश्रू = दाढ़ी के बाल।
18. हेमकूट- आग्नेय दिशा में बर्फ या सुवण का कोई पर्वत नहीं है। केवल उड़ीसा में खण्डगिरि है।
19. व्यालग्रीव- (शुद्ध पाठ व्यालग्राव)। शेषाचलम (मद्रास)।
20. महाग्रीव- (शुद्ध पाठ महाग्राव)। महाग्राव= महेन्द्र पर्वत (महेन्द्रगिरि
21. किष्किन्धा- उड़ीसा के विजयनगर के पास, निम्बपुर से एक मील पूर्व एक स्थान (कहते हैं कि यहाँ बालि का शवदाह हुआ था)।
22. अमरकंटक- बधेलखंड में। रेवा-रीवा। इस देश की नदी का नाम भी रेवा है। इक्ष्वाकुवंशी पुरुकुत्स की पत्नी नर्मदा (नाग कन्या) थी। इसके नाम पर, रेवा का नाम, नर्मदा हो गया।
23. कण्टकस्थल- कटक (उड़ीसा)।
24. निषादराष्ट्र- विन्ध्य पर्वत और सतपुड़ा पर्वत के पूर्वीभाग।
25. पुरिक- पुरी (जगन्नाथ) उड़ीसा में।
26. दशार्ण- (देखिये मध्यदेश का नं. 6 संख्यात) यह देश सीमा स्थित समझिये।
27. नग्नपर्ण- नागा पर्वत (जबलपुर-मण्डला फोर्ट के मध्य मार्ग में)।
28. शबरपूर्ण- शरगिरि=रामगिरी=रामटेक (महाराष्ट्र के नागपुर लिजे में)। इसी शैलगिरी (शबरपर्ण) में मठारवंशी शबरादित्य ई. 8वीं शताब्दी में कलिंग नरेश था। (2) प्राचीन शबररण-भुवनेश्वर (उड़ीसा में)।

दक्षिण भाग (4)

(मृ. चि. ध. - मंगल)

1. लंका- वर्तमान सीलोन, राजधानी कोलम्बो (दक्षिणी भारत में)। पुराणमत से 1000 मील लंबी और 300 मील चौड़ी भूमि (लंका की) थी। ज्योतिषमत से शून्य अक्षांश के 75150 पूर्वी देशान्तर पर भी लंका की भूमि या राज्य (क्षेत्र) उस समय में भी होना चाहिये, जब (ई.पू. काल की रचना) सूर्यसिद्धांत की रचना हुई थी। यहाँ पर विभीषण महाभारत युद्धकाल में भी थे। भारत के समान सुमात्रा द्वीप में भी एक स्थान 'लंका' नामक है। लंका दूर देश। इसके - नाम राक्षसपुरी, कुबेरपुरी, लंका, सिलोन (सिंहल द्वीप का अपभ्रंश) है। सुवर्ण-सुंदर (न कि सुवर्ण-धातु)। यहाँ ताँबे की खाने हैं, अतएव ताम्र का उपयोग अधिक, जो कि सुवर्णधातु के समान चमक देता है। यहाँ रामायण-वर्णित तथा अशोक कालीन चिन्ह अभी भी मिलते हैं। ताम्र-पर्णी नदी भी है।
2. कालाजिन- (कृष्णाजिन) (1) कालहस्ती (मद्रास के नीलोर जिले में)। 'आर्द्रनागाजिनेच्छाम्' (मेघदूत (अजिनम्=व्याघ्र-चर्म-कृष्णमृगचर्म। (2) कालिञ्जर-भुवनेश्वर (उड़ीसा)।
3. सौरिकीर्ण- (अन्धकवन) औरंगाबाद- औंध के मध्य (हैदराबाद, दक्षिणी भारत) मारीच-वधस्थल (बम्बई के नासिक से दक्षिण, साईंखेड़ा ग्राम में)।
4. तालिकट- कालीकोट (बम्बई के बीजापुर जिले में)।

5. गिरीनगर- (पर्वन नगर अनेक थे और हैं)। गिरीनगर-गिरनार पर्वत (काठियावाड़ में)।
6. मलर-दुर्दर- (ये दो पर्वत पास-पास हैं)। त्रावणकोर (मद्रास) की पहाड़ियाँ, पश्चिमी घाट का दक्षिणी भाग। 'शैली मलयरदर्दुरौ।' (रघुवंश, रघुदिग्विजय)।
7. महेन्द्र- महेन्द्र पर्वत (उड़ीसा में)।
8. मालिन्द्रय- (1) मलकूट-चोलराज्य (मद्रासी तन्जौर के चारों ओर)। (2) कर्दमान पर्वत (दक्षिण भारत)। (3) मलय पर्वत (त्रावणकोर (मद्रास) में)। मल=परिमल=चन्दन।
9. मरुकच्छ- (पाठ-भ्रष्ट) भरुकच्छ अथवा भूकच्छ (शुद्ध)। भरुकच्छ-भड़ौच (गुजरात में)। भूकच्छ=(1) कच्छ काठियावाड़ के उत्तर))। (2) समुद्र किनारे की भूमि, जो कि लंका के उत्तर, कन्याकुमारी, रामेश्वर आदि दक्षिण-भारत में हैं।
10. कंकट- दण्डकारण्य, महाटवी, महाकान्तार (दक्षिण भारत के बन प्रान्त)। दण्डकारण्य = इक्ष्वाकुपुत्र (दण्ड) का राज्य, राजधानी मधुमत, विन्ध्याचल से जामखंडी तक। महाटवी = पश्चिम घाट से भुवनेश्वर (उड़ीसा) तक अथवा हैदराबाद का भूभाग। महाकान्तर=मही नदी से केन नदी तक, जैसो-राज्य की राजधानी, नचना-गंज (बुंदेलखंड में)। यहाँ नागराज व्याघ्रराज् (व्याघ्रदेव) था।
11. टंकण- (इसके दो अर्थ हो सकते हैं) (1) 'टंक: पाषाणदारण:' (अमरकोष)। टंक-टॉकी (छेनी के द्वारा बनाये गये स्थान-अजंता-एलोरा आदि (औरंगाबाद-हैदराबाद में)। (2) 'टंकणस्तुत्थम्' (निघण्टु)। टंकण-तूतिया-नीलाथोथा। तूतिया, ताम्र खान के पास ही निकलना संभव है, ताँबे का मैल या जंग ही तूतिया होता है; अतएव मद्रास के तूतीकोरन और ताम्रपर्णी नदी का भूभाग एवं लंकी की ताम्रपर्णी नदी का भूभाग। ताम्रपर्णी नदी (1) लंका में। मद्रास के तिन्नोवेली (त्रिनावली) जिले की, ताँबर वाली नदी।
12. वनवासी- बनौसी (बम्बई के उत्तरी किनारा जिले में) श्रीराम का वनवास स्थल। धारवाड़ी कदम्बो की राजधानी।
13. शिबिक- (सीमावर्ती देश) मेवाड़ राज्य राजा उशीनर और शिबि की राजधानी, नागरी (नगरिया), चित्तौड़ से 11 मील पर। कालान्तर (महाराणा प्रतापकाल में चित्तौड़ राजधानी)। वर्तमान में उदयपुर (मेवाड़ की) राजधानी है। सन् 1947 ई. के बाद, भारत की 'राज्य पद्धति' समाप्त कर दी गयी।
14. फरिकार- शेषाचलम और वेंकटगिरि (मद्रास में)।
15. कोंकण- बम्बई प्रांत का दक्षिणी भूभाग।
16. आभीर- ताप्ती से देवगढ़ (झाँसी) तक। यह राज्य कालांतर में कई स्थानों में हुआ है, किंतु इस दिशा में यही भूभाग बताना आवश्यक है।
17. आकर- (खदानों का स्थान, जो कि इस दिशा में अनेक हैं)। आकर (एक राज्य) = पूर्वी मालवा, राजधानी विदिशा (भेलसा, मध्यप्रदेश में)।
18. वेणा- वैनगङ्गा (Wainganga) नदी (मध्यप्रदेश में)।
19. आवन्तक - मालवा प्रांत (मध्यप्रदेश में)।
20. दशपुर- मंदसौर (मध्यप्रदेश में) यह सीमावर्ती देश है।
21. गोनर्द- सुरभिपट्टन=कोयम्बटूर (कुवत्तूर) मैसूर में। यहाँ सुरभि की राजधानी थी।
22. केरलक- (केरल) तुंगभद्रा से कावेरी तक (दक्षिण में), मालाबार (त्रावणकोर-कनारा)।
23. कर्णाट- कर्णाटक (कारोमण्ड, दक्षिण-भारत)।
24. महाटवी- (देखिए नं. 10 कंकट)।
25. विचित्रकूट- (1) चित्रकूट (उत्तर प्रदेशीय बाँदा जिले में)। (2) सह्याचल में)। (3) त्रिकूट (लंका में)। (4) भुवनेश्वर (उड़ीसा में)।
26. नासिक्य- (प्राचीन नाम सुगंधा, यहाँ सती की नाक गिरि थी, 52 मीठों में से एक पीठ-स्थान) नासिक (बम्बई प्रांत में)। यह

पश्चिम-भारत की 'काशी' है। शूर्पणखा के नाक-कान यहीं काटे गये थे। श्रीराम ने वनवास के 10 वर्ष, यहीं पंचवटी में, कुटी बनाकर बिताये थे।

27. कोल्लगिरि- (1) कोडगु (मद्रास में)। (2) कोलाचल (मद्रास के त्रिवेन्द्रम जिले में)।
28. चोल- कारोमण्डल तट, राजधानी कुम्भकोणम।
29. चेर- मालाबार (त्रावणकोर-कोचीन)।
30. क्रौंचद्वीप- (शुद्ध पाठ क्रौंचगिरि)। मल्लिकार्जुन से 24 मील 'कुमारस्वामी' का स्थान - (मद्रास के कृष्णा जिले में) अथवा क्रौंचदुर्ग-हंसदुर्ग (मैसूर के चित्तलदुर्ग जिले में)।
31. जटाधर- (1) (देखिए आग्नेय देश में नं. 17 श्मश्रुधर)। (2) जटातीर्थ (रामेश्वर में एक स्थान)।
32. कावेरी- मद्रास-मैसूर के मध्य एक नदी (इसे अर्धगंगा नदी भी कहा गया है)।
33. ऋष्यमूक- (मद्रास के होसपेट-बिलारी की सीमा वाले, अनागन्दी नामक गाँव से डेढ़ मील पर एक पर्वत)।
34. वैडूर्य- (क) वैडूर्यमणि पर्वत=(1) सतपुड़ा पर्वत (पश्चिमी घाट का उत्तरी भाग) (2) मान्धशथा (दक्षिण-मालवा) टापू (नर्मदा के मध्य) का भूभाग। (ख) वैडूर्यपट्टन=वीदर (दक्षिणी हैदराबाद) यहाँ अरुण ऋषि का आश्रम था।
35. शंख- शंखतीर्थ=(1) रामेश्वरम् में (2) पक्षीतीर्थ में (मद्रास के चिंगलेपुण स्टेशन से 10 मील, समुद्र तट पर)। शंखोद्धार तीर्थ = शंखनारायण = शंखसरोवर (श्री कृष्ण महल से डेढ़ मील) (वेटद्वारका में) श्री कृष्णजी ने अपने गुरु- पुत्र को यहीं (शंखासुर) से छुड़ाया था। वेटद्वारका=कच्छ की खाड़ी में एक टापू। यह सीमावर्ती स्थान है।
36. मुक्ता- (मुक्तागिरि) मेड़गिरि (मध्यप्रदेश के एलिचपुर से 12 मील पूर्वोत्तर) यहाँ केशर वृष्टि रूपी, एक चमत्कार होता है।
37. अत्रि- (इनकी पत्नी का नाम अनुसूया था) (1) चंद्र के पिता, दैत्य-याजक, अत्रि (वेदकालीन) हैं, इनका स्थान, स्वर्गलोक=तपोभूमि=अत्रिपत्तन=आय-वीर्यान्= अज़रबेज़ान (ईरान) में था। (2) श्रीरामकालीन अत्रि का स्थान=न=चित्रकूट (उत्तरप्रदेशी बाँदा जिले में) और गोलगढ़ (काठियावाड़) में दत्तात्रेय-जन्मभूमि। पुरणों में भ्रम= संकलनकर्ताओं की अव्यवस्था। ब्रह्मपुत्र भृगु, भृगुपुत्र अत्रि, अत्रिपुत्र चंद्र, चंद्र पुत्र बुध को, वैवस्वत मनु की कन्या (इला) बियाही थी। इसी वैवस्वत-वंश में, वैवस्वत से 63वीं पीढ़ी में (पुराण मत से 63, 52, 35 बाल्मीकीय, वायुपुराण में 25 पीढ़ी पर) श्रीराम हुए। वैवस्वत से, सूर्यवंश की इतनी पीढ़ी (श्रीराम) तक, बुध के पितामह (अत्रि) कैसे जीवित रहे? असंभव। इसी प्रकार, ओक भ्रमात्मक अर्थ प्रचलित हैं। स्वर्ग आदि के समान, कोई दुर्बोध शब्द आया कि, अध्यापक ने, विद्यार्थी को, आकाश की ओर इंगित कर, शून्य में भटका दिया। क्योंकि, उस अध्यापक ने 'सम्भव- शब्दार्थ' न करने की शपथ खा ली है। यथा-व्यवहार- शून्य ज्योतिषी, मुष्टि-प्रश्न का उत्तर 'मुट्ठी में पाषाण' गोल, छेदयुक्त=चक्की का पाट' बताता है, जबकि व्यवहार-कुशल ज्योतिषी, ऐसे मुष्टि- प्रश्न का उत्तर 'रत्नजटित-मुद्रिका' में देता है। अस्तु।
38. वारिचर- जलगाँव, मछलीपट्टम, लक्कादीव, मालदीव, मिनीकोटटापू (दक्षिणभारत)।
39. त्रिवारिचर- (1) लक्कादीव (लंका का एक खंड)। (2) मालदीव (माली - सुमाली दो भाई थे।) (सुमाली=रावण-मातामह)। दोनों लंका से भगाये जाने पर माली, मालदीव (मालीद्वीप) में रहने लगे और सुमाली ने, सोमालीलैंड (अफ्रीका) और बलिद्वीप (ऑस्टेलिया) में निवास किया था)। (3) मिनीकोय टापू =मैनाक पर्वत (लंका जाते समय, श्री हनुमान ने, इसी पर विश्राम किया था। ये तीनों टापू, मालाबार- कन्याकुमारी, लंका के पश्चिम समुद्र में वर्तमान है।
40. धर्मपट्टन- (1) कालीकट (मद्रास)। (2) धर्मपुर (बम्बई के नासिक से उत्तर)।
41. द्वीप- दोआबा (दो नदियों के मध्य भूभाग को भी कहते हैं। कहीं-कहीं द्वीप (समुद्र के मध्य का भूभाग=टापू) के स्थान में, दो नदियों के मध्य-भूभाग वाले स्थान समझना चाहिए। दक्षिण यात्रा में ऐसे कई स्थान मिलेंगे जो कि द्वीपवत् (दो नदियों के मध्य) हैं। यथा-श्रीरंगम टापू।
42. गणराज्य- चोल, चेर, केरल, पाण्ड्य, पल्लव आदि (दक्षिण- भारत में) इन सभी का 'स्थान बोध' इसी लेख में किया जायेगा।

43. कृष्णबेल्लूर- (शुद्ध पाठ कृष्णा और बेल्लूर) (1) कृष्णा=इस नाम से एक नदी और एक जिला, मद्रास में है। (2) बेल्लूर=बेलपुर=बिल्वपुर=बेल्लूर (मद्रास का एक जिला)। कृष्ण-बेल्लूर भी इसी बेल्लूर का नाम है।
44. पिशिक- (पिथण्ड)। लाँगूल (लॉगल) नदी के पास (मद्रास के दक्षिणी गोदावरी जिले में)। इसी नगर को नष्ट करके, कलिंग-नरेश खारबेल (ई. प्रथम दशाब्दी) ने, कृषि क्षेत्र बनवाया था, तब इसका नाम 'पिशिक' पड़ गया।
45. शूर्पाद्रि- (1) सतपुड़ा पर्वत पर, नासिक के पास, शूर्पणखा का निवास था। (2) दहान या शूर्पारक=सोपारा (बम्बई के थाना जिले में)। सोपारा प्राचीन बंदरगाह था।
46. कुसुम-नग- पुष्पगिरि (मद्रास- रायचूर लाइन पर, नन्दलूर से 35 मील, पेनम् नदी के तट पर)।
47. तुम्ब-वन- (1) तुण्डी (तोण्डी) मद्रास के मदुरा से दक्षिण-पूर्व। (2) भूतपुरी के आसपास (मद्रास के चिंगलेपुण जिले में)। (3) तिण्डक्षवनम् (मद्रास के दक्षिणी अर्काट जिले में)। (4) तूमड़क्ष (चूड़ेश्वर से 2 मील, नर्मदा तट पर)। यहाँ मुद्गल ऋषि ने तप किया था।
48. कार्मण्यक- (इसका सूचक कोई स्थान, किसी भी दिशा में नहीं मिल सका)।
49. याम्योदधि- दक्षिण भारत का महासागर।
50. तापसाश्रम- पण्ढरपुर (बम्बई के शोलापुर जिले में)। इसे ऋषिक+तापसाश्रम कहना चाहिए।
51. ऋषिक- (स्थान - भ्रष्ट), ऋषिक = ऋषिकेश (इसे उत्तर दिशा में होना चाहिए)। ऋषिक देश में हरे घोड़े मिले' (महाभारत, सभापर्व, पाण्डव- दिग्विजय)। (यह दक्षिण देश का नहीं है)।
52. काञ्जी- काञ्जीवरम् (मद्रास से 43 मील दक्षिण-पश्चिम)। रेलवे स्टेशन से 2 मील, शिवकाँची और शिवकाँच से 2 मील, विष्णुकाँची है। ज्योतिषग्रंथ में जो 'पुरी राक्षसी देवकन्याथ काञ्ची...।' आदि पाठ है; वह काञ्ची - काचिन = कोचिन = कोचीन (अपभ्रंश शब्द) हो गया है। संस्कृत वाले शब्द, अंग्रेजी में लिखते ही कितने बिगड़ जाते हैं; यथा-बंगाल का 'चटगाँव' नगर है। किंतु इसे अंग्रेजी में चित्तगंग (Chhittagong) लिखते हैं। मथुरे सरीखे पवित्र नाम को मूत्र (Muttra) लिखते हैं। किंतु अब मथुरा (Mathura) लिखा जाने लगा है; इत्यादि।
53. मरुचीपत्तन- (मरीचिपत्तन या मारीचपत्तन शुद्ध पाठ) 'मारीचोद्भ्रान्त-हारीतामलयाद्रेरुपत्यका।' (रघुवंश, रघुदिग्विजय)। मलयपर्वत = (देखिये नं. 6)। मारीचवास = मारोचपत्तन= मिरजान-गोकर्ण (मद्रास के उत्तरी किनारा जिले में)। मारीचवधस्थल=बम्बई के नासिक से दक्षिण, अकोला गाँव से पश्चिम, साईंखेड़ा गाँव में। (देखिये नं. 3)।
54. आर्यक- (1) अर्काट (मद्रास का एक जिला)। (2) आर्यक= आर्यराज्य = अगस्त्य मुनि का राज्य=नासिक के आसपास था, राजथानी अकोला गाँव में (नासिक से 24 मील दक्षिणपूर्व, प्रवर नदी के तट पर, संगमनेर से दक्षिण-पश्चिम)। (3) पाण्डव (भीम) के ससुर या घटोत्कच के मातामह का नाम भी आर्यक था।
55. सिंहल- लंका राज्य की सिंहली भाषा के (बौद्धकालीन) ग्रंथ, अभी भी मिलते हैं। सिंहल=लंकाराज्य।
56. ऋषभ- (1) ऋषभ राज्य लंका में था (स्कन्दपुराण, शतश्रृंग कथा) (2) ऋषभतीर्थ= गुँजीगाँव उसभतीर्थ (मध्यप्रदेश के शक्ति जिले में)। इसका नाम पुन: ऋषभतीर्थ हो गया है।
57. बलदेवपत्तन- 'नीलाम्बरो रौहिणेयस्तालांको मुसली हली' (अमरकोष) (1) बालाजी (मद्रास के उत्तरी अर्काट जिले में)। (2) मुसलीपट्टम=मछलीपट्टम (मद्रास)। (3) हलेबिद (बेल्लूर से 10 मील, उत्तर -पूर्व, मद्रास में)। (4) काँची (मद्रास से 43 मील दक्षिण-पश्चिम)। (5) कुमा रीतीथएकन्याकुमारी (दक्षिण भारत)। (6) रामेश्वरम (दक्षिण भारत)। (7) श्रीरंगम (मद्रास के त्रिचनापल्ली जिले में) कावेरी नदी के श्रीरंगम टापू में। (8) गिरिनार पर्वत पर। (9) हरन हल्ली, हड़पाना हल्ली (मद्रास में)।
58. दण्डकवन- (देखिये नं. 10 कंकट)।
59. तिमिगलाशन- (तिमिंगल=लघुमत्स्य), (1) तेलगांना = तैलंग = आंध्र (देखिये नं. 9 आंध्र, आग्नेयदेश में)। (2) तैमिंगलतीर्थ (बदरीनाथ मंदिर के पीछे वाले पर्वत पर, नरनारायणश्रम के पास, उत्तरप्रदेश के गढ़वाल जिले में, किंतु यह

स्थान इस दिशा में नहीं हो सकता)। (3) मत्स्या=माछना नदी (बैतूल, मध्यप्रदेश में)।

60. भद्र- सोनमद्रनद (सीमावर्ती)।
61. कच्छ- (1) समुद्रतट की भूमि। (2) भद्रकच्छ (देखिये नं. 23 पूर्वदेश के भद्र का नं. 4)।
62. कुञ्जरदरी- (1) एलीफेण्टा (बम्बई में)। (2) हाथीगुफा (खारबेल की) भुवनेश्वर के पास, उदयगिरि में (उड़ीसा के पुरी जिले में)।
63. ताम्रपर्णी- (देखिये नं. 11 टंकण)।
64. दक्षिणदेश- नर्मदा से लंका तक, बरार, दक्षिण मध्यप्रदेश, मद्रास, आंध्रप्रदेश, बम्बई, कर्नाटक, लंका।

नैऋत्य देश (5)

(आर्द्रा. स्वा. शत. = राहु)

1. पल्हव- (स्थानभ्रष्ट तथा पाठभ्रष्ट)। पल्हव - राजधानी काबुल (अफगानिस्तान) में थी, अतएव स्थान-भ्रष्ट। यदि शुद्ध पाठ पल्लव माना जाय तो पल्लव राज्य-पेन्नार-पेलूर नदियों के मध्य, राजधान काञ्जीवरम् (मद्रास)। तो भी स्थान-भ्रष्ट। यदि शुद्ध फाठ, पलक्क माना जाय तो पलक्क राज्य= नीलोर= मैसूर के मध्य राजधानी तमकुर (मद्रास)। तो भी स्थानभ्रष्ट। यह शब्द दक्षिण या वायव्यदेशी हो सकता है।
2. काम्बोज- काम्बे (खम्भात की खाड़ी, गुजरात में)।
3. सिन्धु- सिन्धञनद का दक्षिणी भाग, पश्चिमी हैदराबाद (कराँची), सिन्ध देश (पाकिस्तान) का दक्षिणी भाग।
4. सौवीर- पंजाब के मुलतान जिले का भूभाग। सिन्धञनद और समुद्र के दोआबा में सेहवाँमोहनजोदारो। सिन्धु-सौवीर नरेश 'जयद्रथ' पाण्डवकालीन था। यूनानी भाषा में 'महान जयद्रथ' को मोहनजोदरो लिखा, उसे अंग्रेजी में लिखा गया, तब मोहनजोदरो मोहनजोदारो हो गया। महान का मोहन हो गया। यथा -महान (Mohan मँहान्) जयद्रथ का जोद्रथ, बाद में जोद्रथ का जोदड़ो बन गया (Jodartho) अंग्रेजी में जोदार्थो लिखा गया, भाषान्तर तथा उच्चारण भेद से अपभ्रंश हो गया। अंग्रेजी में 'गायत्री मंत्र' 'गायटी मन्ट' (Gayatri-Mantra)। सतना (Satana) नामक स्थान को सटाना, सटना, साटना, सटन, सटान आदि प्रकार से उच्चारण बनता जाता है इत्यादि। आर्यमतावलंबी किसी अंग्रेज की शुद्धि कर, हिन्दू बनाकर, यदि गायत्री मंत्र का उपदेश करें तो आजीवन शुद्ध उच्चारण न कर सकेगा; इत्यादि।
5. बड़रामुख- लालसागर (रेड-सी, अरब के दक्षिण)।
6. आरव- अरब देश (आ समन्तात् रवं शब्दं भवन्ति कुर्वन्ति वा यत्र स. आरवो देश:)। ऊर्व के पुत्र, और्व का अपभ्रंश, आरव हो गया। (भृगु-पुत्र च्यवन की शाखा में ऊर्व हुये थे) आरव, अरबी भाषा में सूर्य को कहते हैं। अरब में आदित्यगणों का राज्य था। विष्णु-लक्ष्मी का निवास स्थान, अदन (अरब) में था। शेषनाग का राज्य लालसागर तट पर था। विष्णु (द्वादश आदित्यों में से एक सर्व लघु आदित्य) ने, शेषनाग को विजित कर, राज्य तथा कन्या (लक्ष्मी) ले लिया। शेषशय्या का अर्थ ही है कि शेषनाग को पराजित किया। शिव ने नाग- जाति से मित्रता कर, हिमाचल (नागराज) से कन्या (पार्वती) और कुछ राज्य-भूभाग 'कैलाश' लिया। शिव के भूषण-रूप, नागों का रहना, मित्रता का लक्षण है।
7. अम्बष्ठ- (1) गिरनार पर्वत का सहस्राभ्रवन=कहसावन (काठियावाड़ में)। (2) गिरनार पर्वत पर अम्बा देवी का प्रसिद्ध स्थान है, इन्हें सनातनी तथा जैनी, दोनों पूजते हैं। (3) अमरेली (गुजरात में बड़ॉदा के निकट)। (4) अमरेली (द्वारिकापुरी के पास, काठियावाड़ में)। (5) अम्बिका नदी (गुजरात के सूरत जिले में)।
8. कपिलनारी मुख- (कपिल ने कभी विवाह नहीं किया, फिर 'कपिलनारी' कैसे? (शुद्धपाठ कपिलधारा) (1) बम्बई के नासिक से 24 मील पर, कपिलधारा नामक गाँव। (2) नर्मदा-उद्गम से मील, पश्चिम घुटीपारी के पास, कपिलधारा। (3) ब्रह्मपुरी- विष्णुपुरी के मध्य, कपिलानर्मदा का संगगम है (दक्षिण मालवा के मान्धाथा टापू में)।
9. आनर्त- (1) ऋतु- रहित देश = वृष्टि-रहित देश= मरुस्थल = राजस्थान का रेगिस्तान। (2) उत्तरी गुजरात में राज्य

(राजधानी अनंतपुर)। (3) गुजरात और मालवा (राजधानी द्वारिकापुरी)। (4) काठियावाड़-गुजरात (राजधानी चमत्कार नगर उ =आनंदपुर=बड़ा नगर, उत्तरी गुजरात में) इसी 'नगर' के निवासी 'नागर - ब्राह्मण' वर्तमान में पाये जाते हैं। नं. 3 में वैवस्वत मनु के पुत्र, शर्याति का राज्य था शर्याति-पुत्र आनर्त था। आनत की बहिन सुकन्या (च्यवन ऋषि की पत्नी) थी। आनर्त के नाम पर, यह देश था।

10. फेनगिरि- सिन्धञश्रद के मुहाना के पास एक पर्वत (सिन्ध-कराँची)।
11. यवन- (1) यमन प्रांत (अरब में), प्रसिद्ध हातिमताई, यहीं का था। (2) यवनपुर =जूनागढ़ (काठियावाड़ में)।
12. माकर- माकरान (बलूचिस्तान-पाकिस्तान में)।
13. कर्णप्रावेय- (कर्णप्रावरक) पिण्डारक- तीर्थ (द्वारकापुरी से 16 मील पूर्व, गोलगढ़ के पास, काठियावाड़ में)।
14. पाराशर- परसिया (ईरान) देश। पारे (सिन्धुपश्चिमभागे) आशर: = पाराशर=पाराशरः। "राक्षस:कौणपः क्रव्यात्, क्रव्यादोऽस्रप आशरः।" (अमरकोष) पाराशर=पारस्य= पारसिक=पासीक=पारसी = ईरानी (समानार्थवाची शब्द)।
15. शूद्र- (सोरडवॉय=सोडाय, ग्रीक=यूनानी भाषा में) सिन्ध के दक्षिणी भाग में, पंचनद के नीचे, सरस्वती के काठे में। पंचनद= स द= सतलज या चिनाब से, सिन्धुनद के संगम के पास। इसी भूभाग में अर्जुन को लूटकर, भीलों ने कृष्ण-पत्नियाँ हरण की थीं और अर्जुन का वश न चला था। अर्जुन की विवश स्थिति का स्थान।
16. बर्बर- घटोत्कच-पुत्र बर्बरी की तपस्या का स्थान=स्तम्भतीर्थ = काम्बे = खम्भात की खाड़ी (गुजरात में)। स्तम्भ=खम्भ=खम्भात अपभ्रंश हो गया। कहीं बर्बर- किष्किन्धा भी लिखा पाया जाता है। परन्तु किष्किन्धा का स्थान-वर्णन 'आग्नेय देश' में हो चुका है। हाँ; इस दिशा में हो, बर्बर- किष्किन्धा का स्थान ठीक रहेगा।
17. किरातखंड- कराँची (वर्तमान पाकिस्तान का एक प्रसिद्ध नगर)।
18. क्रव्यास्य- क्रव्यास्य (क्रव्यस्य आस्यमिवास्यं यस्य सः) क्रव्य= राक्षस (अमरकोष)। क्रव्यास्य = (1) रावण काल में 'जनस्थान' (बम्बई के नासिक के पास)। (2) वर्तमान में बलूचिस्तानपाकिस्तान। (3) क्रव्य+आस्य=अग्नि-मुख-परसियन खाड़ी (लालसागर का मुख)।
19. आभीर- (1) सिन्धनद के पूर्व (पंचनद के नीचे) (2) सोमनाथ-पाटन के पास, गुजरात का भूभाग (काठियावाड़ में)।
20. चंचूक- द्वारिका का उत्तरी भाग (काठियावाड़ में)।
21. हेमगिरि- यह स्थान उत्तर में होना चाहिए (यहाँ स्थान-भ्रष्ट है); अथवा दक्षिण बलूचिस्तान पाकिस्तान।
22. सिन्धु- (1) सिन्धुनद (सिन्ध-प्रांत में) (2) पश्चिमी समुद्र। (3) सिन्ध प्रान्त पाकिस्तान।
23. कालक- इस स्थान को मध्यदेश में होना चाहिए; अथवा कालक-कलहज = कर्बला (इराक में)।
24. रैवतक- (रेवत पर्वत) गिरनार पर्वत (काठियावाड़ में)।
25. सुराष्ट- (1) सूरत (बम्बई प्रांत में)। (2) सौराष्ट= काठियावाड़ (वेदवर्णित शब्द)।
26. बादर- मुकल्ला (अरब के हादरामौत में)।
27. द्रविड़- (अनावश्यक स्थान में वर्णित शब्द)। द्रविड़-मैसूर से कन्याकुमा री तक। किंतु यह स्थल, इस दिशा में, नहीं हो सकता। प्राचीन द्रविड़इ- स्थान, सिन्धुनद के पश्चिम भाग में था। किंतु सर्वमान्य नहीं।
28. महार्णव- महासागर। किंतु यह दक्षिण दिशा में ही उपयोगी है। यहाँ नहीं।
29. नैऋत्यदेश- गुजरात और काठियावाड़ तथा पाकिस्तान के सिन्ध- प्रान्त का दक्षिणी भाग है।

पश्चिम देश (6)

(उषा. अनु. उभा. = शनि)

1. मणिमान्- (1) यज्ञ- पर्वत (पुष्कर-अजमेर में)। (2) मणिमयपुर = इल्वलपुर- इलोरा की गुफाएँ (किंतु यह स्थान, इस दिशा में नहीं हो सकता)। (3) मान्धाताटापू (नर्मदा के मध्य, दक्षिण मालवा में) इसे वैडूर्यमणिपर्वत कहा गया है। अतएव इसे

नैऋत्य - दक्षिण-पश्चिम का सीमावर्ती कहा जा सकता है।

2. मेघवान्- (1) मेघसानु=मेहसना पर्वत (दक्षिण मालवा में)। (2) मेघकर तीर्थ (खामगाँव से 50 मील)।
3. वनौघ- (1) पश्चिमी - भारत के वन-प्रान्त। (2) बोलनघाटी।
4. क्षुरार्पण- खुरासान (इलावर्त=ईरान वाला)।
5. अस्तगिरि- (1) आबू पर्वत (2) सुलेमान पर्वत; इसे शल्यमान् कहा गया है।
6. अपरान्तक- (अपरान्त) (1) कोंकण-मालाबार (किंतु ये, इस दिशा में अनावश्यक हैं)। (2) मस्कत (अरब के पूर्व - दक्षिण, समुद्रतट पर)।
7. शान्तिक- (1) सांची (भेलसा के पास, मध्यप्रदेश में)। (2) शान्तिधाम=बद्रीनाथधाम (गढ़वाल उत्तरप्रदेश) (3) शान्तिपुर = (क) शोणितपुर (उत्तरप्रदेश के कुमायूं में) (ख) बियाना (भरतपुर, राजस्थान) (ग) विजय-मन्दरगढ़ (बियाना से 6 मील)।
8. हैहय- खानदेश, औरंगाबाद, दक्षिण मालवा (राजधानी मान्धशथा टापू में, नर्मदा के मध्य)।
9. प्रशस्ताद्रि- (1) आबू पर्वत (सनातन तथा जैन तीर्थ) (2) सुलेमान पर्वत (यहाँ शल्य का राज्य था, इसे शल्यमान् कहा जाता था, जब से मुस्लिम राज्य हुए, तब से भाषान्तर के कारण सुलेमान कहने लगे। शल्य की कथाएँ और सुलेमान की कथाएँ एक समान सूर्य और आद (आद=आदम=आदिम= आदित्य) की कथाएँ एक समान, पार्वती और हौवा की कथाएँ एक समान मूक्र मन्दिर और काबा की कथाएँ एक समान मिलेंगी। यदि मुस्लिम-धर्म का, आदिम रूप अध्ययन करें तो आपको शैवधर्म का रूप, ज्ञात होने लगेगा; केवल भाषा-भेद है। काव्य (शुक्र) मंदिर को आज, काबा (मक्कानगर का मुस्लिम-तीर्थ) कहते हैं; इत्यादि।
10. बोक्काण- मक्का (अरब में)। इस नगर में भग (आदित्य) और मुनियों के मंदिर ई. 7वीं शताब्दी तक थे।
11. पंचनद- पंजाब की पाँचों नदियाँ मिलकर, जहाँ एक (चिनाब या सतलज) हो जाती हैं, उस स्थान से, सिन्धञनद के संगम तक के मध्य की भूमि को, पंचनद देश कहा गया है। ऑक्सफोर्ड एटलस (इंग्लिश) में 'पंचनद' मुद्रित है। खैरपुर, अलीपुर, सितपुर, अहमदपुर आदि। सिन्धु से यमुना तक (उत्तरी अखंड भारत) को 'सप्त- - सिन्धु' कहा गया है।
12. रमट- बलूचिस्तान (पाकिस्तान)।
13. पारत- ईरान देश। इसे पारद भी कहा गया है।
14. तारक्षितिजांग- (तारक्षितिश्रृंग) तालरपर्वत और तारखाँ (तूरखाँ), दक्षिणी बलूचिस्तान (पाकिस्तान में)।
15. वैश्य- महाजन (बीकानेर में)।
16. कनक- कनकशृंगा=उज्जैन (मालवा में)। यहाँ दोनों कनक (सुवर्ण और धतूर) की बहुतायत थी। श्री महाकालेश्वर की सेवा के लिये, दोनों की आवश्यकता रहती थी। पौराणिक आख्यात को इससे भिन्न प्रकार के हैं।
17. शक- (1) शकस्थान=सीसताँ (ईरान-अफगानिस्तान की सीमा पर)। (2) शकद्वीप = लरकानानवाबशाह (सिन्ध प्रान्त पाकिस्तान)। (3) शकराज्य- तक्षशिला (रावलपिण्डीपाकिस्तान) से दक्षिण भारत तक समय-समय पर रहा है। ई. पूर्व 71-57 वर्षों के मध्य स्यालकोट (पाकिस्तान) से उज्जैन तक, शकों का राज्य था। ई. 78 में, शक राजा चाष्टन ने, विक्रमादित्यवंशी रामदेव को परास्त कर, उज्जैन से काठियावाड़ तक, राज्य किया। पंजाब के स्यालकोट को, शल्य (पाण्डरुखालीन) ने बसाकर शल्यकृत (स्यालकोट, अपभ्रंश शब्द) नाम रखा था। इसी शल्यकृत को बौद्धग्रंथों में शाकलद्वीप-शागल आदि लिखा गया। ई.पूर्व 71 वर्ष के लगभग रसालू (शालिवाहन) ने स्यालकोट में राजधानी बनायी थी। वर्तमान में शक= शोके लोग, 'भोटिए' नाम से मानसरोवर के आस पास रहते हैं और काठगोदाम के मार्ग से, भारत में प्रवेश कर व्यापार भी करते हैं।
18. निर्मयदिम्लेक्ष- पठानिस्तान (पाकिस्तान के सीमाप्रांत में)। शेख, सैयद, मुगल, पठान नामक चार भेद से, आपके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की भाँति होते हैं। मलेक्ष=आर्येतर जाति। निर्मर्याद=शूद्रवत। यदि आप महाभारत के कर्ण पर्व में कर्ण का सारथी, शल्य होने पर; इनका परस्पर कटुवार्तालाप पढ़िए तो आपको ज्ञात हो जायेगा कि शल्य और पठानों की संस्कृति में

कोई भेद नहीं है। शल्य, बाल्हीकपति भी था। बालहकी बलख (अफगानिस्तान में)। बलख से व्यास तट तक, बाल्हीक देश था। (शल्यकालीन बाहीक अखण्ड भारत का अविभाजित पंजाब प्रांत है।

वायव्य देश (7)

(अ.म.मू. =केतु)

1. माडण्व्य- (देखिये मध्यप्रदेश का नं. 3)।
2. तुषार- तुषारो शीतलो शीत: हिम: (अमरकोष)। (1) बुखारा (उजबक, दक्षिणी रूस में) (2) बलख, बदख्शाँ, यूहेशी (अफगानिस्तान में)।
3. तालहल- (1) तालतोषक= तिब्बत प्रांत (2) तालहल = (क) तालर पर्वत (ख) ताब्रिज की व्यूबर झील (ग) वुलर झील और नमकसर।
4. हल- (यदि ताल+हल=तालहल समझा जाय तो) हल = हलक्षेत्र = कुरुक्षेत्र (देखिए नं. 24 कुरु, मध्यप्रदेश में)। ताल शब्द के उपर्युक्त नं. 3 समझिए।
5. मद्र- (देखिये मध्यदेश का नं. 1)।
6. अश्मक- स्वात घाटी के दक्षिण (पेशावर, पाकिस्तान प्रदेश), राजधानी पुष्करावती (गन्धर्व=गान्धार राजधानी) गन्धर्वराज-कन्या, चित्रांगदा (रावण की द्वितीय पत्नी) थी। गन्धर्वों ने, भरत के मामा (युधाजित्) को मार डाला, तब भरत और भरतपुत्र पुष्कर ने, गन्धर्वों को पराजित कर, पुष्कर के नाम पर पुष्करावती राजधानी हुई थी। देखिए बाल्मीकीय। पुष्कर के भाई, तक्ष ने तक्षशिला (रावलपिण्डी) के पास बसाया था। तक्षशिला (पाकिस्तान) - महाविद्यालय, मौर्यकाल में प्रसिद्ध था। विद्यालय के प्रधानाध्यापक, चाणक्य थे। चरक (आयुर्वेदनिष्णात), पुरुषपुर-पेशावर के निवासी थे।
7. कुलूत- (1) हिमाचल प्रदेश के शिमला- समीप का पहाड़ी देश (कुल्लू पहाड़ी प्रसिद्ध)। (2) व्यास-रावी के मध्य (व्यास - तट पर कुलूत (कुलुध) था और रावी - तट पर उदुम्बर (औदुम्बर) था)। (3) गढ़वाल और सहारनपुर का भूभाग। (4) हिमालय में बन्दर पूंछ श्रेणी पर, पहाड़ी श्रेणी पर, पहाड़ी देश। इसे कुलिन्द=कुलूत=कुलुध=कौणिन्द=कुनिन्द कहा गया है।
8. लहड़- (1) लाहुर (लाहुड़), पाकिस्तान के, पेशावर जिले में लाहड़ी जाति का स्थान। व्याकरणप्रणेता पाणिनि (ई. पूर्व 700 वर्ष) का जन्मस्थान। (2) लाहौर (यह सर्वमान्य नहीं)।
9. स्त्री-राज्य- कुमायूं-गढ़वाल (उत्तरप्रदेश)। कुरुक्षेत्र - युद्धकाल में, यहाँ की शासिका 'अमिला' थी।
10. नृसिंहवन- (1) कटाक्ष के आसपास। कटाक्ष= कटासराज (पाकिस्तान के झलम जिले में)। नरमसिर (नृसिंह) = ईरान के परसा प्रांत में। (3) नृसिंहमंदिर = जोशीमठ (उत्तरप्रदेश गढ़वाल जिले) में। (4) नृसिंहावतार=(क) कटाक्ष (ख) मुलतान (पाकिस्तान)।
11. खस (खस्थ)- (1) शाखरुद, ईरान। (2) खास्त - स्वात (सीमा प्रांतीय उत्तरी वजीरिस्तान (पाकिस्तान) के उत्तर)।
12. वेणुमती- वंक्षु = आक्स नदी (उत्तरी अफगानिस्तान में)।
13. फल्गुलुका- (शुद्ध पाठ फल्गुतीर्थ) फलकीवन= फरल गाँव, शुक्रतीर्थ के पास, कुरुक्षेत्र में। इसे सोमतीर्थ भी कहा गया है (हरियाणा के थानेसर से 17 मील दक्षिण-पूर्व)।
14. गुरूहा- गुरुशिखर, आबू पर्वत में (राजस्थान के सिहोरी जिले में)।
15. मरुकुत्स- मरुक्+उत्स। उत्स: प्रस्रवणम् (अमरकोष)। (1) आबू पर्वत। (2) साँझर झील।
16. चर्मरंग- चामरान (राजस्थान) में। चामड़िया जाति के मारवाड़ी होते हैं। वैसे, किसी पुराण या इतिहास- ग्रंथ के द्वारा यह स्थान नहीं मिल सका।
17. एकविलोचन- (एकाक्ष=शुक्रस्थान=मक्का (अरब) में)। एकविलोचन

18. दीर्धग्रीव, 19. दीर्घास्य, 20. दीर्घकेश- दीर्धग्रीव (दीर्धग्राव शुद्ध पाठ), दीर्घास्य, दीर्घकेश - ऐसे 4 शब्द, बृहत्संहिता में, यहाँ लिखे पाये जाते हैं। किंतु इतिहास के पृष्ठों में, बहुत चक्कर के बाद अर्थात् अखामनीवंशीय तृतीय सम्राट दारायवुस (दारियस ई. पूर्व. 522-486 वर्ष) के दरबारी यूनानी सैनिक, करयाण्डश का स्काईलाक्ष (ई. पूर्व 517) ने, भारतीय सिन्धु घाटी की खोज में, जो डायरी बनायी थी, उसमें एकाक्ष लोग, दीर्घग्रीव लोग, दीर्घास्य, दीर्घकेश लोगों के स्थानों का वर्णन लिखा था। अखामनी राज्य, परसिया में था। लम्बाक्ष, लम्बोदर, लम्बग्रीव, लम्बकेश नामक शिव-पुत्र, हरिद्वार में (वायु 23)। शब्दों के अर्थ पर, ध्यान देने से पता चलता है कि ये सभी स्थान सिन्धघाटी में ही होना चाहिए। अतएव, एकविलोचन=एकाक्ष= फरह (Forah) नदी (रमलशास्त्र में फरह, शुक्र को कहा गया है) बलूचिस्तान को बालोक्ष=बालाक्ष=बालाक्षि कहा गया है। इसी प्रका सिन्धु घाटी वाले दीर्घग्राव = हिन्दूकुश पर्वत, दीर्घास्य = खैबरघाटी, दीर्घकेश= पठानिस्तान समझिए। दीर्घग्रीव, दीर्घास्य, धीर्घकेश आदि के अर्थ-बोधक व्यक्तियों का बाहुल्य, सीमाप्रांत (पाक) में वर्तमान है।

21. शूलिक- (1) शूली बनाने वाले, शूली देने वाला दण्ड त्रवधान, सामाप्रान्त (पाकिस्तान) से ही प्रचार हुआ। जैसे, त्रिशूल में तीन फल, नुकीले होते हैं; वैसे ही शूली में एक ही फल, नुकीला होता है। शूली पाने वाले अपराधी को शूली में चढ़ा देते थे अर्थात् शूली की नोक पर अपराधी की गुदा रखते थे और तब अपराधी का शरीर - भार, नीचे आता-जाता था, अन्ततोगत्वा, शूली, गुदा से छिदकर, मस्तक फोड़कर, ऊपर निकल आती थी। माण्डव्य ऋषि, शूली में चढ़ाये गये थे। सती-महिमा से, सूर्योदय न हो सका था। (2) शूली (नैमिषारण्य में) - वायु 23 अध्याय।

उत्तर देश (8)

पुन. वि. पूभा. = गुरु

1. कैलास- (कैलावर्त=कैलावर्त, बौद्धग्रंथों में) कैलास पर्वत (तिब्बत के दक्षिण-पश्चिम में)। मानसरोवर, कैलास में ही है। कैलास चोटी 22028 फीट ऊँची। नंदादेवी चोटी 25645 फीट ऊँची। गौरीशंकर चोटी 29002 फीट ऊँची। कैलास की शाखा (क्रौंच पर्वत) पर मानसरोवर है। कैलास की परिक्रमा, 24 या 32 मील की, 3 दिन में की जाती है।
2. हिमवान्- हिमालय पर्वत। यह 1500 मील की लम्बाई में है, जिसमें नेपाल, केदार, जालंधर, काश्मीर, पूर्वाचल आदि, 5 खण्ड हैं।
3. वसुमान् गिरि- मिथला-राज्य के पर्वत।
4. धनुष्मान गिरि- (1) मिथिला में धनुषा नामक स्थान (2) बड़ालचा घाटी (हिमालय में) (3) चुरिया घाटी (नेपाल में)।
5. क्रौंचगिरि- (1) (देखिए नं. 1 कैलास) (2) क्रौंचवर्त्म (मेघदूत - वर्णित) = सफेदकोह (पाकिस्तान में)। (3) क्रौंचपदी=मानसरोवर झील का स्थान। (4) हिन्दुकुश के उत्तर, काराकोरम पर्वत।
6. मेरु- (1) ईरान-रूस के सीमान्त से, रुद्र - हिमालय तक। (2) स्वर्ग का सुमेरु देश= अरब देश है। (3) सुमेरु शब्द से उत्तरी ध्रुव भी समझिए। (4) सुवर्ण पर्वत सुमेरु= कूर्माचल (कुमायूंगढ़वाल के पर्वत)। (5) वायु पर्वत सुमेरु= उत्तरी ध्रुव। (6) पाषाणमय सुमेरु=काला समुद्र (एशिया माइनर) से चीनपर्यंत। (7) कश्यपऋषि-मेरु= कश्यपमेरु= काश्मीर प्रांत (8) हेमपर्वत (सुमेरु) =कैलास। (9) सुमेर पर्वत पर, ब्रह्मपुरी (कूर्मा चल = कुमायूं, उत्तरप्रदेश))। (10) मेरु पर कश्यप ऋषि (काश्मीर)। (11) सुमेरु पर आदित्य का उदय या निवास या परिक्रमा या भ्रमण (काश्मीर, अफगानिस्तान, सुलेमान पर्वत)। एक लेखक ने, जबलपुर में बैठकर लिखा कि, काशी पूर्व में है; किंतु दूसरे ने, पटना में बैठकर लिखा कि, काशी पश्चिम में है। परंतु, दोनों का लिखना ठीक है। अतएव कभी-कभी स्थान पर, ध्यान देकर दिशा का निश्चित बोध कीजिए। एक सुमेरु, माला या तशबीह में रहता है। भक्तमालग्रंथ में गो. तुलसीदास सुमेरु बनाये गये थे। सुमेरु=आदिभाग=उच्च भाग= श्रेष्ठ भाग आदि के अर्थों में कहा जाता है।
7. उत्तर कुरु- (1) दक्षिणी रूस देश। (2) कार्दिस्तान (ईरान में)।

8. क्षुद्रमीन- मत्स्यदेश (देखिए मध्य देश का नं. 12) (यह सीमावर्ती देश है)।
9. कैकय- (1) अफगास्तिान का पश्चिमोत्तर भूभाग, राजधानी हिरात। इसके अनन्तर (2) व्याससतलज के मध्य में, कैकय-राज्य। भरत-माता कैकेयी, इसी देश की थीं।
10. वसाति- (1) चिनाब- सिन्धु-संगम से उत्तर (पंचनद देश) | आभीरों के बाद, वासति राज्य हुआ (सिकंदर अभियान काल ई. पूर्व 325 में) था। (2) बस्ती (उत्तरप्रदेश)।
11. यामुन- (यह शब्द मध्य प्रदेश में भी आया है) अतएव, यहाँ 'पश्चिम-यमुनातट-वासी' अर्थ समझिए।
12. भागप्रस्थ- (1) भागप्रस्थ=बागपत (उत्तरप्रदेशी मेरठ से 30 मील पश्चिम) (भोगवती = नागवासु का मंदिर (इलाहाबाद में)।
13. अर्जुनायन- यमुना नदी का पश्चिमी तट मथुरा से (दिल्ली तक)। भरतपुर से प्राप्त, सिक्कों में अंकित "आर्जुनायनानाञ्जय" है।
14. आग्रीन्ध- आग्नीन्ध्र, स्वायम्भुव मनु के पौत्र या प्रियव्रत का पुत्र, अग्रीन्ध था और अग्नोन्ध्र के पुत्र (आग्रीन्ध्र) नव थे। अग्नीन्ध्र का राज्य, जम्बूद्वीप=जम्मू (काश्मीर) में था। यदि आग्नीध्र शब्द कहा जाय तो- उत्तरप्रदेशी टेहरी के श्रीनगर में, कमलेश्वर पीठ के ऊपर, दक्षिण दिशा में, वन्हिपर्वत के निवासी, आग्नीध्र कहायेंगे।
15. आदर्श- कै लासपर्वत, स्फटिक, बर्फीला पर्वत। आदर्श = दर्पण। "कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथि:स्याः।। 61 ।।" पूर्व मेघदूत)।
16. अन्तर्द्वीप- कैलास के आसपास की बस्तियाँ।
17. त्रिगर्त- (1) सतलज-व्यास-रावी के मध्यदेश (जालंधर-लाहौर)। इसे सेवित या सेबेत भी कहा गया है। (2) पठानकोट से कुल्लू तक, 150बाय 100 मील का त्रिगर्त कांगड़ा - क्षेत्र है।
18. तुरगानन- तुर्कमन प्रदेश (दक्षिणी रूस में)।
19. अश्वमुख- सिकंदर द्वारा स्थापित, झेलम जिले में 'बुसेफला' नामक यूनानी-बस्ती (अब नहीं है। बुसेफला, सिकंदर के घोड़े का नाम था और वह घोड़ा यहीं मर गया था)। झेलम (पाकिस्तान)।
20. केशधर- (1) पठानिस्तान (पाकिस्तान में)। (2) काशगर (यारकंद से उत्तर, सिक्यांग में)। (3) काशीपुर (उत्तरप्रदेश के नैनिताल जिले में) अभी तक 'केशपुत्त' नामक, बौद्धकालीन स्थान का निर्णय नहीं हो सका। केशधर=केशपुत्त (केश+पूत = पवित्र) नामक स्थान, काशीपुर है, क्योंकि यहाँ के एक स्तूप में 'बुद्ध के केश सुरक्षित हैं। पास ही प्राचीन भग्नावशेष भी हैं।
21. चिपिटनासिक- तिब्बत और भूटान।
22. दासेरक- डस्का (पंजाब, पाकिस्तान के स्यालकोट जिले में)।
23. वाटधान- सतलज नदी के पूर्व का भूभाग, फीरोजपुर के दक्षिण (पंजाब में)।
24. शरधान- (1) केदारनाथ (उत्तरप्रदेश) के, केदार-कुण्ड में, कार्तिकेय का जन्म। शरवन=काराकोरम पर्वत। यहाँ वैवस्वत मनु पुत्र (इल) आकर, पुरुष से, स्त्री (इला) रूप में हो गया था।
25. तक्षशिला- रावलपिण्डी (पाकिस्तान) जिले में।
26. पुष्करावर्त - पुष्करावती (देखिए वायव्यदेश का नं. 6 अश्मक)।
27. कलावत- (देखिए नं. 1 कैलास)।
28. कण्ठधान- (शुद्ध पाठ, काष्ठधाम)। काष्ठधाम=(1) कठुआ (जम्मू-काश्मीर का एक जिला)। (2) काठमांडू (नेपाल में)।
29. अम्बर- आमेर का किला (जयपुर, राजस्थान)।
30. मद्रक- (देखिए मध्यप्रदेश का नं. 1 मद्र)।
31. मालव- झेलम के पूर्वी तट पर और रावी - चिनाब संगम से उत्तर, दोआब में (लायलपुर, पाकिस्तान)। (सिकंदर अभियान काल ई. पूर्व 325)। सिकंदर-मालव युद्ध हुआ था।
32. पौरव- ययातिपुत्र, पुरु का राज्य (राजधानी प्रतिष्ठान-झांसी प्रयाग में)।

33. वत्स- (देखिए मध्यदेश का नं. 7 वत्स)।
34. आर- आरा (बिहार में)।
35. दण्ड- (दण्डधार = दण्डपुर) बिहार नामक गाँव (बिहार प्रांत के पटना जिले में)। ई. 12वीं शताब्दी तक, यहाँ मगध की राजधानी रही। यहाँ दण्डी संन्यासी बस्तियाँ होने से दण्डपुर = दण्डधार नाम पड़ा। पालवंशी प्रथम राजा गोपाल ने, बौद्धमठ (बिहार) बनवाया। अतएव, दण्डफञण से दण्डबिहार नाम पड़ा, किंतु अब केवल 'बिहार' नाम रह गया।
36. पिंगलक- पीलीभीत या हरदोई (उत्तरप्रदेश में)।
37. माणहल- (1) मनाल (बद्रीनाथ में)। (2) मानसरोवर झील। (3) मोहमण्डस (अफगानिस्तान में)।
38. हूण- (1) हिरात=हरयू वाले हूण। (2) सिन्धनद-झेलम नदी के मध्य। (3) गन्दगढ़-सेंधा नमक के पर्वत के मध्य का देश। (4) तुर्किस्तान, पश्चिमी तार्तार देश, कैस्पियन समुद्र का उत्तरी भाग मिलाकर। हूण, चीन से मानसरोवर, काश्मीर, कैस्पियन सागर तक बढ़े; फिर खैबरघाटी से घुसकर, काश्मीर की तराई से रावलपिण्डी तक फैल गये, तब सिन्ध-झेलम के मध्य जम गये। ई. 456-458 के मध्य, गुप्त - हूण युद्ध हुआ। ई. 496 में, हूण तोरमाण=तुण्डमान था। भानुगुप्त (गुप्त सम्राट) के से नापति, गोपराज को मारकर, ई. 510 में, हूणों ने 'एरन' (मध्यप्रदेश के सागर जिले) में राजधानी बनायी। गुप्त साम्राज्य (320-750 ई.) मुख्य गुप्त साम्राज्य (320-530 ई.)। षट्दर्शन - वर्धनयुग (ई. पू. 200 से ई. पश्चात 200 तक) बनाया गया। पौराणिकयुग (320-800 ई.)।
39. कोहल- (1) कुर्रम नदी। (2) कोहाट (पाकिस्तान)। (3) कोहकन्द की पहाड़ियाँ, कोहेबाबा, इण्डस कोहिस्तान।
40. शीतक- बद्रीनाथ, तिब्बत, कैलाश, केदार, गौरीशंकर, नेपाल।
41. माण्डव्य- (देखिये मध्यदेश का नं. माण्डव्य)।
42. भूतपुर- भूतस्थान=भूतान (अंग्रेजी में भूटान) राजधानी पुनाखा (पुण्याख्यापुरी)।
43. गान्धार- गन्धर्वदेश, राजधानी कन्दहार (गान्धशण का अपभ्रंश)। पेशावर से डेरागाजीखाँ तक (पाकिस्तान में)।
44. यशोवति- (1) पेशावर (पाकिस्तान)। (2) कीर्तिनगर, (देवप्रयाग से 19 मील)। देवप्रयाग (उत्तरप्रदेश खे गढ़वाल जिले में, हरद्वार से 60 मील)। (3) कीर्तिपुर= किरतपुर (पंजाब के रोपड़ जिले में) (4) कीर्तिपुर (उत्तरप्रदेशी देहरादून से एक मील)। नं. 3-4 सप्तम सिक्स गुरुकालीन।
45. हेमताल- (हिमताल) मानसरोवर झील। (हेमकुण्ड सरोवर हिमालय भी हो सकता है जहाँ गुरु गोबिन्दसिंह ने अपने पूर्व जन्म में महाकाल और कालका देवी की आराधना की थी सम्पादक)।
46. राजन्यखचर- खैबर की घाटी और काबुल नदी।
47. गव्य- (1) काठमाण्ड (नेपाल) के पास, गोपुच्छ पर्वत। (2) पंजाब का गुजरात जिला (पाकिस्तान अंतर्गत)।
48. यौधेय-(युधिष्ठिर-पुत्र यौधेय) (1) रावी से यमुना तक) (2) सतलज काठे से नीचे लुधियाना से अलवर तक, राजधानी यौधेयायन= लुधियाना।
49. दासमेय- दासुया (पंजाब के जालंधर जिले में)।
50. श्यामाकक्षेप - धानकुटा (नेपाल में)।
51. धूर्तदेश- 'उन्मत्त: कितवो धूर्तो धत्तूर: कनकाह्वय:'। (अमरकोष)। 'धूर्तोऽक्षदेवी कितवौऽक्षधूर्तो द्यूतकृत्समा: (अमरकोष)। ये दो वाक्य हैं। धूर्त-जुआड़ी। मामा शकुनि, बड़े जुआड़ थे और इनका देश गान्धार था, क्योंकि शकुनि की बहिन, गान्धारी थी। अतएव धूर्तदेश=जुआड़ियों का देश= शकुनि देश= गान्धारदेश।। शकुनि, प्राय: हस्तिनापुर में ही, अड्डा जमाये रहते थे।

ईशान देश (9)
(श्ले. ज्ये. रे. = बुध)

1. मेरुक- (देखिये उत्तरदेश का नं. 6 मेरु)।
2. नष्टराज्य- गोवी या शामू का मरुस्थल (तिब्बत के उत्तर-प - पूर्व तथा चीन के उत्तरी भूभाग)।
3. पशुपाल- पशुपति महादेव (नेपाल के काठमाण्डू नगर में)।
4. करि- (कीरग्राम=काँगड़ा, हि.प्र. में)। कीरग्राम में, बैजनाथ का मंदिर है। पूर्वी बैजनाथ के मंदिर का स्थान, बिहार के 'देवधर' नामक को समझिए। 'चितायां वैद्यनाथोऽस्ति देवधर वाला ही है।
5. काश्मीर- चीन देश। यदि कीरकाश्मीर शब्द को कीरक + आश्मीर कहा जाय तो आश्मीर के अर्थ पर्वतीय जन हो जाते हैं; अतएव ईशानदेशीय पर्वतीय-नगर समझिये। परंतु काश्मीर, सिन्धुनदी का उद्गम-स्थल तथा चीन देश, दोनों को कहा गया है।
6. अभिसार- (1) सिन्धु-झेलम नदी के मध्य, , पश्चिमोत्तर पंजाब (पाकिस्तान) में। यहाँ सिकंदर कालीन राजा आम्भीक की राजधानी, तक्षशिला (रावलपिण्डी) में थी। (2) कोंकण और मलाबार (दक्षिण भारत में)। किंतु ये दोनों स्थान ईशान में नहीं हो सकते, अतएव (3) कामरूप देश=गोहाटी (आसाम) में संभव, समझिये।
7. दरद- (1) भूटान। (2) दरदलिंग= दार्जिलिंग (आसाम)। (दार्जिलिंग का प्राचीन नाम दुर्जलिङ्ग भी है। -सम्पादक)
8. तंगण- तंगल पर्वत (उत्तरी तिब्बत में)।
9. कुलूत- (देखिये वायव्य देश का नं. 7 कुलूत)। यह स्थान यहाँ नहीं हो सकता अथवा वायव्यउत्तर-ईशान का सीमावर्ती स्थान समझिए।
10. सैरन्ध्र- सरहिन्द (पंजाब में। वनवास में द्रौपदी, सैरन्ध्री बनकर, विराट के भवन में रही थी। 'सैरन्ध्री परवेशमस्था स्ववशा शिल्पकारिका।' (अमरकोष)। चतुःषष्टिकलाभिज्ञा, रूपशीलादिशालिनी। प्रसाधनोपचारज्ञा 'सैरन्ध्री' परिकीर्तिता। (अमरकोष-टीका)। (गुरु गोबिन्दसिंह के पुत्रों को सरहन्द (सरहिन्द) में ही दीवारों में चुना गया था-सम्पादक)।
11. वनराष्ट- सिलहट (आसाम में)।
12. ब्रह्मपुर- (1) बलिया (उत्तरप्रदेश में)। (2) गढ़वाल-कुमायूँ (उत्तरप्रदेश में)। (3) बर्मा देश)।
13. दार्व- (1) दारुवन (देवदारु बन)। (2) दार्जिलिंग (आसाम में)। देवदारुवन, गोपेश्वर (रतीश्वर) के स्थान में। गोपेश्वर = हिमालय के गढ़रुशल में एक गाँव। यह,। कामदेव का भस्मस्थल है (स्कन्द-पुराण)।
14. डामर- (तन्त्र-शास्त्रीय शब्द) (1) डाफला प्रान्त और (2) गोहाटी (आसाम में)।
15. वनराज्य- (देखिए नं. 11 वनराष्ट)।
16. किरात- (1) आसाम के नागाप्रदेश, राजधानी कामाख्या क्षेत्र (गोहाटी) में थी (महाभारत)। (2) नेपाल से पूर्व काभूभाग, किरात-भूमि।
17. चीन- प्रसिद्ध।
18. कोणिन्द- (देखिए वायव्य देश का नं. 7 कुलूत)।
19. भल्लापलोल- (1) सदिया (आसाम के पूर्वोत्तर)। (2) आसाम की नागा-बस्तियाँ। भल्लदेश=बलखासे झेलम तक था। कालांतर में नाग लोग, आसाम तक बढ़ गये।
20. जटासुर- (1) मद्रकाधिपति जटासुर, युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में गया था (महाभारत)। (2) नेपाल के जनकपुर के पास 'जटेश्वर' नामक स्थान है। जहाँ जटासुर मारा गया था। आसाम की नट जातियाँ।
21. कुनट- आसाम की नट जातियाँ।
22. खसखासी पर्वत (आसाम में) यह शब्द, पूर्व-पश्चिम-ईशान तीन स्थानों में आया है। अतएव, खासी पर्वत, पूर्व-ईशान का सीमावर्ती है।

23. घोष- 'घोष आभीरपल्ली स्यात्'। (अमरकोष)। गोयलपाड़ा-गोहाटी (आसाम)।
24. कूचिक- कुच-बिहार राज्य (बंगाल के उत्तरी भूभाग में)।
25. एकचरण- एकपाद, पंगुदेश, एकचक्रा, पुरुषाद आदि शब्दार्थ से- 'आरा' नगर (बिहार में)।
26. अनुविश्व- ब्रह्मपुत्र तट पर, विश्वनाथ नामक एक नगर (आसाम में)।
27. सुवर्णभू- बर्मा देश।
28. वसुधन- मिथिला-राज्य (नेपाल - बिहार में)।
29. दिविष्ठ- देवागिरि (देवधर, बिहार- उड़ीसा की सीमा में)।
30. पौरव- पारो (भूटान में)।
31. चीरनिवसन- (1) चेरापूँजी (आसाम में)। (2) बिहार प्रांत के बौद्ध स्थल।
32. त्रिनेत्र- (1) त्रिपुरा। सीमावर्ती स्थान। (2) अनुविश्वा (देखिए नं. 26)।
33. मुञ्जाद्रि- पटकाई हिल (पूर्वी आसाम में)।
34. गन्धर्व- (1) इम्फाल-मनीपुर (पूर्वी आसाम में) नृत्यशैली का स्थशन। (2) मञ्चूरिया प्रदेश।

नोट- कूर्म-चक्र में नक्षत्र-स्थापना का नियम, कुछ मतभेद-युक्त है। क्योंकि अभी तक के विद्वान, मध्यदेशाधिपति सूर्य मानते हुए भी, कृत्रतकादित्रय नक्षत्र शब्द से, कृत्तिका - रोहिणी - मृगशिला नक्षत्र की स्थापना करते हैं; किंतु जबकि सूर्य अधिपति है तब, कृत्तिकादित्रय शब्द से, कृत्तिका - उत्तराफाल्गनी - उत्तराषाढ़ नक्षत्र की स्थापना करना चाहिए। इसी प्रकार बृहत्संहिता में, आग्नेय दिशा में 'षाश्लेषशद्येत्रिके देशा:।' पाठ कर दिया है, जो कि कर्मकाण्ड मत से भिन्न हो जाता है। कर्मकाण्ड के नवग्रह-चक्र में, आग्नेय दिशा में, चंद्र की स्थापना होती है, परंतु बृहत्संहिता के ' आश्लेषाद्यं' पाठ के कारण, आग्नेय में, बुध की स्थापना होती जा रही है। यह अव्यवस्था, संकलनकर्ताओं एवं अनुवादकर्ताओं को ज्ञात हो रही है। पूर्वापर (ग्रंथान्तर) वाक्यों का ध्यान दिये बिना केवल 'मक्षिकास्याने मक्षिका' रूपक में अनुवाद कर दिया। तथ्यत: भारत के आग्नेयदेश में, जल (समुद्र) का बाहुल्य है, अतएव, आग्नेयपति चंद्र ही होना चाहिए, जैसा कि, कर्मकाण्ड में विधान भी है। इसी प्रका बुध, नपुंसक या जड़ता का कारक है, इसे ईशानपति मानना ठीक है, क्योंकि ईशान में, पर्वतीय - भाग अधिक है। जड़-पाषाण।

मालवा की तकनीकी एवं वैज्ञानिक पृष्ठभूमि

डॉ. मुकेश कुमार शाह

वस्तुत: भारत में सिंधु घाटी की सभ्यता के पश्चात् छठी शताब्दी ई. पू. से नगर पुनः अस्तित्व में आते हैं। इसी नगरीकरण को द्वितीय नगरीय क्रांति कहा गया है। मालवा में पुरातत्वीय उत्खननों से उज्जैन, विदिशा, महेश्वरनावड़ाटोड़ी इत्यादि स्थानों से नगरीकरण के प्रमाण मिलते हैं। प्रथम नगरीकरण में जहाँ धातु-प्रस्तर का प्रयोग हुआ, विशेषकर ताँबा और काँसा का, वहीं द्वितीय नगरीकरण की प्रमुख धातु लोहा थी। लोहे के प्रयोग के कारण छठी शताब्दी ई.पू. का लौह युग भी कहा जाता है। लौह युग का विकास प्रारंभ में छोटे-छोटे गणराज्यों के विकास के साथ हुआ। इन गणराज्यों में लौह तकनीकी का प्रयोग बढ़ता गया और कुछ गणराज्यों का सामर्थ्य अन्य से बढ़ गया और इसकी परिणति महाजनपदों के रूप में हुई। लौह युग की संस्कृति राजनीतिक परिपक्वता के रूप में सामने आई। ऐसे षोडश महाजनपदों का विकास भारत में हुआ। कालांतर में जब किसी एक महाजनपद ने अन्य पर आक्रमण करके वहाँ अपनी प्रभुसत्ता पायी, तब महाजनपद, साम्राज्य के रूप में विकसित हो गये। इस प्रकार बुद्ध के समय में चार प्रमुख महाजनपद थे, जो मगध, कौशल, वत्स एवं अवंती के रूप में विख्यात हुए। मालवा में लौह-युग का प्रारंभ भी लगभग सातवीं-छठी ई. पू. माना जाता है। पुरातत्वीय अवशेषों से ज्ञात जानकारी इस कालखंड में उज्जयिनी के नगरीय वैभव की गाथा कहती है। उज्जयिनी के प्रकार के निर्माण के समय यहाँ कृष्ण एवं रक्त मृदभाण्डों का निर्माण प्रारंभ हुआ और इसके साथ ही मालवा में लौह-युगीन संस्कृति भी विकसित हुई।

इस विकास की परिणति के फलस्वरूप पाटलीपुत्र, कौशाम्बी तथा उज्जयिनी जैसे बड़े-बड़े नगरों का निर्माण हुआ एवं जनसाधारण के भौतिक ऐश्वर्य की वृद्धि हुई। ज्ञान-विज्ञान एवं तकनीकी में विकास के फलस्वरूप पत्थरों द्वारा निर्मित तथा पकी हुई

ईंटों से बनाये हुए मकान अधिकाधिक उपलब्ध होने लगे। राजप्रासादों के परिमाण तथा मजबूती में सर्वथैव वृद्धि होने लगी। लौहयुगीन शस्त्रास्त्रों के कारण युद्ध-शास्त्र में नया मोड़ आया। शत्रुओं से बड़े-बड़े एवं समृद्ध शहरों का संरक्षण करने हेतु विशाल एवं मजबूत तटबंदियाँ बनाना आवश्यक हो गया। उज्जयिनी में आदितम् तटबंदी की नींव डाली गई, जो कि कीचड़ से बनाई गई थी। उज्जयिनी के गढ़कालिका के द्वितीय उत्खनन में जल-परिखा के अतिरिक्त मिट्टी और ईंटों के चूरे से बनाया गया एक मार्ग भी प्राप्त हुआ है, जो कि संभवत: विश्व की प्राचीनतम पक्की सड़क थी। संभवत: इसी मार्ग से उदयन-वासवदत्ता ने कौशाम्बी की ओर पलायन किया था। इसी उत्खनन के मध्य पीपल खोदरा नाले के पास 30-35 फीट लम्बा-चौड़ा कुंड मिला, जिसका निर्माण आद्य-मौर्य युग में हुआ था। मच्छेन्द्र नाले के पूर्व की ओर एक पकी ईंटों की नहर मिली है, वह भी संभवत: आद्य-मौर्य या उससे भी पूर्व की है। इसमें अंतर-अहता पर काचित इष्टिकाएँ लगी थीं। काचित इष्टिकाओं का काल मौर्य-पूर्व का है। गढ़कालिका में एक जगह मणि बनाने का कारखाना भी मिला है। यहाँ से लौह-धातु गलाने की भट्टियाँ तथा इस्पात निर्माण हेतु आवश्यक वस्तुएँ भी मिली हैं। यहीं से नलिका कूपों की भी प्राप्ति हुई। इस उत्खनन में ऋण मुक्तेश्वर के आसपास में चित्रित धूसर पात्र भी प्राप्त हुए हैं। ये सभी प्राक्-मौर्ययुगीन हैं। उज्जयिनी के उत्खनन में काष्ठ प्रकार की प्राप्ति भी महत्वपूर्ण है, जिसे गर्दे ने खोजा था, यह भी प्राक्-मौर्ययुगीन है। उज्जैन के अतिरिक्त विदिशा से भी प्राक्-मौर्ययुगीन एक नहर प्राप्त हुई है, जो कि संभवत: कृषि-कर्म में प्रयुक्त होती थी। उज्जैन के अतिरिक्त कसरावद से भी प्राचीन सड़क के प्रमाण मिले हैं। जल निकासी के सबसे विकसित प्रमाण उज्जैन और आवरा से प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार पुरातात्विक और साहित्यिक साधनों की सहायता से मालवा की प्राचीन नीकी का ज्ञान हो पाया है। इससे न केवल ताम्राश्मीययुगीन अपितु छठी शताब्दी ई. पू. से मध्य तक की तकनीकी का ज्ञान भी होता है। वैज्ञानिक तकनीकी संदर्भ के अंतर्गत घरों, प्रासादों के निर्माण प्रकार, सड़क तथा जल निकासी, जल संग्रहण एवं कृषि कर्म, यातायात के साधन, अर्थव्यवस्था के अंतर्गत सिक्कों का प्रचलन तथा उनके निर्माण में प्रयुक्त धातु तथा धातुओं को गलाने की तकनीकी, सिक्के बनाने के लिए साँचों का प्रयोग तथा आहत सिक्के बनाने की सिल, धातु को पीटकर उसे पतरे का रूप देकर उस पर विभिन्न प्रकार के प्रतीक चिन्हों को ठप्पांकित करना इत्यादि प्रमुख हैं।

घरों में विभिन्न प्रकार के हाथ से निर्मित तथा कुम्हार के चाक पर निर्मित बर्तनों के व्यवहार, चूल्हों का प्रयोग, घर की सुरक्षा हेतु दरवाजे, प्रकाश आदि की व्यवस्था के लिए खिड़कियों का होना तथा इनमें लौह धातु का प्रयोग, चटकनियों, साँकल इत्यादि के रूप में होना, युगीन तकनीकी को प्रदर्शित करता है। घर बनाने के लिए बाँस तथा घास के स्थान पर अब मिट्टी तथा ईंटों का व्यवहार होने लगा था, जो कि सिंधु-सभ्यता से ही व्यवहृत था। पूर्वोद्धृत विवरण में वैद्यगिरि का पता भी चलता है, जब प्रद्योत के स्वास्थ्य को ठीक करने के लिए मगध से जीवक नामक वैद्य उज्जयिनी आया था और वत्सराज उदयन की चिकित्सा हेतु उज्जयिनी के वैद्य प्रद्योत के आदेश पर उसकी सुश्रुषा कर रहे थे तथा उसके व्रणों (घावों) की चिकित्सा के अलावा उसके लिए 'मणि-भूमिका' की व्यवस्था भी की गई थी, यह वर्णन प्रतिज्ञा - यौगन्धरायण से प्राप्त होता है।

इस प्रकार मालवा में वैज्ञानिक तकनीकी उत्क्रांति का पूनर्नवीनीकरण छठी शताब्दी ई. पू. से प्रारंभ होने लगा। वस्तुत: पुनर्नवीनीकरण से यहाँ तात्पर्य यह है कि इस युग से पूर्व वैदिक काल और उसके भी पूर्व सिंधु-सभ्यता तथा पाषाण युग में मनुष्य ने अपने रहवास, दैनंदिन आवश्यकताओं तथा जीवन के संघर्ष के लिए जो भी उपाय किये, वे सभी तकनीकी क्षेत्र के अंतर्गत ही आते हैं। भले ही आदिकाल में मनुष्य ने पत्थर का प्रयोग पशुओं से बचने के लिए तथा उसी का प्रयोग शिकार, अग्नि तथा अपने घर के लिए किया अथवा कीमती पत्थरों का प्रयोग श्रृंगार के लिए किया। ये सभी तकनीकी प्रयोग के अंतर्गत ही आती हैं। इसमें ग्रामीण सभ्यता से ऊपर नगरीकरण के लिए जो भी प्रयोजन किये गये हों, वे सब समाहित हैं।

लौह धातुकर्म: तकनीकी एवं वैज्ञानिक उत्क्रांति

लोहे की प्राचीनता

वर्तमान विश्व में लोहे की उपयोगिता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। मानवीय सभ्यता की चतुर्दिक प्रगति में लोहे की भूमिका स्वयं सिद्ध है। ताम्र एवं कांस्य धातु के बने हुए उपकरणों की अपेक्षा लौह उपकरण अधिक स्थायी एवं मजबूत होते

हैं, परंतु लोहे की विशिष्टता उसकी प्रचुरता के कारण है। लोहे के प्रचलन के फलस्वरूप आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में भी उल्लेखनीय परिवर्तन घटित हुए। लोहे के तकनीकी ज्ञान का महत्वपूर्ण योगदान राजनीतिक क्षेत्र में भी माना जाता है। प्राचीन काल के अनेक साम्राज्यों की शक्ति का स्रोत लौह तकनीक के ज्ञान और उसके उपकरणों के व्यापार पर एकाधिकार से स्वीकार किया जा सकता है। मानव की तकनीकी प्रगति के इतिहास में लौह धातु के सर्वप्रथम शोधन की घटना का अत्यधिक महत्व है, किंतु लोहे का सर्वप्रथम प्रचलन कब और कहाँ पर हुआ, यह प्रश्न अभी भी विवादास्पद है।

लोहे का ज्ञान भारत में 1000 ई.पू. अथवा उससे भी कुछ शताब्दी पूर्व के लगभग माना जाता है। कतिपय यूरोपीय विद्वानों के अनुसार भारतीयों को लोहे का ज्ञान यूनानियों के आगमन से पूर्व नहीं था। किंतु इस मत का खंडन प्राचीन यूनानी साहित्य के आंतरिक साक्ष्यों से ही हो जाता है, जिसके अनुसार सिकंदर के भारतीय अभियान के पूर्व ही भारतीयों ने लोहे के उपकरण बनाने की कला में दक्षता प्राप्त कर ली थी। इस परंपरा के अनुसार भारतीय लौहारों ने लोहे के ऐसे उपकरण बनाये थे, जिन पर जंग नहीं लगता था। मार्टिमर व्हीलर ने भारत में लोहे के प्रचलन का गौरव ईरान के हाखामनी शासकों को दिया है। कई वर्षों तक इस मत को मान्यता मिली रही। किंतु विगत तीन-चार दशकों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों मे जो पुरातात्विक अन्वेषण और उत्खनन हुए हैं, उनसे लोहे की प्राचीनता के संबंध में हमारा ज्ञानवर्द्धन हुआ। इस संबंध में यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में आर्यों के संदर्भ में कुछ मान्यताएँ अब सही प्रतीत नहीं होती हैं। पहले ऐसा समझा जाता था कि आर्य इस देश में अश्व और लौह के साथ आये थे, परंतु ऋग्वेद के आंतरिक साक्ष्यों से यह सिद्ध होता है कि ऋग्वैदिक आर्यों को लोहे का ज्ञान नहीं था। ऋग्वेद में 'अयस' शब्द का प्रयोग किया गया है, जिसे प्रारंभ में विद्वानों ने लोहा समझ लिया था। ऋग्वेद में यह शब्द लोहे का पर्याय न होकर धातु के सामान्य अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। उत्तर वैदिक काल के ग्रंथों में 'लोहित अयस' और 'कृष्ण अयस' दो शब्द मिलते हैं, जिसका क्रमश: अर्थ ताम्र अथवा कांस्य तथा लौह धातु के रूप में लिया गया है। कालांतर में अयस शब्द का प्रयोग सामान्यत: लोहे के लिए किया जाने लगा। 'कृष्ण यजुर्वेद' की 'तैतरीय संहिता' में छह अथवा बारह बैलों द्वारा खींचे जाने वाले हलों का उल्लेख मिलता है। संभवत: इस प्रकार के हल काफी भारी होते रहे होंगे। यह ग्रंथ लोहे से परिचित प्रतीत होता है, इसलिए यह कहा जा सकता है कि इस हल की फाल लोहे की रही होगी। 'अथर्ववेद' में लोहे की फाल और ताबीज का उल्लेख मिलता है।

'शतपथ ब्राह्मण' (7.2.2) में लोहे का संबंध कृषक वर्ग से स्थापित किया गया है। प्राचीन बौद्ध ग्रंथ 'सुत्तनिपात' में लोहे की फाल के तपाने एवं तापानुशीलन का वर्णन मिलता है। इन साहित्यिक साक्ष्यों से भारत में कृषि के लिए लौह उपकरणों के उपयोग की जानकारी 800-700 ई. पू. के लगभग मिलती है।

भारत में लोहे की प्राचीनता, प्रसार और कालानुक्रम का विवेचन करते समय पुरातात्विक साक्ष्यों का सहारा महत्वपूर्ण है। भारत में लोहे के प्रचलन वाले प्रारंभिक क्षेत्रों पर दृष्टिपात करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश पुरास्थल लोहे की खानों के समीपवर्ती क्षेत्रों में स्थित थे। प्राचीनकाल में गांगेय क्षेत्र के मैदानी भाग में भी लौह धातु के शोधन के साक्ष्य धातु मल (Iron Slag) के रूप में प्राप्त हुए हैं। विगत तीन-चार दशकों में भारत के विभिन्न क्षेत्रों में जो उत्खनन कार्य हुए हैं, उनसे लोहे के प्रयोग की प्राचीनता के विषय में उल्लेखनीय जानकारी प्राप्त हुई है। भारत की ऊपरी गंगा घाटी एवं दो आब, पूर्वी भारत (मध्य गंगा घाटी), मध्य भारत एवं दक्षिण भारत के इन चार क्षेत्रों से प्राप्त पुरातात्विक साक्ष्यों की समीक्षा का प्रयोग भी किया जा रहा है।

कुछ दशक पूर्वक उत्तरी काले ओपदार मृद्भाण्डों (N.B.P.) के साथ लोहे के उपकरण प्राय: सभी पुरास्थलों से प्राप्त हुए थे, जिनकी प्राचीनतम सीमा रेखा 600 ई.पू. निर्धारित की गई थी। अत: यह कहने में कोई आपत्ति नहीं थी कि इस युग में उत्तर भारत के लोग लोहे के उपकरणों से परिचित थे। प्रारंभ में हस्तिनापुर एवं रोपड़ के उत्खननों से चित्रित धूसर पात्र परम्परा (P.G.W.) के साथ लौह उपकरण नहीं मिले थे, इसलिए इन पुरास्थलों के उत्खाताओं ने यह निष्कर्ष निकाला कि चित्रित धूसर पात्र परंपरा के साथ लोहे का प्रचलन नहीं था, किंतु आलमगीरपुर के उत्खनन में इस पात्र - परंपरा के साथ लोहे के उपकरण भी उपलब्ध हुए। ऐसे ही साक्ष्य अहिच्छत्र, नोह, अतरंजीखेड़ा आदि से भी प्राप्त हुए हैं। इस संस्कृति के लोग स्लेटी रंग की थालियों एवं कटोरों का प्रयोग करते थे। चावल, जो की कृषि एवं मवेशियों का पालन करते थे तथा बाँस-बल्ली की झोपड़ियों अथवा कच्चे मकानों में रहते थे। इन स्थानों से लौह उपकरणों में बाण फलक, भाला फलक, चाकू, कटार, खुरपी, मछली पकड़ने की कंटियाँ, चिमटा, बसूला एवं कीलें

आदि प्रमुख हैं। हस्तिनापुर से लौह धातुमल एवं अतरंजीखेड़ा से धातुमल तथा धातु शोधन में प्रयुक्त मिट्टी की भट्टियाँ मिली हैं, इससे इंगित होता है कि धातु को गलाने का कार्य स्थानीय रूप से होता था। पुरातात्विक साक्ष्यों के आधार पर लगभग 1000 ई.पू. के और पीछे तक इसका तिथिक्रम प्रस्तावित किया जा सकता है। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में लौहधातुकर्म विधा की खोज स्थानीय आधार पर हुई, इसमें किसी विदेशी सत्ता के आगमन के बाद यहाँ पर धातुकर्म का कार्य प्रारंभ हुआ हो, ऐसे प्रमाण नहीं मिलते हैं। इस तथ्य को मालवा के संदर्भ में भी समझना आवश्यक है।

प्राचीन मालवा में लौह धातुकर्म तथा उपकरण

सन् 1954-1956 तक एन. आर. बनर्जी के मार्गदर्शन में उज्जैन के द्वितीय उत्खनन से गढ़कालिका के उत्खनन के दौरान लौह धातु गलाने की भट्टियाँ तथा इस्पात निर्माण हेतु आवश्यक फेल्सपार एवं अन्य वस्तुएँ मिली हैं, जिससे ज्ञात होता है कि यहाँ लौह उद्योग विकसित अवस्था में था। लोहे के निर्माण हेतु लोहे से युक्त सामग्री लौह मल (Ore) को क्रूसिबल में भर दिया जाता था एवं कुछ तत्वों के साथ क्रूसिबल को बंद करके भट्टी में डाल दिया जाता था और इस प्रकार से लोहा तैयार किया जाता था। चूँकि इस विधि से तैयार में कार्बन की मात्रा अधिक होती थी, अत: उसे पीटकर कार्बन को निकाला जाता था और इस तरह से ढलवाँ लोहा पिटवाँ लोहा बन जाता था, तदनंतर उसके विभिन्न उपकरण बनाये जाते थे। लौह उपकरणों के अवशेष नागदा, एरण, कायथा, दंगवाड़ा आदि क्षेत्रों से भी प्राप्त हुए हैं। इन सभी क्षेत्रों से प्राप्त लौह उपकरणों की तिथि 600 ई.पू. के पूर्व तथा बाद में स्थापित की गई है। उज्जैन संभाग के मंदसौर जिले के भानपुर तहसील के इंद्रगढ़ से भी उत्खनन के दौरान लौहा गलाने की भट्टियाँ मिली हैं।

उज्जैन के चित्रित धूसर मृद्भाण्ड के कालखंड में लौह निर्मित शर-मुख, भल्ल - मुख, वितस्तिका (बिछिया), छूरी आदि शस्त्रास्त्र एवं उपकरणों का निर्माण हुआ, यह उनके स्तरों की उपलब्धियों से ही स्पष्ट हो जाता है। उज्जैन के आदिम प्रकार की भित्तियों में चि. धू. मृ. के खंडों के साथ लोहे की सब्बल एवं गैती भी पाई गई है। ये शस्त्रास्त्र तथा लौह-उपकरण तयुगीन राजकीय सत्ता में धातुकर्म को स्पष्ट करते हैं। परंपराएँ कहती हैं कि अवन्ती के लौहकार इतने प्रसिद्ध थे कि उनके उपकरण एक तमिल शासक के राजमहल के लिए भी बुलाए गए थे। यह तथ्य तमिल ग्रंथ 'मणिमैखले' और 'पेरुदंगई' नामक ग्रंथों से ज्ञात होता है।

नागदा में सन् 1955-57 के मध्य एन. आर. बनर्जी ने उत्खनन कार्य किया था, जहाँ से कुल 59 लौह उपकरण प्राप्त हुए हैं, जिनमें दो धार वाली कटार, कुल्हाड़ी के गोल भाग, भाले एवं बाण के भाग, छल्ला, चम्मच, चाकू, हँसिया, फावड़ा, लौह कुठार, कटोरे, छल्ले, बरछे का अग्रभाग इत्यादि एवं दूसरे एवं तीसरे चरण से प्राप्त हुए हैं। इसी प्रकार, एरण से भी कई प्रकार के लौह उपकरण मिले हैं। इन उपकरणों का समय भी 700-600 ई.पू. के लगभग रखा गया है। लोहे के ये टुकड़े एरण से द्वितीय काल के स्तरों से प्राप्त हुए हैं। कसरावद में सन् 1936-39 के दौरान व्ही. आर. करंदीकर तथा व्ही. एन. सिंह ने उत्खनन कार्य किया था, यहाँ से भी धातु की बनी वस्तुओं में स्वर्ण का छोटा आभूषण, लोहे की कीलें, ताँबे व चाँदी की आहत मुद्राएँ प्राप्त हुई हैं। कायथा के निवासी भी 600-200 ई.पू. के बीच लोहे का उपयोग करते थे तथा घरेलू उपयोग में चि. धू. मृ. तथा काले ओपदार उत्तरी मृद्भाण्डों का प्रयोग करते थे। यहाँ पर सन् 1965-66 तथा 1967-68 के मध्य विष्णु श्रीधर वाकणकर तथा डेकन कॉलेज, पुणे द्वारा समय-समय पर उत्खनन कार्य किया गया। इसमें चतुर्थ काल के अंतर्गत लोहे के उपकरण, ताँबे के आभूषण प्राप्त हुए हैं।

इसी प्रकार बेसनगर के उत्खनन में भी द्वितीय खण्ड से ताँबे व लोहे की विभिन्न वस्तुएँ तथा आहत सिक्के प्राप्त हुए हैं। महेश्वर-नावड़ाटोड़ी से भी चतुर्थ काल मे अंतर्गत 'काले और लाल' तथा 'काले ओपदार उत्तरी मृद्भाण्ड' के साथ लोहे के उपकरण तथा आहत और ढले हुए सिक्कों की प्राप्ति हुई है। 57 नावडाटोली (नावडाटोडी) में सन् 1957-59 में एच.डी. सांकलिया, एस. बी. देव, जेड. डी., अंसारी ने उत्खनन कार्य किया था। यहाँ से लौह उपकरणों में छल्ले, चाकू, बाणाग्र, कीलें इत्यादि प्रमुख रूप से प्राप्त हुए हैं, जिनका समय लौह युग के आसपास ही था। विदिशा से भी ताँबे और लोहे के उपकरणों की प्राप्ति हुई है। महिदपुर में सन् 1986-87, 1989-90 के बीच डॉ. रहमान अली, डॉ. अशोक त्रिवेदी, डॉ. धीरेन्द्र सोलंकी, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन द्वारा संपादित प्रमुख उत्खनन के दौरान तृतीय चरण (1200-600 बी. सी.) से 9 लौह उपकरण तथा लोहे के अयस्क के ढेर प्राप्त हुए हैं। इनमें दो खण्ड लोहे की कीलें तथा अन्य में तीक्ष्ण लोहे की खूटियाँ प्राप्त हुई हैं।

सोड़ंग (उज्जैन) में सन् 1988-89 के दौरान डॉ. रहमान अली, अशोक त्रिवेदी, धीरेन्द्र सोलंकी ने उत्खनन कार्य किया। यहाँ से भी प्रथम निखात के अंतर्गत अनेक ताम्र तथा लौह उपकरणों की प्राप्ति हुई है, जिसमें ताँबे के सिक्के, छल्ले, हुक, थाली इत्यादि प्राप्त हुए हैं। लौह उपकरणों में कीलें, खुर, बाणाग्र, छल्ले, खंडित बरछे (Fragnent Spear Head), चाकू, लौहे की छड़ें इत्यादि प्राप्त हुई हैं। मालवा के दंगवाड़ा उत्खनन से भी लौहयुगीन क्रांति के अवशेष मिले हैं। यहाँ पर के. के. चक्रवर्ती, वी.एस. वाकणकर तथा एम.डी. खरे (1978-79, 1979-80, 1980-82) ने उत्खनन कार्य किया था। इस स्थल के उत्खनन से ताम्रपाषाण काल के बाद लौहयुगीन संस्कृति के भी अवशेष मिलते हैं। यहाँ से प्राप्त प्रमुख लौह उपकरणों में कीलें, छल्ले, बाणाग्र, तलवार, कुल्हाड़ी इत्यादि हैं। यहाँ के लौहकार लौह अयस्क को 1430 डिग्री तापमान से ऊपर तपाता था। यह क्रिया उज्जैन से प्राप्त लौह अयस्क तकनीकी से उच्च किस्म की थी। इसके अतिरिक्त यहाँ से अनेक ताम्र उपकरण भी प्राप्त हुए हैं। एक तथ्य यहाँ महत्वपूर्ण है कि मालवा में उत्खनित स्थलों के नजदीक किसी भी प्रकार की लौह खदान नहीं है, तथापि यहाँ पर उच्च श्रेणी में लौह धातु उपकरण प्राप्त हुए हैं और उन्हें बनाने की विधि भी ज्ञात होती है। लौह क्षेत्र नहीं होने के बावजूद मालवा में लोहा मान द.पू. मध्यप्रदेश, छत्तीसगढ़ तथ कलिंग इत्यादि क्षेत्रों से आता था। भोज के ग्रंथ युक्तिकल्पतरु में इसकी सीमित सूचना हमें मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि मालवा का संपूर्ण पूर्वी-पश्चिमी क्षेत्र भारत के अन्य क्षेत्रों के साथ छठी शताब्दी ई.पू. में लौह क्रांति के साथ कदमताल मिलाते हुए अपने संपूर्ण वैभव को प्राप्त हो रहा था। इस दृष्टि से यह क्षेत्र अतरंजीखेड़ा, हस्तिनापुर इत्यादि क्षेत्रों से कहीं पिछड़ा हुआ नहीं दिखाई देता है। यहाँ पर भी लोहे को गलाने वाली भट्टियाँ, लौह अयस्क तथा अनेकानेक प्रकार के लौह उपकरण उत्खनन के दौरान संबंधित समसामयिक स्तरों से प्राप्त हुए हैं, जो कि तयुगीन लौह तकनीकी को मालवा के संदर्भ में प्रदर्शित करता है।

तकनीकी एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों का भौतिक जीवन पर प्रभाव

नगरों के उद्भव में लौह क्रांति का महत्वपूर्ण योगदान था। लौह तकनीक के प्रयोग ने सामान्यजन के भौतिक जीवन पर गहन गंभीर प्रभाव डाला। लौह उपकरणों के प्रयोग से घने जंगलों को काटकर उस भूमि को कृषि योग्य बनाया गया एवं अनेक प्रकार की खेती की गई, जिसे विभिन्न प्रकार के अनाजों, जैसे-गेहूँ, जौ, चावल तथा दालें इत्यादि को उपजाया गया। इसके अतिरिक्त अनाजों के बोने के मौसम के विषय में भी जानकारी बढ़ी। रबी और खरीफ की फसलों की खेती होने लगी। उत्पादित फसलों को कीटों तथा पक्षियों से बचाने के उपाय तथा कृषि कर्म में खाद का प्रयोग होने लगा, जिसे वैदिक काल में करीष (गोबर) कहा है, वही इस युग में भी प्रयुक्त होने लगा।

साहित्यिक तथा पुरातात्विक साक्ष्यों से कृषि उपयोगी अनेक उपकरणों की जानकारी भी हमें मिलती है, जिसका पूर्व में उल्लेख किया गया है, इसमें हल तथा हँसिया प्रमुख हैं। अन्न इस काल में आर्थिक दृष्टि से महत्वपूर्ण था। अन्न का आवश्यकता से अधिक उत्पादन सामाजिक विकास में सहायक सिद्ध हुआ। लौहयुगीन मानव के पास विशाल समतल भूभाग था, अत: धीरे-धीरे इस भाग में खेती बढ़ती गई। लोहे का उपयोग कृषि के साथ-साथ अन्य उद्योग-धंधे में भी किया जाने लगा, परिणामत: बहुमुखी उन्नति हुई एवं द्वितीय नगरीकरण का मार्ग प्रशस्त लोहे की अधिकता ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र को प्रभावित किया। संभवत: इसी कारण ताम्र, कांस्य आदि का प्रचलन कम हो गया और ये विशेष धातु समझी जाने लगी तथा इन्हें विशेष कार्य हेतु जैसे- मुद्रा निर्माण, ताम्र पट्ट पर लेख-जोख तथा शासकीय आदेशों के लिए प्रयुक्त किया जाने लगा। इसके फलस्वरूप विनिमय में सुविधा एवं व्यापार की उन्नति हुई। इस युग में मुद्राओं का प्रचलन प्रारंभ हुआ तथा वस्तु विनिमय का दौर भी समाप्त हुआ। भारत के प्रांरभिक सिक्के आहत मुद्रा के रूप में सामने आए। मालवा क भी प्रारंभिक मुद्राएँ आहत मुद्रा के नाम से जानी जाती हैं। इन मुद्राओं का निर्माण धातु को गलाकर तथा पीटकर पतरे का रूप देकर तथा उन पर साँचों के माध्यम से विभिन्न आकृतियाँ देने से हुआ। आहत मुद्राएँ प्राय: चाँदी की हैं, जो मालवा के विभिन्न पुरास्थलों, यथा-उज्जैन, नागदा, एरण, विदिशा, भिलसा, दंगवाड़ा आदि क्षेत्रों से उत्खनन के द्वारा प्राप्त हुई हैं। इन मुद्राओं के प्रचलन के फलस्वरूप व्यापारिक संगठनों की स्थापना हुई तथा इसने श्रेणी व्यवस्था का रूप ग्रहण किया। अंतर्राज्यीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार में इन्हीं श्रेणियों तथा उनकी मुद्राओं और शासक की मुद्राओं का प्रयोग होने लगा। सिक्कों के रूप में चाँदी का प्रथम प्रयोग इसी काल में हुआ। चाँदी का भारतीय भूभाग में उपलब्ध न होने के कारण सुदूर देशों

से आयात की गई। अंतर्राज्यीय तथा अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-व्यवसाय के कारण भौतिकतत्वों में भी क्रांतिकारी परिवर्तन हुए तथा भौतिक सामग्रियों की पूर्ति हुई।

इस युग में हड़प्पीय शहरों के उपरांत भवन-निर्माण में पक्की ईंटों का प्रयोग पुन: इस काल में किया गया, जिससे उन्नत एवं विशाल भवनों का निर्माण किया जाने लगा। नगर का एक प्रमुख तत्व सुरक्षा दीवार एवं परिखा का निर्माण प्रारंभ हुआ। हड़प्पीय संस्कृति के उपरांत पुन: लिपि के अवशेष भी प्राप्त हुए और प्राक्-मौर्य युग से मालवा में ब्राह्मीलिपि प्रारंभ हो जाती है।

इसी प्रकार भौतिक संसाधनों की उपलब्धता के कारण जनसंख्या में उत्तरोत्तर वृद्धि होने लगी, अत: उन्हें समूह में रहने की आवश्यकता हुई। समूह में ठीक प्रकार से सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक नियमों का पालन हो सके, इसलिए इन समूहों ने अपने में से एक प्रतिनिधि चुना, जिससे जनपद का निर्माण हुआ तथा साम्राज्यवाद का विकास होने लगा और कालांतर में जनपद से महाजनपद का विकास हुआ, जिसकी संख्या 16 थी। उन्हीं में एक अवन्ती महाजनपद था, जिसकी दो राजधानियाँ - उज्जयिनी तथा महिष्मती थी। लघु और दुर्बल जनपदों पर शक्तिशाली जनपदों का आधिपत्य हुआ, जिसके परिणामस्वरूप कई जनपद मिलकर एक महाजनपद के रूप में प्रस्थापित हुए। अब कई क्षत्रिय प्रजातियाँ एक महाजनपद के अधीन हो गई थी। अत: पूर्व के जातिगत अथवा कबिलाई जनपदों का स्वरूप बदल गया। वर्तमान जिलों के समान तत्कालीन जनपदों का स्वरूप था और महाजनपद किसी आधुनिक प्रदेश अथवा विशाल साम्राज्यीय क्षेत्र के समान थे। इन महाजनपदों में भी साम्राज्य विस्तार हेतु संघर्ष होता रहता था। इसके लिए विशाल सेना, अस्त्र-शस्त्र, घोड़े, रथ इत्यादि की आवश्यकता होती थी, अत: इन महाजनपदों में कई प्रकार के कुशल शिल्पी निवास करने लगे थे, जैसे बढ़ई, लोहार, स्वर्णकार, कुम्भकार, तक्षक इत्यादि। इससे युद्ध उपकरण बनाने का उद्योग विकसित हुआ और शिल्पियों की भी श्रेणी विकसित हुई। साम्राज्य विस्तार ने उद्योग-धंधों को भी बढ़ावा दिया। कृषक वर्ग अन्य वर्गों का उदर पोषण करता था। साम्राज्य- विस्तार की भावना से आवागमन के साधनों में वृद्धि हुई। यातायात के लिए विभिन्न प्रकार के रथ, बैलगाड़ी, शकट इत्यादि का निर्माण हुआ तथा सड़क, तालाब, बावड़ी, कुएँ, सरायों इत्यादि का निर्माण हुआ। उज्जयिनी तथा विदिशा का महत्व व्यापारिक रूप से बढ़ गया, क्योंकि ये क्षेत्र संपूर्ण भारत के मध्य में आते थे और सभी प्रकार के व्यापारी यहाँ आकर रुकते थे तथा व्यापार व्यवसाय करते थे। स्थल व्यापार के साथ-साथ जल व्यापार को भी इससे बढ़ावा मिला। इन महाजनपदों में छोटे परिवार के कुटुम्ब से लेकर ग्राम, छोटे-बड़े कस्बे एवं नगर सम्मिलित थे। इन नागरिक केंद्रों में मूल नगर तथा शाखा-नगर होते थे। कुछ नगर व्यापारिक केंद्र थे तथा कुछ नगर शासन की छोटी इकाई द्वारा शासित थे। कुछ नगर राजधानी के रूप में प्रस्थापित हुए, जिनमें राजा स्वयं निवास करता था। यहाँ उसकी सुरक्षा की पूर्ण व्यवस्था थी। इस व्यवस्था ने दुर्गों और परिखाओं के निर्माण को भी प्रोत्साहित किया। उज्जैन, विदिशा से इसके प्रमाण मिलते हैं, राजधानी को दुर्ग कहा करते थे। सामान्यतया यह दुर्ग किसी किले से बढ़कर शहर जैसे थे। इनमें राजा का महल तथा उसका कार्यालय होता था। साथ ही सड़कें, मकान, दुकान, मंदिर इत्यादि की भी व्यवस्था रहती थी। इन दुर्गों में ब्राह्मण, व्यापारी, कर्मचारी आदि निवास करते थे, यहीं खाद्य सामग्री, हथियार, ईंधन आदि के की व्यवस्था थी। सैनिकों के लिए निवास, अश्वशाला, हस्तिशाला इत्यादि की पृथक व्यवस्था होने लगी।

वस्तुत: इस द्वितीय नगरीकरण एवं महाजनपदों के विकास से दुर्ग, बड़े भवन, कुएँ, तालाब, बावड़ी, हथियार, आभूषण, वस्त्र, आवागमन के साधन, सिंचाई के साधन, दैनंदिनी के घरेलू उपकरण (जिनमें मिट्टी एवं धातु के उपकरण सम्मिलित हैं) विलासिता की वस्तुएँ इत्यादि को बनाने की नयी तकनीकी का विकास हुआ, जिसने खास और आम जीवन को परिवर्तित कर दिया।

वस्तुत: लगभग 600 से 322 ई.पू. तक का काल अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक माना जा सकता है। कुछ अन्य तत्वों ने भी इस परिवर्तन को गति और मजबूती प्रदान की, जैसे लोहे का दूर-दूर तक प्रयोग, कृषि का विस्तार, शहरों का उदय एवं विकास, हस्तशिल्पों का और अधिक विभेदीकरण तथा उनका श्रेणियों में गठन और अंत में तेज देशी एवं विदेशी व्यापार जिसकी पुष्टि आहत सिक्कों से होती है।

पुरातात्विक दृष्टि से छठी शताब्दी ई. पू. से उत्तरी काले पॉलिशदार मिट्टी के बर्तन वाले चरण की शुरुआत होती है। इस

युग की विशेषता चमकदार मिट्टी के बर्तनों का इस्तेमाल, युद्ध और उत्पादन दोनों के लिए लोहे की वस्तुओं का उपयोग, राजस्व वसूली तथा वस्तु विनिमय के स्थानों पर सिक्कों का प्रचलन था। मालवा में उज्जैन तथा बेसनगर में कमोबेश समसामयिक जमावों की सूचना मिलती है। इससे ये संकेत मिलता है कि मालवा का पठार भी उन भौतिक सुविधाओं का लाभ उठा रहा था, जो उत्तरी काले पालिशदार बर्तन वाले चरण की अन्य संस्कृतियाँ उठा रही थीं। इन मृद्भाण्डों का इस्तेमाल करने वाले लोगों ने भारी संख्या में अपने निवास स्थान भी बनाये। मालवा में इस युग में एक समृद्ध वर्ग उभर रहा था, जो राजसी मृद्भाण्डों, रत्नों इत्यादि का उपयोग कर रहा था, जिसके पुरातात्विक प्रमाण साक्ष्य के रूप में दृष्टिगत होते हैं।

उज्जयिनी के उत्खनन से प्राप्त पुरातत्वीय अवशेषों में दो रंगीन चितकबरे (P.G.W.) मृद्भाण्डों के खंड प्राप्त हुए हैं, जो कि उज्जयिनी के प्राथमिक प्रकार में पाये गये हैं। उज्जयिनी के अन्य टीलों के उत्खनन में, प्राचीनतम स्तरों से भी इसी प्रकार के और भी चित्रित धूसर मृद्भाण्डों के खंड पाये गये हैं। चि. धू. मृ. जैसा कि हमने पाया है कि लौह धातु युग का ही परिचायक है, यह स्थिति मालवा के अन्य क्षेत्रों में भी पायी गयी है। कि इस समय तक लौहारों ने लौह अयस्क की भरपूर आपूर्ति और उनके विनिर्माण की प्रौद्योगिकी में आवश्यक सुधार भी कर लिया था, इसका भी उनके भौतिक जीवन पर अनुकूल प्रभाव पड़ा। यहाँ यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि ताम्र अयस्क में जान खपाने की अपेक्षा लौह अयस्क में अपने आपको खपाना ज्यादा फायदेमंद था। कोई लौहार अपनी संपूर्ण कला शक्ति और समय लगाने के बाद भी 100 किलोग्राम ताम्र अयस्क में से केवल एक किलोग्राम ताँबा प्राप्त कर सकता था, जबकि इसी स्थिति में लौह अयस्क से 60-70 किलोग्राम लोहा प्राप्त किया जा सकता था। अत: यह स्वाभाविक ही था कि एक बार जैसे ही लौह अयस्क की खोज कर ली गई और अपेक्षित प्रौद्योगिकी पर अधिकार प्राप्त कर लिया गया और लौह धातुकर्म ने पूर्ववर्ती युग की जीवन निर्वाह वाली खेती के स्थान पर अतिरिक्त उत्पादन वाली खेती का स्थान ले लिया। साथ ही इस तकनीक का अन्यत्र भी उपयोग होने लगा। ऐसा प्रतीत होता है कि लोहे के इस्तेमाल की जानकारी में जो उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही थी, उसे धौंकनी के उपयोग से भी ज्यादा मदद मिली। इससे भारी तादाद में उपकरणों हथियारों का उत्पादन संभव हो सका। इससे भारी मात्रा में जंगल साफ करने की प्रक्रिया में गति आयी। यातायात की पद्धति में सुधार से व्यापार को और अधिक बढ़ावा मिला। संभवत: इस समय तक स्वयं लौह उत्पाद ही व्यापार का एक महत्वपूर्ण मद बन चुका था और इस प्रकार छठी शताब्दी ई. पू. से लेकर प्राक्-मौर्ययुग तक लोहे के इस्तेमाल ने कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया, जिसने भारत सहित मालवा के भौतिक जीवन पर गहन गंभीर प्रभाव डाला और इस प्रकार से इस युग में सभी क्षेत्रों में नई क्रांति का संचार हुआ।

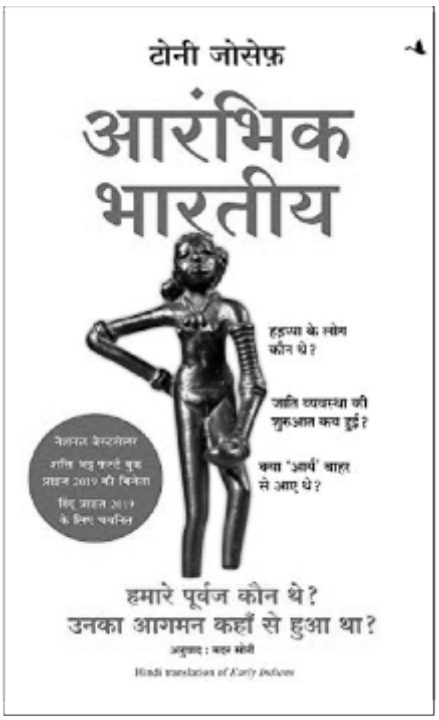

अपने अतीत को जानने की एक कोशिश

समीक्षक - रितु मिश्र

पुस्तक - आरंभिक भारतीय, लेखक- टोनी जोसेफ़, प्रकाशक-मंजुल पब्लिशिंग हाउस प्रा. लि.

हम कौन हैं और कहाँ से आए थे? इन गहन सवालों के जवाबों को जानने के लिए पुस्तक "आरंभिक भारतीय" के लेखक टोनी जोसेफ़ लगभग 65,000 वर्ष पूर्व के अतीत में जाते हैं, जब आधुनिक मानवों या होमो सेपियन्स के एक समूह ने सबसे पहले अफ़्रीका से भारतीय उपमहाद्वीप तक का सफ़र तय किया था। हाल के डीएनए प्रमाणों का हवाला देते हुए वे भारत में आधुनिक मानवों के बड़े पैमाने पर हुए आगमन यानी ईरान से 7000 ईसा पूर्व और 3000 ईसा पूर्व के बीच कृषकों के आगमन तथा 2000 ईसा पूर्व और 1000 ईसा पूर्व के बीच मध्य एशियाई स्टेपी (घास के मैदान) से अन्य लोगों के साथ ही पशुपालकों के आगमन का भी पता लगाते हैं।

आनुवांशिक विज्ञान और अन्य अनुसंधानों के परिणामों का उपयोग करते हुए जोसेफ़ जब हमारे इतिहास की परतों का ख़ुलासा करते हैं, तब उनका सामना भारत के इतिहास के कुछ सबसे विवादास्पद और असहज सवालों से होता है। जब शारीरिक रूप से आधुनिक मानव (होमो सेपियन्स) ने पहली बार अफ़्रीका से भारतीय उपमहाद्वीप में अपना रास्ता बनाया। पुस्तक छह प्रमुख विषयों- इतिहास, पुरातत्व, भाषा विज्ञान, जनसंख्या आनुवंशिकी, दर्शनशास्त्र और पुरालेख के शोध के निष्कर्षों पर निर्भर करती है और इसमें हाल के वर्षों के पथ-ब्रेकिंग प्राचीन डीएनए अनुसंधान शामिल हैं। यह पुस्तक भारत में चार प्रागैतिहासिक प्रवास की चर्चा करती है। पुस्तक में कहा गया है कि ज़ाग्रोस के कृषकों (आधुनिक ईरान के क्षेत्र से) और प्रथम भारतीयों का मिश्रण था, प्रवासियों की एक लहर जो अफ़्रीका से अरब में आई और फिर लगभग पैंसठ हज़ार वर्ष पूर्व भारत पहुँची। हाल के डीएनए प्रमाणों

का हवाला देते हुए वे भारत में आधुनिक मानवों के बड़े पैमाने पर हुए आगमन यानी ईरान से 7000 ईसा पूर्व और 3000 ईसा पूर्व के बीच कृषकों के आगमन तथा 2000 ईसा पूर्व और 1000 ईसा पूर्व के बीच मध्य एशियाई स्टेपी (घास के मैदान) से अन्य लोगों के साथ ही पशुपालकों (आर्य) के आगमन का भी पता लगाते हैं। पुस्तक में सिंधु घाटी सभ्यता और प्रारंभिक वैदिक सभ्यता के बीच समानता और अंतर के बारे में भी चर्चा की गई है। पुस्तक में उल्लेख किया गया है कि "आर्य" संस्कृति सबसे अधिक संभावना उन लोगों के बीच बातचीत, अपनाने और अनुकूलन का परिणाम थी जो भारत-यूरोपीय भाषाओं को भारत में लाए थे और जो पहले से ही इस क्षेत्र के अच्छी तरह से बसे हुए निवासी थे और संस्कृत और वेद भारतीय उपमहाद्वीप में विकसित हुए थे। यह पुस्तक आनुवंशिक साक्ष्य के आधार पर हमारे पूर्वजों की एक सम्मोहक कहानी कहती है व प्रारंभिक भारतीयों की स्पष्ट समझ प्रस्तुत करती है। बकौल टोनी जोसेफ भारतीय संस्कृति कई क्षेत्रों के लोगों के आने से मिलकर बनी हुई संस्कृति हैं। अनेक सभ्यताओं के मिलन की संस्कृति की यह परंपरा शुरुआत से लेकर आज तक कायम है। जब दूसरे स्थानों के लोगों ने आकर भारत को अपनाया, तो हमारे यहाँ भाषा इंडो-यूरोपियन हो गई। भारतीय संस्कृति कई क्षेत्रों के लोगों के आने से मिलकर बनी हुई संस्कृति है। अनेक सभ्यताओं के मिलन की संस्कृति की यह परंपरा शुरुआत से लेकर आज तक कायम है। जब दूसरे स्थानों के लोगों ने आकर भारत को अपनाया, तो हमारे यहाँ भाषा इंडो-यूरोपियन हो गई। उसके पहले हमारे यहाँ भाषा लेको ग्रेडियन थी। इस तरह भारत ने एक भाषी से बहुभाषी होने का सफर तय किया। अमेरिका या यूरोप की संस्कृति और सभ्यता तो बहुत बाद की है। उनसे बहुत पुराना और बहुत अधिक व्यापक आधार की संस्कृति भारत की है। उन्होंने कहा कि भारत में सबसे पहले होमो सेपियंस आये थे और सबसे अंत में आर्य आये। यह विश्व की एकमात्र ऐसी संस्कृति है, जो गैर अफ्रीकन है वरना विश्व के अलग-अलग देशों में जो भी संस्कृतियाँ हैं, वे सभी अफ्रीकन के योगदान के साथ बनी हुई हैं। हड़प्पा के लोग कौन थे? क्या आर्यों का भारत में वास्तव में आगमन हुआ था? क्या उत्तर भारतीय आनुवांशिक रूप से दक्षिण भारतीयों से भिन्न हैं? यह एक बेहद महत्वपूर्ण पुस्तक है, जो प्रामाणिक और साहसी तरीक़े से आधुनिक भारत की वंशावली से जुड़ी चर्चाओं पर विराम लगाती है। यह पुस्तक न केवल हमें यह दिखाती है कि आधुनिक भारत की जनसंख्या के वर्तमान स्वरूप की रचना कैसे हुई, बल्कि इस बारे में भी निर्विवाद और महत्वपूर्ण सत्य का ख़ुलासा करती है कि हम कौन हैं।

प्रोटो-इंडो-ईरानी संस्कृति, जिसने इंडो-आर्यन्स और ईरानियों को जन्म दिया, कैस्पियन सागर के उत्तर में मध्य एशियाई स्तेपी पर विकसित हुआ, जिसे सिंतशता संस्कृति (2100-1800 ईसा पूर्व) वर्तमान रूस और कजाकिस्तान में और अरल सागर के चारों ओर एंड्रोनोवो संस्कृति के रूप में विकसित हुई। प्रोटो-इंडो-ईरानियों ने फिर दक्षिण की ओर बैक्ट्रिया-मैरेजा संस्कृति की ओर प्रस्थान किया, जहाँ से उन्होंने अपनी विशिष्ट धार्मिक मान्यताओं और प्रथाओं को उधार लिया। भारत-आर्य ईरानियों से लगभग 1800 ईसा पूर्व से 1600 ईसा पूर्व तक अलग हो गए, जिसके बाद भारत-आर्य लोग अनातोलिया और दक्षिण एशिया (आधुनिक अफगानिस्तान, बांग्लादेश, भारत, पाकिस्तान और नेपाल) के उत्तरी भाग में चले गए, जबकि ईरानी ईरान में चले गए, दोनों अपने साथ हिन्द-ईरानी भाषाएँ लेकर आये। इंडो-यूरोपीय भाषा परिवार की खोज के बाद, 18वीं शताब्दी के अंत में एक इंडो-यूरोपीय लोगों द्वारा प्रवासन पहली बार परिकल्पित किया गया था, जब पश्चिमी और भारतीय भाषाओं के बीच समानताएँ नोट की गई थीं। इन समानताओं को देखते हुए, एक एकल स्रोत या मूल प्रस्तावित किया गया था, जिसे कुछ मूल मातृभूमि से पलायन द्वारा फैलाया गया था। यह भाषाई तर्क पुरातत्व, नृविज्ञान, आनुवांशिक, साहित्यिक और पारिस्थितिक अनुसंधान द्वारा समर्थित है। आनुवांशिक शोध से पता चलता है कि उन प्रवासियों ने भारतीय आबादी के विभिन्न घटकों की उत्पत्ति और प्रसार पर एक जटिल आनुवंशिक पहेली का हिस्सा बनाया है। साहित्यिक शोध से विभिन्न, भौगोलिक रूप से अलग, इंडो-आर्यन ऐतिहासिक संस्कृतियों के बीच समानता का पता चलता है। पारिस्थितिक अध्ययन से पता चलता है कि दूसरी सहस्राब्दी ईसा पूर्व में व्यापक शुष्कता के कारण यूरेशियन स्टेप्स और भारतीय उपमहाद्वीप, दोनों में पानी की कमी और पारिस्थितिक परिवर्तन हुए, जिससे दक्षिण मध्य एशिया, अफगानिस्तान, ईरान और भारत में शहरी संस्कृतियों का पतन हुआ, जो बड़े पैमाने पर पलायन को ट्रिगर करता है, जिसके परिणामस्वरूप शहरी लोगों के बाद के प्रवासियों का विलय शहरी संस्कृतियों के साथ होता है। विद्वानों और हाल ही में आनुवांशिक अध्ययन के अनुसार आर्य 1500 ईसा पूर्व मध्य एशिया महाद्वीप से भारतीय भूखण्ड में प्रविष्ट हुये अंग्रेजी

शासनकाल में अंग्रेजी इतिहासकारों ने भारतीय संस्कृत भाषा और वेदों का अध्ययन किया। जिससे उन्हें लगा कि भारत के मूल निवासी काले रंग के लोग थे। उसी काल में वैदिक आर्य भारत आ गये और अपनी संस्कृति का प्रसार प्रारम्भ किया। वे ऋग्वेद नामक ग्रंथ भी भारत लाये जो उनका सबसे प्राचीन ग्रंथ था। अंग्रेजी विद्वान विलियम जोन्स के अनुसार संस्कृत, ग्रीक, लैटिन, पर्शियन, जर्मन आदि भाषाओं का मूल एक ही है, हालाँकि संस्कृत उनसे कहीं विकसित है। अध्ययन से पता चलता है कि खेती के कौशल को विकसित सिद्धांतों के विपरीत स्वदेशी रूप से विकसित किया गया है, जो कि स्टेपीज़ और अनातोलियन किसानों के प्रवासियों के साथ आये थे। जैसा कि कागज में लिखा है। दक्षिण एशिया में यूरोप की तरह, खेती का आगमन सीधे दुनिया के पहले किसानों के वंशजों द्वारा मध्यस्थता से नहीं किया गया था जो उपजाऊ वर्धमान में रहते थे। यूरोप के मामले में पूर्वी अनातोलिया में और दक्षिण एशिया के मामले में अभी तक अपरिचित स्थान पर इन क्षेत्रों में लोगों के बड़े पैमाने पर आंदोलन के बिना खेती शुरू हुई। बिज़नेस वर्ल्ड के पूर्व संपादक टोनी जोसेफ़ अनेक शीर्ष अख़बारों और पत्रिकाओं में कॉलम लिखते रहे हैं। उन्होंने हिंदुस्तान के प्रागैतिहास पर भी अनेक प्रभावशाली लेख लिखे हैं।

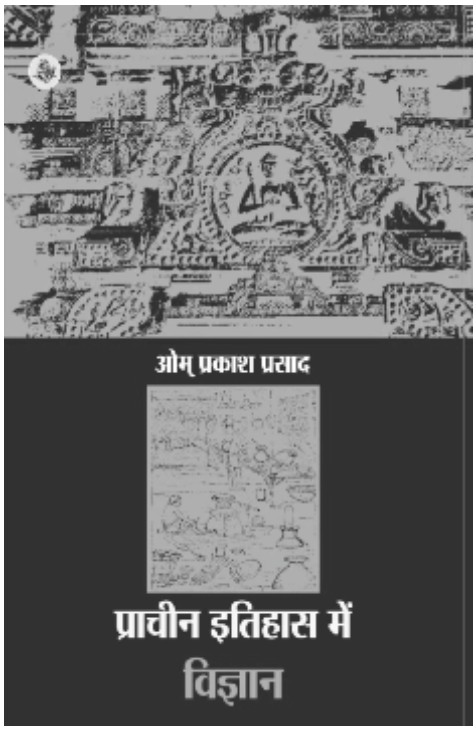

मानव विकास और प्राच्य विज्ञान परंपरा

समीक्षक - प्रवेश दीक्षित

पुस्तक- प्राचीन इतिहास में विज्ञान, लेखक-ओमप्रकाश प्रसाद, प्रकाशक-राजकमल प्रकाशन

भारत में वैज्ञानिक प्राक-इतिहासकाल से पाये जाते रहे हैं किंतु उनका नाम-पता हमें ज्ञात नहीं हैं। विज्ञान सदा से विश्व का निर्देशक शक्ति रहा है। भारत में विश्व प्रसिद्ध सिंधु सभ्यता का निर्माण अनजान वैज्ञानिकों ने किया था। वैदिक काल में मौसम की जानकारी जड़ी-बूटी, लोहे की खोज, सूर्य ग्रहण, चंद्र ग्रहण, फल-मूल और शिकार एवं कृषि के उपकरणों से वैज्ञानिकों ने ही हमारे पूर्वजों को परिचित कराया। संस्कृति और सभ्यता की नींव अनपढ़, अनजान और निर्धन मनुष्य को वैज्ञानिकों ने इतना समर्थवान बना दिया कि मानव स्वयं सृजनकर्ता बन गया। भूख, रोग, सर्दी और गर्मी से हमारी सुरक्षा वैज्ञानिकों ने कीं। वैज्ञानिक कोई व्यक्ति नहीं बल्कि एक दृष्टि होती है, एक सोच-विचार होता है। इतिहासकार ओम प्रकाश प्रसाद की पुस्तक "प्राचीन इतिहास में विज्ञान" इन्हीं बातों को केंद्र में रखकर रची गयी है। लगभग 34 अध्याय वाली इस पुस्तक में लेखक ने प्राचीन भारतीय विज्ञान परंपरा के श्रेष्ठ अविष्कारकों व वैज्ञानिकों के कृतित्व व जीवन पर प्रकाश डाला है।

लेखक के अनुसार जब कोई अपने अतीत, अपने इतिहास से सम्बन्ध तोड़ लेता है तो उसका व्यक्तित्व साधारण हो जाता है। भारत में वह सब जो आज निर्मित हुआ है, सदा मानव इतिहास के बीते चरण का आवश्यक परिणाम रहा है। प्राचीनकाल ने भारत का भविष्य निर्धारित किया। विश्व संस्कृति में प्राचीन भारतीयों द्वारा किये गये योगदान का विशेष महत्व रहा है। प्राचीन भारत की प्रत्येक शताब्दी अद्वितीय है। प्राचीन भारतीयों ने इस धरती पर जितने अनमोल रत्न बनाये वे सभी अमर हैं- वास्तुकला, मूर्तिकला या चित्रकला के स्मारक हों अथवा हमें विमुग्ध करने वाले नृत्य अथवा साड़ियाँ। महाभारत और रामायण की महिमा

अपार है। नैतिकता, सौन्दर्य भावना, राजनीतिक विचार, उदात्त आत्मिकता तथा मन और बुद्धि के लिए प्राचीन भारत का योगदान अतुलनीय है। आधुनिक श्रम के औजार से लेकर घर-गृहस्थी की वस्तुओं तक, भौतिकी और गणित से लेकर ज्योतिष विद्या तक, रीति-रिवाजों और रहन-सहन के ढंग से लेकर विज्ञान, कला, धर्म, अनीश्वरवाद, नैतिकता और दर्शन इन सब आधुनिक तथ्यों और अवधारणाओं की डोर प्राचीनकाल से बँधी है। अधिकांश बच्चों के नाम प्राचीन देवी-देवताओं के नाम पर रखने की परम्परा आज भी जीवित है। भारत की सर्जनात्मक सम्भावनाएँ दिन-प्रतिदिन बढ़ रही हैं। मानव के संसार दो हैं- एक ने मानव को रचा है और दूसरे को रचता आया है मानव। आधुनिक लोगों के प्राचीन पूर्वज एक-दूसरे का सहारा लेकर ही, पहले आदिम युग में और फिर गोत्र एवं कबीले में संगठित होकर ही अपना अस्तित्व बनाये रखने में सफल रहें। प्राचीन भारत का आधुनिक भारत में बदलाव का इतिहास महत्वपूर्ण ज्ञान का एक रोचक क्षेत्र ही नहीं, बल्कि विचारों के उग्र संघर्ष का अखाड़ा भी है। इस बदलाव का सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण था-श्रम। रसोईघर में गैस के चूल्हे पर जलती आग प्राचीन युग के अलाव की लौ की सीधी वंशज है।

पशुपालन और खेती से नया युग आया। ऐसा होने से आदिम साम्य-समाज का खात्मा और श्रेणी अर्थात् वर्गीय समाज शुरू हुआ। मन के भावों को अक्षरों में बाँध रखने को लिखना कहते हैं। चित्र का विकसित रूप लिखावट है। ध्यान से बड़ा है विज्ञान; जानने को ही विज्ञान कहते हैं। नाच का प्रारम्भिक अर्थ था- मेहनत करने का हौसला। शिकार करना, लड़ाई लड़ना, गाय चराना जैसे समाज में सबका काम था, वैसे ही नाच एक सामाजिक काम था। मिल-जुलकर किया गया, साझ का काम कोई नाचेगा, कोई देखेगा। नाचने और देखनेवालों के बीच प्रारम्भ में कोई भेद नहीं था। नाचने का मतलब है- शरीर की भंगिमा से किसी न किसी भाव को रूप देना। यों समझिए, हाथ में तीर-कमान नहीं है, फिर भी खाली हाथों तीर मारने की नक़ल की जा सकती है; नकल करके असली बात बतायी जा सकती है। याद्दाश्त को ताज़ा करने के लिए नकल की ज़रूरत पड़ती है। बीती बातों का छोर पकड़कर भविष्य की नई आशाएँ आती हैं। आदिम लोग जमात बाँधकर शिकार को निकले। कई दिनों बाद एक हिरण मारकर लाये। आग जलाकर उसके चारों ओर लोग मौज से नाचने लगे। नाच में उन्होंने इस बात की नकल उतारी कि जमात ने किस तरह हिरणों के गिरोह पर धावा बोला और किसी एक हिरण का शिकार किया। नाच के समय वे नकली शिकारी बन गये। इस नकल के लिए हिरण भी तो चाहिए, सो जमात का ही कोई व्यक्ति माथे पर सींग बाँधकर हिरण बन गया। प्रागैतिहासिक काल में जनसाधारण का योगदान और भी रहा। आग में भोजन पकाकर खाया जाने लगा। पकाया हुआ भोजन चबाने में नरम हो जाता और कम समय में ही भरपेट भोजन खा लिया जाता था। इसी अवधि में चित्रकला एवं मूर्तिकला का आरम्भ हुआ। माग्दली संस्कृति के दौरान पाये गये नर-कंकालों की बड़ी संख्या को देख पता चलता है कि मूर्तिकला और चित्रकला का आरम्भ हुआ। माग्दली संस्कृति चित्रांकन और मूर्तिकला दोनों में समृद्ध है। पत्थर और हाथीदाँत के बने औज़ारों पर चित्र अंकित हैं। गुफा की दीवारों और छतों पर चित्र हैं। चित्रों में काला, लाल, पीला और सफ़ेद रंगों का विशेष रूप से प्रयोग किया गया है। चित्रों के विषय पशु और पक्षी हैं। वे प्रागैतिहासिक मानव के प्रिय शिकार थे। जंगली भैंसा, बारहसिंगा, जंगली घोड़ा, भालू और सुअर के चित्र अंकित हैं। विद्वानों का मत है कि ये चित्र धार्मिक विचारधारा और भोजन की समस्या से सम्बद्ध हैं। शिकार में प्रायः अनिश्चितता होती जिसे दूर करने के लिए यह कला एक जादू की तरह थी। जिस प्रकार काफ़ी कष्ट झेलने के बाद गुफाओं में पशुओं का चित्र रेखांकित किया जाता, उसी प्रकार सैकड़ों अनिश्चितताओं के बावजूद शिकार में सफलता पाना सम्भव है। विज्ञान मनुष्य की आवश्यकता की पूर्ति पर आधारित होता है। पाषाण-उपकरणों के व्यवहार और मानव के उद्देश्य की प्रेरणा से आविष्कार सम्भव हुए। वैज्ञानिकों ने बताया कि लाखों वर्ष पूर्व खर-पतवार के साथ जीवन मात्र समुद्र में सीमित रहा। भूमि पर आनेवाला पहला जीव उभयचर था। अत्यन्त नूतन युग का आरम्भ करीब दस लाख वर्ष पूर्व हुआ। 4 लाख वर्ष पूर्व दूसरा हिमयुग आया। पूर्व पाषाणकाल में प्राणी धीरे-धीरे पूर्वमानव का रूप लेने लगा। 12 हजार वर्ष पूर्व धातुकाल की शुरुआत हुई। पूर्व मानव ने बाद में चलकर हाथ, मुट्ठी, दाँत और पैर का इस्तेमाल अपने बचाव और भोजन की तलाश में करने लगा और इस तरह प्रागैतिहासिक युग ने एक ऐसा अनुकूल माहौल बनाया जिसके परिणामस्वरूप समाज ऐतिहासिक युग में प्रवेश कर सका। शासन और प्रशासन बिना संस्कृति और सामाजिक सरोकार के नहीं चलते। सरोकार प्रागैतिहासिक माहौल से उपजते हैं और विज्ञान की नज़र से देखे बगैर इसे समझा नहीं जा सकता। प्रागैतिहासिक काल की निरन्तरता किसी न किसी रूप में आज भी बनी हुई है। इस लम्बी अवधि में समाज को संक्रमण के काल से भी कई बार

गुज़रना पड़ा होगा। प्रागैतिहासिक काल की विस्तृत जानकारी का प्रधान श्रेय ब्रिटिश मानवविज्ञानी और पुरातत्वविदों को है। विश्व के आपसी प्रयास और सहयोग से प्रागैतिहासिक विशेषताएँ ऐतिहासिक काल में पायी गयीं और भारत भी इस तथ्य से प्रभावित रहा। वैज्ञानिक दृष्टिवालों के प्रयास से नयी विशेषताएँ विश्व में करवटें लेती रहीं। लिखित सामग्रियों के पाये जाने से पूर्व के काल को प्रागैतिहासिक काल कहा गया। इसका अर्थ हुआ समय सिन्धुकाल में इतिहास का जन्म हो चुका था उसी समय दक्षिण प्रागैतिहासिक विशेषताओं के दौर से गुज़र रहा था और यही स्थिति पूर्वी भारत की थी। मानव संस्कृति के विकास के सम्बन्ध में लेखक का मत है कि संस्कृति मानव समाज को अन्य जीव समाज से अलग करती है। समाज यदि व्यक्तियों के सम्बन्ध का जाल है तो संस्कृति उसकी आवश्यकता पूर्ति का साधन है। समाज की अभिव्यक्ति संस्कृति द्वारा होती है। संस्कृति सीखी जाती है। प्रत्येक समाज की एक विशिष्ट संस्कृति होती है जो दूसरे समाज में हस्तांतरित की जाती रही है। संस्कृति में संगठन, अनुकूलन और संतुलन होता है। लोग भी बातचीत के क्रम में संस्कृति शब्द का प्रयोग करते हैं। लोग धोती-कुर्ता पहनने, भोजन करने, अतिथि को देव तुल्य मानने तथा उचित सत्कार करने, बड़ों की आज्ञा का पालन करने आदि को संस्कृति कह बैठते हैं। कभी-कभी लोग अच्छा व्यवहार करने वालों के लिए सुसंस्कृत शब्द का प्रयोग करते हैं। संस्कृति शब्द का प्रयोग चिकित्सा विज्ञान में भी होता है। जैसे यूरीन कल्चर, हेयर कल्चर, स्किन कल्चर आदि। संस्कृति के अंतर्गत व्यक्ति के व्यवहार तथा विचार के साथ सामाजिक संस्थाएँ आती है। इन संस्थाओं के माध्यम से मानव अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करता है तथा अपने पर्यावरण के साथ अनुकूलन करने का प्रयास करता है। लेखक ने बहुत ही मनोयोग और शोधपूर्ण ढंग के साथ भारतीय प्राचीन विज्ञान परंपरा संस्कृति समाज और मानव विकास तथा उसकी अवधारणा पर अपने मत को इस पुस्तक में बेहद सटीक ढंग से रखा है। प्राचीन भारतीय इतिहास विज्ञान और मानव विकास क्रम में रुचि रखने वालों के लिए यह एक श्रेष्ठ पुस्तक है।

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ, स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन का अधिष्ठान है। शोधपीठ विक्रमादित्य, उनके युग तथा भारत विद्या पर केन्द्रित गंभीर शोध, अनुसंधान, फैलोशिप तथा अध्ययन के लिए समर्पित है।

शोधपीठ विविध अवसरों पर प्राच्य विद्या के सुप्रतिष्ठित विद्वानों मनीषियों, सिद्धांतकारों, दार्शनिकों, चिंतकों, लेखकों, कलाकारों, अन्वेषकों की सहभागिता में बहुआयामी सामाजिक, सांस्कृतिक एवं मीडिया विमर्श के माध्यम से भारत उत्कर्ष, नवजागरण और गौरवशाली परंपराओं को पुनर्प्रकाशित करने की दिशा में सक्रिय है।

भारतीय ज्ञान परंपरा केन्द्रित पुस्तकों, शोध पत्रिका- विक्रमार्क, यूट्यूब चैनल- भारत विक्रम, विक्रमोत्सव, भारत विक्रम व्याख्यानमाला, वैचारिक संगोष्ठी, प्रदर्शनी, विक्रमादित्य फैलोशिप, विक्रम संवाद, विक्रम पंचांग, विक्रम विचार मंच आदि महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ के कतिपय चर्चित यत्न हैं।

विक्रमादित्य, उनके युग और भारत विद्या पर केंद्रित बहुविध पुस्तकमाला

ISSN 2348-7720

महाराजा विक्रमादित्य शोधपीठ

स्वराज संस्थान संचालनालय, संस्कृति विभाग, मध्यप्रदेश शासन